LEN

123660
LBSNAA

राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
L.B.S. National Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No. 123660 ~~JD 3610~~

वर्ग संख्या
Class No. GL Len 325.32

पुस्तक संख्या
Book No. लेनिन LEN

सोशलिस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट—पुस्तक १

नंवर ५

लेनिन

साम्राज्यवाद

सोशलिस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट—पुस्तक १

लेनिन

साम्राज्यवाद

पूँजीवादकी सबसे ऊँची मंज़िल

—o—

अनुवादक—
पं० जीवनराम शास्त्री

—

प्रथम संस्करण]   १९३४   [मूल्य १)

प्रकाशक—
नरेन्द्रदेव
विद्यापीठ रोड, बनारस कैण्ट।

मुद्रक—
द० ल० निघोजकर,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस सिटी।

प्रकाशकका निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक लेनिनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'इम्पीरियलिज़्म' का भाषानुवाद है। लेनिनके ग्रन्थोंमें इस पुस्तकका बहुत ऊँचा स्थान है। इस ग्रन्थमें लेनिनने पूँजीवादके पूर्ण विकसित रूपका निदर्शन किया है। 'साम्राज्यवाद' पूँजीवादका विकसित रूप है। लेनिनके शब्दोंमें यह पूँजीवादकी आख़िरी मंज़िल है। पूँजी प्रथा अपना कार्य सम्पन्न कर चुकी है। उसके लिये यह ह्रास और अवनतिका युग है। पूँजीप्रथा विकासकी उस चरम सीमा तक पहुँच गयी है जहाँ वह उत्पादनकी वृद्धिमें रुकावट डालती है। पूंजीप्रथाके आन्तरिक विरोध, शान्त होनेके बजाय, और भी अधिक तीव्र होगये हैं, और वह प्राथमिक अवस्थाएँ धीरे-धीरे उत्पन्न होगयी हैं जिनमें समाजवादकी स्थापना हो सकती है। पूंजीवादका युग समाप्त होनेको है और एक नवीनयुगका आरंभ होनेवाला है जिसमें पूंजीप्रथाके आन्तरिक विरोध शान्त हों जावेंगे और औद्योगिक शक्तियोंका जो अपव्यय वर्तमान पद्धतिमें होता है वह नहीं होगा तथा समाजका आर्थिक जीवन समाजवादके सिद्धान्तोंके अनुसार संघटित होगा। जो अवस्था आज है वह दिनपर दिन अनुचित और अनावश्यक सिद्ध होती जाती है। इस अवस्थाका अन्त होना चाहिये। पूंजीप्रथाका जो विकास साम्राज्यवादके युगमें हुआ है उसने प्रमाणित कर दिया है कि समाजके पास वह सब साधन मौजूद हैं जिससे इस अवस्थाका अन्त होसकता है। आज एक ऐसी नवीन सामाजिक अवस्थाकी प्रतिष्ठा होसकती है जिसमें आजकी वर्ग-विशेषताएँ न पाई जावें और जिसमें कुछ कालके

बाद समाजकी प्रभूत उत्पादन शक्तियोंके उचित उपयोग और विकाससे; सकल समाजको जीवन तथा विनोदके साधन उपलब्ध हो सकें और सबकी शारीरिक तथा बौद्धिक शक्तियोंका समुचित विकास होसके।

लेनिनने अपने ग्रन्थमें पूंजीप्रथाके वर्तमानयुगकी विशेषताओंका विस्तारसे वर्णन किया है और उनके आधारपर कुछ सिद्धान्त भी निरूपित किये हैं।

मार्क्सके प्रसिद्ध ग्रन्थ कैपिटल में इन विशेषताओंकी केवल सूचना मिलती है। मार्क्सके समयमें पूंजीप्रथाके इस रूपका विकास नहीं होपाया था।

इस दृष्टिसे यदि देखा जाय तो लेनिनका यह ग्रन्थ मार्क्सके कैपिटल का परिपूरक है।

एक और दृष्टिसे भी यह पुस्तक बड़े महत्वकी है, इस ग्रन्थमें लेनिनने यह दिखलाया है कि साम्राज्यवादके युगमें संसारव्यापी एक आर्थिक पद्धति क़ायम होगई है, संसारके विभिन्न देश एक लड़ीमें पिरो दिये गये हैं, वह एक ज़ंजीरकी विभिन्न कड़ियाँ हैं। ऐसी अवस्थामें लेनिनका कहना है कि अब समग्र आर्थिक पद्धति की अवस्थाकी ओर ध्यान रखकर ही, न केवल किसी देश विशेषकी अवस्थाके आधारपर, यह निर्णय किया जासकता है कि उक्त देशमें सामाजिक क्रान्तिकी संभावना है या नहीं। इसदृष्टिसे क्रान्ति पहले उन देशोंमें नहीं होगी जहाँ उद्योग व्यवसायकी विशेष उन्नति हुई है बल्कि उस देशमें जहां साम्राज्यवादकी कड़ी सबसे ज़्यादा कमज़ोर है। जो देश उद्योग-व्यवसायमें पिछड़े हुए हैं वह भी साम्राज्यवादी राष्ट्रों द्वारा पददलित होनेपर एक नई सामाजिक व्यवस्था लिये अपने को तैयार कर सकते हैं।

अनुवादके संबन्धमें भी दो शब्द कहना अनुचित न होगा।

लेनिन की भाषा बड़ी दुरूह और कठिन होती है, उसके समग्र भावों को यथोचित सुरक्षित रखना तथा विषयको सुगम्य और सुबोध बनाना

कोई सरलकाम नहीं है। अनुवादक महाशय ने लेनिनके विचारोंको यथा संभव सरल भाषासे व्यक्त करनेकी चेष्टाकी है। इस कामके लिये उन्हें अक्सर सरल उर्दू शब्दोंका भी प्रयोग करना पड़ा है। मैं समझता हूँ इससे भाषाको सुबोध बनानेमें काफ़ी सहायता मिली है।

इंस्टीटयूट पं० जीवनरामजी शास्त्रीका इस अनुवाद भेंट करनेके लिए अत्यन्त कृतज्ञ है। मेरी बीमारीके कारण छपाईकी व्यवस्था तथा प्रूफ़-संशोधनका काम भी उन्हींको करना पड़ा। इसके लिये उनको बहुत दौड़ धूप करनी पड़ी है। अतः मैं व्यक्तिगतरूपसे भी उनका बहुत कृतज्ञ हूँ। यदि पं० जीवनरामजी मेरा भार न उठा लेते तो कांग्रेसके अधिवेशनके पहले पुस्तकका तैयार होना असम्भव था।

—नरेन्द्रदेव

फ्रेंच और जर्मन संस्करणोंकी प्रस्तावना

१

यह पुस्तक १९१६ में ज़ारशाहीके सेंसर-रुकावटों–(Censorship) को ध्यानमें रखते हुये लिखी गई थी। सब देशोंके पूँजीजीवी विद्वानोंके एकत्रित किए हुए अखण्डय आँकड़ों तथा उनकी स्वीकृत बातोंके आधार पर, प्रथम विश्वव्यापी साम्राज्यवादी महायुद्धके पूर्व, बीसवीं शताब्दीके आरम्भकी पूँजीवादी दुनियाँकी आर्थिक व्यवस्था और उसके अन्तर्राष्ट्रीय परस्पर सम्बन्धोंका चित्र देना—यही इस पुस्तकका उद्देश्य था। मैं इस समय सम्पूर्ण पुस्तकको दुहरानेमें असमर्थ हूँ। और इसकी शायद आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि इस पुस्तकका जो उद्देश्य था उसकी अब भी वैसी ही ज़रूरत बनी हुई है।

किसी हदतक यह पुस्तक उन्नत पूँजीवादी देशोंके बहुतसे कम्यूनिस्ट लोगोंके (communists) लिये मिसालका काम करेगी। इस वक्त अमेरिका फ्रांस या दूसरे देशोंमें हालकी आम गिरफ़्तारियोंके बाद साम्यवादियोंके लिए जो कुछ भी कानूनी गुंजायश बाकी रह गई है उसका वे फ़ायदा उठायेंगे; और यह देखते हुए कि यह पुस्तक भी ज़ारशाहीके सेंसरकी दृष्टिमें कानूनी है, उनको यह विश्वास हो जायगा कि बहुत कुछ किया जासकता है।

* १९२० के शुरूमें संयुक्तराष्ट्र-अमेरिकामें देशभरमें साम्यवादी संस्थाओंपर अटार्नी जनरल पामरके हुक्मसे छापे मारे गये थे। ये "पामर छापे" नामसे प्रसिद्ध हैं इनके कारण साम्यवादी दल तीन साल तक के लिए दब गया था।

आशा है कि वे शान्तिवादी समाजवादियों (Social-pacifists) के विचारों और संसारमें एक प्रजातन्त्र कायम होनेकी आशाओंके खोखलेपनका अच्छी तरह भण्डाफोड़ करनेका यथा सम्भव प्रयत्न करेंगे। इस प्रस्तावना में सहायक सामग्री देनेका प्रयत्न किया जायगा जो नितान्त उपयोगी है और सेंसरके कारण उस समय जो कमी रह गयी थी उसको पूरा कर सकेगी।

२

इस पुस्तकमें यह सिद्ध किया गया है कि १९१४–१८ का महायुद्ध दोनों पक्षोंने साम्राज्यलिप्सासे प्रेरित होकर छेड़ा था—दूसरे देशोंपर अधिकार करने और उनकी लूटके अतिरिक्त उसका कोई उद्देश्य नहीं था। वह दुनियाँ भरके बटवारे, उपनिवेशों अर्थात् बंक-पूँजीके "प्रभाव-क्षेत्रों" के विभाजन व पुनर्विभाजनके लिए ही रचा गया था।

युद्धकी सामाजिक विशेषता यानी वर्गिक विशेषता क्या होती है यदि इसका सुबूत हमें चाहिए तो वह महायुद्धके कूटनीति सम्बन्धी इतिहाससे नहीं मिल सकता; बल्कि अगर वह मिलेगा तो युद्धमें भाग लेनेवाले देशोंके सत्ताधारी वर्गोंकी वास्तविक स्थितिके विश्लेषणसे। इन वर्गोंकी स्थितिको यथोचित समझनेके लिये अकेले अकेले या छिटफुट उदाहरणोंको लेना अनुचित होगा। क्योंकि यह देखते हुए कि सामाजिक जीवन अगणित तत्वोंसे बनता है, किसी भी विचारके समर्थनके लिए छिटफुट उदाहरण मिल जाना कुछ मुश्किल नहीं है। इसलिए युद्धमें भाग लेनेवाले सभी देशों व समस्त संसारके आर्थिक जीवनके आधारोंसे सम्बन्ध रखनेवाली सम्पूर्ण सामग्रीका विचार करना आवश्यक होगा।

ऊपर कहा जा चुका है कि इस पुस्तकमें पूँजीजीवी विद्वानोंके इकट्ठे किये हुए आँकड़ोंको आधार बनाया गया है। वास्तवमें ये आँकड़े इतने अखण्ड्य हैं कि मैंने १८७६ और १९१४ के दुनियाँके बटवारेके

सिलसिलेमें (छठा अध्याय) और १८९० के रेलोंके विस्तारके सम्बन्धमें (सातवाँ अध्याय) इनका उपयोग किया है। रेलें पूँजीवादी मुख्य उद्योगों कोयला और लोहा, का जमघट हैं। इतना ही नहीं वे दुनियाँके व्यापार और पूँजीजीवी जननन्त्रवादियोंकी सभ्यताकी ख़ास परिचायक भी हैं। इस पुस्तकके आरम्भके अध्यायोंमें यही दिखाया गया है कि रेलोंका बड़े पैमानेके उत्पादनके साथ अर्थात् एकाधिकार, सिण्डिकेट, कार्टेल, ट्रस्ट, बैंक और बंक-पूँजीके गुटतन्त्रके साथ कैसा गहरा सम्बन्ध है। हम यह भी देखते हैं कि रेलोंका विस्तार विषमरूपसे हुआ है, सब देशोंमें एकसा नहीं है। यह नतीजा है पूँजीवादका दुनिया भरपर एकाधिकार जमानेके मर्ज़ का। इससे यही सिद्ध होता है कि जबतक मौजूदा आर्थिक नीव ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी और जबतक उत्पादन-साधन व्यक्तियोंकी मिल्कियत बने रहेंगे तबतक साम्राज्यवादी युद्धका होना अनिवार्य है।

देखनेमें ऐसा मालूम पड़ता है कि रेलोंके निर्माणका कारबार सरल और स्वाभाविक है और उससे सार्वजनिक हितके साथ साथ संस्कृति और सभ्यताका विस्तार होता है। टुट-पुंजिया लोग उसे ऐसा ही मानते हैं और वह पूँजीजीवी प्रोफ़ेसर लोग भी, जिन्हें पूँजीवादी गुलामीपर रङ्ग चढ़ानेके लिये तनख़्वाहें दी जाती हैं, ऐसा ही समझते हैं। लेकिन सच्ची बात तो यह है कि पूँजीवादने हज़ारों तरीक़ोंसे इन कारबारोंको आम उत्पादनमें लगी हुई वैयक्तिक पूँजीके साथ जकड़ रखा है। इसका नतीजा यह है है कि रेलोंके ज़रिये एक अरब जनतापर अत्याचार किया जाता है। वे उपनिवेशों, अर्ध-उपनिवेशों या गुलाम देशोंके जन-समुदाय और "सभ्य देशों" के पूँजीवादके मज़दूर-गुलामों, यानी दुनियाँकी आधी आबादीको सताने और लूटनेमें सहायक होरही हैं।

वैयक्तिक सम्पत्तिका आधार है छोटे मालिकोंका श्रम, मुक्त प्रतियोगिता और जनतन्त्रवाद। लेकिन यह सब शब्द-जाल है जिसके द्वारा पूँजीपति और उनके समाचारपत्र मज़दूरों और किसानोंको धोका देते

हैं। छोटे मालिकोंका श्रम, मुक्तप्रतियोगिता और जनतन्त्रवादका ज़माना बहुत पहले ख़त्म हो चुका है। पूँजीवाद अब औपनिवेशिक अत्याचारका संसारव्यापी चक्र बन गया है और चन्द बढ़े-चढ़े देश अपने बैंकोंके ज़रिये दुनियाके बड़े भारी जन-समुदायका गला घोंट रहे हैं। तीन लुटेरे देशों (अमेरिका, इंगलैण्ड, जापान) ने जो नीचेसे ऊपर तक अस्त्र-शस्त्रोंसे लदे हुए हैं, दुनिया भर पर हुकूमत जमा रखी है। यही तीनों लूटके मालके हिस्सेदार हैं और लूटके बटवारेके लिए दुनियाभरको युद्धमें फँसा देते हैं।

३

ब्रेस्ट-लिटॉव्स्ककी संधि (Brest-Litovsk Peace)[४] जर्मनीकी शर्तोंके अनुसार हुई थी और वर्सायकी संधि (Versailles Peace)[५] 'जनतन्त्रवादी' प्रजातन्त्र अमेरिका व फ्रान्स और स्वतन्त्र इंग्लैण्डकी शर्तों-पर। अपनेको शान्तिवादी और समाजवादी कहने वाले प्रतिगामी टुट-पूँजियों और साम्राज्यवादके किरायेके टट्टू-लेखकोंने 'विल्सनवाद' (प्रेसीडेंट विल्सन) के ख़ूब गीत गाए और बराबर ज़ोर दिया कि साम्राज्यवादके अन्दर शान्ति और सुधार सम्भव है। लेकिन इन दोनों सन्धियोंने इन सब पूँजीजीवियोंका ख़ूब भण्डाफोड़ किया है और इस प्रकार मानव जातिकी अत्यन्त उपयोगी सेवा की है।

महायुद्ध किसलिए ठाना गया? इसीलिए तो कि लूटका बड़ा भाग ब्रिटेनके लुटेरे बैंकपतियोंको मिलना चाहिए या जर्मनीके। लेकिन, फल उसका भोगना पड़ा उन एक करोड़ लोगोंको जो मारे गए या घायल हुए। इसके बाद तो इन दोनों सन्धियोंसे फ़ौरन् ही करोड़ों अत्याचार-पीड़ित व पददलित जन-समुदायकी आँखें खुल जानी चाहिये। महा-युद्धने संसारव्यापी बरबादी ढाई है जिसके कारण दुनियाभरमें क्रान्ति उमड़ रही है। कितना भी समय क्यों न लगे और कैसी भी कठिनाइयाँ

क्यों न आवें लेकिन क्रान्तिकी सफलता अनिवार्य है। अन्त में श्रमजीवी क्रान्ति अवश्य होगी और उसकी विजय होकर ही रहेगी।

द्वितीय इण्टर्नेशनल (Second International–द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी सम्मेलन) की १९१२ की बेस्ल घोषणा (The Besle Manifesto) बड़े महत्वकी हो गई है। क्योंकि उसने द्वितीय इण्टर्नेशनलके महारथियोंकी धोखेबाज़ी और दिवालियापनका पूरा-पूरा भण्डाफोड़ कर दिया है। इस घोषणाकी विवेचनाका ठीक १९१४ के महायुद्ध हीसे सम्बन्ध था और उसका व्यापक अर्थमें युद्धोंसे कोई सम्बन्ध न था। (क्योंकि युद्ध तो सभी तरह के होते हैं, क्रान्तिकारी युद्ध भी हो सकते हैं)।

इसलिए यह घोषणा (१९१२) इस संस्करणके अध्ययनमें सहायक होगी। पाठकोंको फिर याद दिला देना आवश्यक है कि इस घोषणामें ऐसे अवतरण हैं जोकि आनेवाले युद्ध (१९१४) और श्रमजीवी-क्रान्तिके सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हैं। लेकिन द्वितीय इण्टर्नेशनलके महारथी उन अवतरणोंसे चोरकी तरह कतराते हैं। चोर जिस जगहपर एकबार चोरी कर चुकता है उससे बचनेका प्रयत्न करता है।

४

इस पुस्तकमें कॉट्स्कीवाद–कॉट्स्कीके विचारोंकी आलोचनापर विशेष ध्यान दिया गया है। सभी देशोंमें कॉट्स्कीवादकी अन्तर्राष्ट्रीय विचार-पद्धति चल पड़ी है; और बड़े बड़े सिद्धान्त-आविष्कारक, द्वितीय इण्टर्नेशनलके महारथी (ऑस्ट्रियामें ओटो बाउएर और उसके साथी, इङ्गलैण्डमें रैमज़े मैक्डोनाल्ड और दूसरे लोग, फ्रांसमें आल्बेर तोमा—Otto Bauer & Co., Ramsey Macdonald, Alber Thomas) बहुतसे समाजवादी, सुधारवादी, शान्तिवादी, पूंजीजीवी, जनतन्त्रवादी और पुरोहित उसका समर्थन करते हैं।

इस विचारधाराके दो कारण हैं। एक तो द्वितीय इण्टर्नेशनलका छिन्नभिन्न होजाना और उसका ह्रास। दूसरा यह कि यह टुटपूँजिया लोगोंकी विचार-पद्धतिका अनिवार्य फल है; क्योंकि वे लोग अपनी जीवन-अवस्थाओंसे बँधे हुए हैं और पूंजीजीवी जन-तन्त्रवादी संस्कारोंके ग़ुलाम हैं।

कॉट्स्की वर्षों मार्क्सवादके क्रान्तिकारी विचारोंका समर्थन करता रहा। उदाहरणके लिये यह कह देना काफ़ी है कि वह बर्न्स्टाइन, मिलेराण्ड, हिण्डमैन, गोम्पर्स इत्यादि (Bernstein, Millerand, Hyndman, Gompers etc.) समाजवादियोंकी समय साधकताके ख़िलाफ़ ख़ूब लड़ा और इन सिद्धान्तोंका पक्ष लेता रहा। लेकिन अब कॉट्स्की और उसकी श्रेणीके दूसरे लोगोंने मार्क्सवादके इन क्रान्तिकारी सिद्धान्तोंको बिल्कुल छोड़ दिया है और उनके विचार भिन्न होगए हैं। इसलिए यह नहीं कहा जासकता कि दुनियाँभरके 'कॉट्स्कीवादियों' का राजनीतिके व्यवहारिक क्षेत्रमें, चरम समयसाधकों (द्वितीय इण्टरनेशनलके द्वारा) और पूंजीजीवी सरकारोंसे (पूंजीजीवियोंके सम्मिलित दलोंकी सरकारोंके ज़रिये जिनमें समाजवादी हिस्सा लेते हैं) मिल जाना केवल संयोग है।

संसारभरमें श्रमजीवी क्रान्ति (proletarian revolution) का आन्दोलन आमतौरसे और कम्यूनिस्ट (Communist) आन्दोलन ख़ास तौरसे बढ़ रहा है। इसलिए 'कॉट्स्कीवाद' की सैद्धान्तिक भूलोंकी पोल खुलकर ही रहेगी। यह एक दूसरे कारणसे होना और भी आवश्यक है। शान्तिवाद और जनतन्त्रवादके आम विचार अब भी संसारमें ख़ूब फैले हुए हैं। हम यह भी जानते हैं कि साम्राज्यवादके अन्दर असंगतियाँ मौजूद हैं और उसने क्रान्तिकारी संकटको भी अनिवार्य बना दिया है। लेकिन इन दोनों बातोंपर शान्तिवाद और जनतन्त्रवादकी प्रतियाँ, मार्क्सवादसे कोई सम्बन्ध न रखते हुए भी कॉट्स्की

और उसके साथियोंकी तरह पर्दा डालनेका प्रयत्न कर रही हैं। श्रमजीवीदलका आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह इन प्रवृत्तियोंका मुक़ाबला करे। श्रमजीवी दलके लिए, छोटे मालिकोंको जिन्हें पूँजीजीवियोंने उल्लू बना रखा है और कुछ कुछ टुटपूँजिया परिस्थितियोंमें रहनेवाले लाखों श्रमिकों को अपने साथ मिलाना आवश्यक होगा।

५

आठवें अध्यायमें "रक्तशोषण और पूँजीवादका ह्रास" पर प्रकाश डाला गया है। उसके सम्बन्धमें कुछ कह देना आवश्यक है। हिल्फर्डिङ्ग पहले मार्क्सवादी था, आजकल कॉट्स्कीकी फ़ौजमें है। वह जर्मनीकी स्वतन्त्र सोशल डिमाक्रैटिक दल (Independent Sociei Democratic)[४] का पूँजीजीवी सुधारवादका एक मुख्य समर्थक भी है। "रक्तशोषण और पूँजीवाद" के सवालपर हिल्फर्डिङ्ग इङ्गलैण्डके हॉब्सनसे भी जो—खुल्लम-खुल्ला शान्तिवाद और सुधारवादका समर्थक है—एक क़दम पीछे चला गया है। इसलिये मज़दूर आन्दोलनमें अन्तर्राष्ट्रीय फूट होजाना सीधी बात है। (द्वितीय और तृतीय इण्टर्नेशनल)। दोनों धाराओंके अनुयायियोंमें सशस्त्र-युद्ध या गृहयुद्ध होना अनिवार्य है। हम देखते ही हैं कि रूसमें मेनशेविक लोग (Menshevicks) और अपने लिए "समाजवादी क्रान्तिकारी" कहनेवाले, बोल्शेविकोंके खिलाफ़ कोलचक और डेनिकिन (Kolchak Denikin) का समर्थन कर रहे हैं।

जर्मनीमें स्पार्टेकस लीगके लोगों (Spartacus)[५] के ख़िलाफ़ शाइडेमान्स, नोस्केस और उसके साथी (Scheidemans, Noskes and Co.) पूँजीवादियोंसे मिल गये हैं। इसी प्रकार फ़िनलैण्ड, पोलैण्ड और हंगेरी वग़ैरामें भी तृतीय इण्टरनेशनलके ख़िलाफ़ कार्रवाई होरही है। हमें समझना यह है कि इस संसारव्यापी ऐतिहासिक घटनाका आर्थिक आधार क्या है।

रक्तशोषण और पूँजीवादका ह्रास, साम्राज्यवाद या पूँजीवादकी सबसे ऊँची मंज़िलकी ख़ासियतें हैं और वास्तवमें येही इस घटनाके आर्थिक आधार हैं। जैसा कि इस पुस्तकमें सिद्ध किया गया है, पूँजीवादने चन्द ख़ास ख़ास और शक्तिशाली राज्योंको (जिनकी आबादी दुनियाँकी आबादीके दसवें हिस्सेसे भी कम है और बड़ी उदारतासे हिसाब लगाएँ तो पाँचवें हिस्सेसे कम होगी) आगे बढ़ा दिया है और वे दुनियाँ को "पुर्जे काट काट कर" लूट रहे हैं। यदि महायुद्धके पहलेके आँकड़े लिये जायँ और उसी समयकी क़ीमतें लगाई जायँ तो, पूँजीके निर्यातसे कमसे कम ८ या १० अरब फ्रांक सालानाका मुनाफ़ा होना चाहिए। लेकिन आजकल तो वह बहुत ही बढ़ गया है।

यह सीधी सी बात है कि इस ऊपरी* मुनाफ़ेमेंसे मज़दूरोंके नेताओं और उनके बड़े-बड़े लोगोंको रिशवत दी जा सकती है। बढ़े-चढ़े देशोंके पूँजीपति उनको रिशवत देते भी हैं और वह भी हज़ारों ही उलटे, सीधे, खुले और छिपे तरीक़ोंसे।

यह मज़दूरोंके बड़े लोग रहन-सहन, आमदनी और विचारोंकी दृष्टिसे बिल्कुल 'टुटपूँजिया' बन गये हैं। यही लोग द्वितीय इण्टर्नेशनलके मुख्य समर्थक हैं और पूँजीवादियोंके प्रधान सहायक हैं, और मज़दूर आंदोलनमें पूँजीजीवियों, पूँजीजीवियोंके ख़ास एजेण्टों और लेफ्टिनेण्टों का काम करते हैं। यही लोग वास्तवमें सुधारवाद और अन्ध देशभक्तिके किरायेके टट्टू हैं।

जब कभी श्रमजीवियों और पूँजीजीवियोंका युद्ध होता है तो यह लोग बड़ी भारी संख्यामें निश्चय ही पूँजीजीवियोंका साथ देते हैं,

* ऊपरी मुनाफ़ा (super profits) इस मुनाफ़ेका नाम ऊपरी मुनाफ़ा इसलिए रखा है कि पूँजीपति अपने देशोंमें मज़दूरोंको चूसकर मुनाफ़ा उठाते ही हैं। यह मुनाफ़ा उसके ऊपर होता है।

कम्यूनार्ड दल (Communards) के ख़िलाफ़ वर्साय (Versaillese) दलसे मिल जाते हैं।*

इस मामलेके आर्थिक आधारका जबतक अच्छी तरहसे ज्ञान न हो जाय और उसके राजनीतिक व सामाजिक महत्वको जबतक ख़ूब न समझ लिया जाय तबतक कम्यूनिस्ट आन्दोलनकी व्यावहारिक समस्याओं-को ज़रा भी हल नहीं किया जा सकता।

साम्राज्यवाद श्रमजीवी सामाजिक क्रान्तिका श्रीगणेश है। यह दुनियाभरमें १९१७ से सिद्ध हो चुका है।

जूलाई ६, १९२०. —एन्० लेनिन

---

* दलके लोग क्रान्तिके ख़िलाफ़ थे। इनका केन्द्र वर्साय (Versailles) में था। इन लोगोंने १८७१ के पेरिस कम्यून राज्य (Paris Commune) के ख़िलाफ़ षड्यन्त्र रचा था। कम्यूनार्ड दलमें क्रान्तिकारी लोग थे। ये लोग पेरिस कम्यूनके सदस्य और उसके रक्षक थे।

साम्राज्यवाद-पूंजीवादकी सबसे ऊँची मंज़िल

गत १५ या २० वर्षोंसे, विशेषतः स्पेनिश-अमेरिकन युद्ध (Spanish-American War 1898)[1] और ऐंग्लो-बोअर युद्ध (Anglo Boer War 1899-1902)[2] के समयसे दुनियांके आर्थिक और राजनीतिक साहित्यमें, हमलोगोंके जीवन-कालके विशेष युगके लिये "साम्राज्यवाद" शब्दका इस्तेमाल बराबर बढ़ता रहा है। १९०२ में अंग्रेज़ अर्थ-शास्त्री जे० ए० हॉब्सन (J. A. Hobson) की 'इम्पीरियलिज्म' (Imperialism—साम्राज्यवाद) नामक पुस्तक लण्डन और न्यूयार्कसे प्रकाशित हुई। हॉब्सनका दृष्टिकोण पूँजीजीवी सामाजिक सुधारवाद और शान्तिवादका है और वह तत्वतः भूतपूर्व मार्क्सवादी कॉट्स्कीके विचारके साथ बिल्कुल एक है। लेकिन उसने साम्राज्यवादकी मुख्य-मुख्य आर्थिक और राजनीतिक ख़ासियतोंका खूब अच्छा विस्तारसे वर्णन किया है। १९१० में ऑस्ट्रियन मार्क्सवादी रूडोल्फ़ हिल्फर्डिंग (Rudolf Hilferding) का डास फीनाण्ट्सकापीटाल (Das Finanzkapital—बैंक पूँजी) नामक ग्रन्थ, वीयनासे प्रकाशित हुआ। उसने इस ग्रंथका उपनाम 'पूँजीवादी विकासकी ताज़ा शक्ल' रखा है। यद्यपि उसने रुपये पैसेके सिद्धान्तमें ग़लती की है और उसने मार्क्सवादको समयसाधकतासे भी कुछ कुछ मिला दिया है लेकिन फिर भी उसने "पूँजीवादी विकासकी ताज़ा शक्लका" बड़ा उपयोगी विश्लेषण किया है। पिछले कुछ सालोंमें; साम्राज्यवादके सम्बन्धमें बहुतसे समाचारपत्रों और पत्रिकाओंमें काफ़ी चर्चा होती रही है और समय-समय पर संस्थाओंके जैसे कि चेमनीट्स और

बेस्ले (Chemnitz, Basle) की कांग्रेसोंके (१९१२) प्रस्तावोंमें भी इस विषयपर प्रकाश डाला गया है। लेकिन अबतक जो कुछ भी कहा गया है वह उपरोक्त दोनों लेखकोंके विचारोंसे मुश्किलसे ही आगे गया है।

इस पुस्तकमें बहुत संक्षेपमें और बिल्कुल सीधेसादे तरीक़ेसे, साम्राज्यवादकी मुख्य खासियतोंका परस्पर सम्बन्ध दिखानेकी कोशिश की गई है। यद्यपि समस्याका अनार्थिक* (राजनीतिक) पहलू भी बहुत उपयोगी है लेकिन उसपर प्रकाश डालनेका अवसर नहीं है।

---

* अनार्थिक—Non-economic से लेनिनका तात्पर्य राजनीतिकसे है। जारशाही सेंसरके ख़यालसे राजनीतिक पहलूको छोड़ दिया गया था।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
१. प्रकाशकका निवेदन	१
२. फ्रेंच और जर्मन संस्करणकी प्रस्तावना ...	४
३. साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की सबसे ऊँची मंज़िल ...	१३
४. पहला अध्याय—उत्पादनका केन्द्रीकरण और एकाधिकार	१
५. दूसरा अध्याय—बैंक और उनका नवीन कार्य ...	२६
६. तीसरा अध्याय—बंक-पूँजी और उसके व्यवस्थापकों का गुट-तन्त्र	५१
७. चौथा अध्याय—पूँजीका निर्यात	७३
८. पाँचवाँ अध्याय—पूँजीवादी संघोंके दर्म्यान दुनियाँ का बटवारा	८१
९. छठा अध्याय—महाशक्तियोंके दर्म्यान दुनियाँका बटवारा	९५
१०. सातवाँ अध्याय—साम्राज्यवाद पूँजीवादकी एक खास मंज़िल	११२
११. आठवाँ अध्याय—रक्तशोषण और पूँजीवादका ह्रास ...	१२९
१२. नवाँ अध्याय—साम्राज्यवादकी मीमांसा ...	१४४
१३. दसवाँ अध्याय—इतिहासमें साम्राज्यवादका स्थान ...	१६५
१३. परिशिष्ट	१७३

साम्राज्यवाद

पूँजीवादकी सबसे ऊँची मंज़िल

पहला अध्याय

उत्पादनका केन्द्रीकरण और एकाधिकार

पूँजीवादकी एक ख़ास बात यह है कि उद्योग (industry) बेतरह बढ़ रहा है, और उत्पादनका केन्द्रीकरण (concentration) बड़ी तेज़ीसे होता जा रहा है। होता यह है कि कई कारबार (enterprises) मिला दिये जाते हैं और एक बड़ा कारबार खड़ा हो जाता है। बड़े बड़े कारबारोंको मिलाकर और भी बड़ा कारबार बन जाता है। इसप्रकार बड़े, उनसे बड़े, और और भी बड़े, ग़रज़ यह कि बहुत ही बड़े बड़े कारबार खड़े हो रहे हैं। इसका पूरा-पूरा और पक्का सुबूत आजकलके औद्योगिक आँकड़ोंसे मिल सकता है।

जर्मनीका उदाहरण हमारे समाने हैं। १८८३ में फ़ीहज़ार ३ बड़े (जिनमें ५०से अधिक मज़दूर थे) कारबार थे, जिनमें २२ फ़ीसैकड़ा मज़दूर लगे हुये थे। सन् १८९५ ई० तक बड़े कारबारोंकी संख्या ६ फ़ी हज़ार होगई और इनमें लगे हुए मज़दूरोंकी ३० फ़ी सैकड़ा। १९०७ तक बड़े कारबार बढ़ते बढ़ते ९ फ़ी हज़ार होगये और उधर इनके मज़दूरोंकी संख्या भी ३७ फ़ी सैकड़ा हो गई। इतना अवश्य है कि उत्पादनका केन्द्रीकरण जितनी तेज़ीसे हुआ उतनी तेज़ीसे मज़दूरोंका केन्द्रीकरण नहीं हुआ। कारण साफ़ है, बड़े कारबारोंमें श्रमकी उत्पादन-शक्ति बहुत बढ़ जाती है। इसलिये इतने ज़्यादा मज़दूरोंकी ज़रूरत नहीं पड़ती। इञ्जनों और मोटरोंके सम्बन्धके आँकड़े इस बातको स्पष्ट कर देते हैं। जर्मनीमें, यदि

उद्योगको प्रचलित विस्तृत अर्थमें लिया जाय—जिसमें व्यवसाय (commerce) और यातायात (transport) भी शामिल हैं—तो हम देखेंगे कि इस समय (सन् १९१६ ई०) कुल ३२६५६२३ कारबारोंमेंसे सिर्फ़ ३०५५८ बड़े कारबार हैं, सिर्फ़ ०·९ फ़ी सैकड़ा। सब कारबारोंमें १४४००००० मज़दूर काम करते हैं जिनमेंसे ५७००००० यानी ३९·४ फ़ी सैकड़ा इन कारबारोंमें लगे हुए हैं। कुल कारबारोंमें ८८००००० हॉर्सपावर भाप ख़र्च होती है जिसकी ६६००००० हॉर्स-पावर यानी ७५·३ फ़ीसैकड़ा इन बड़े कारबारोंमें ही लग जाती है, और १५००००० किलोवाटमेंसे १२ लाख किलोवाट बिजली अर्थात् ७७·२ फ़ी सैकड़ा ये बड़े कारबार ख़र्च कर लेते हैं।

मतलब यह कि कुल कारबारोंमेंसे एक फ़ीसैकड़ासे भी कम कुल बिजली और भापका तीन चौथाईसे ज़्यादा ख़र्च करते हैं। छोटे कारबार (जिनमें कमसे कम ५ मज़दूर हैं) २९ लाख ७० हज़ार हैं। ये कुल कारबारोंके ९१ फ़ीसैकड़ा होते हैं। ये सिर्फ़ ७ फ़ीसैकड़ा ही बिजली और भाप ख़र्च करते हैं। जिसके मानी ये होते हैं कि दस बीस हज़ार बड़े कारख़ार तो सब कुछ हैं और लाखों छोटे छोटे कारबारोंकी कोई हस्ती ही नहीं है।

१९०७ में जर्मनीमें ५८६ कारख़ाने ऐसे थे जिनमें एक एक हज़ार या इससे भी ज़्यादा मज़दूर काम करते थे। इनमें कुल मज़दूरोंके लगभग १०वें हिस्सेके बराबर यानी १३८०००० मज़दूर लगे हुए थे, और देश भरमें जितनी भाप ख़र्च होती थी उसका ३२ फ़ी सैकड़ा इनके काममें आता था। आगे चलकर हम यह भी देखेंगे कि किस तरह बंक-पूँजी† चंद

किलोवाट—kilowat—बिजली के मापकी इकाई।

† बंकपूंजी—पहले लोग उद्योगमें अपनी या बैंकसे क़र्ज़ लेकर पूँजी लगाते थे। इस अवस्थामें बैंकको सिर्फ़ सूद मिलता था। अब बैंक जिस उद्योगमें पूंजी लगाते

बड़े बड़े कारबारोंकी शक्तिको बढ़ाकर बहुत घातक बना देती है। क्योंकि उसकी वजहसे लाखों छोटे छोटे, औसत दर्जेके, और कुछ बड़े मालिक भी वास्तवमें पीसे जा रहे हैं। सच तो यह है कि वे चन्द लखपति-करोड़पति बैंक-संचालकोंके चंगुलमें पूरे-पूरे फँसे हुए हैं।

अमेरिकाका संयुक्तराष्ट्र अर्वाचीन पूँजीवादमें बढ़ा-चढ़ा दूसरा देश है। वहाँपर उत्पादनका केन्द्रीकरण और भी तेज़ीसे हो रहा है। यहाँपर जो आँकड़े दिये गये हैं वे ख़ास तौरसे उद्योग (संकुचित अर्थमें) और सामूहिक कारबारों (group enterprises) के ही हैं, और वार्षिक उत्पत्तिके मूल्यके अनुसार रखे गये हैं। १९०४ में कुल कारबार २१६१८० थे। इनमेंसे प्रतिवर्ष १० लाख डालर* या इससे अधिक मूल्यका माल तैयार करनेवाले बड़े कारबार १९०० थे, यानी ०·९ फ़ी सैकड़ा। कुल कारबारोंमें सब मिलाकर ५५ लाख मज़दूर काम करते थे जिनमेंसे २५·६ फ़ी सैकड़ा (यानी १४ लाख मज़दूर) इन बड़े कारबारोंमें लगे हुए थे। कुल कारबार १४ अरब ८० करोड़ डालरका माल तैयार करते थे, जिसका ३८ फ़ी सैकड़ा (यानी ५ अरब ६० करोड़ डालरका माल) इन १९०० बड़े कारबारोंमें ही तैयार होता था। ५ वर्ष बाद सन् १९०९में कुल कारबारोंकी संख्या २६८४९१ होगयी। साथही बड़े कारबारोंकी संख्या १९०० से ३०६० यानी १·१ फ़ी सैकड़ा होगई। उधर कुल मज़दूरोंकी तादाद ६६

हैं उसका संचालन और नियन्त्रण भी करते हैं और मुनाफ़ा लेते हैं। इस पूंजीको अंग्रेज़ीमें फिनेंस कैपिटल (finance capital) कहते हैं। इस पुस्तकमें फिनेंस कैपिटलका अनुवाद बैंक-पूँजी किया गया है।

* डालर—आजकलकी विनिमय की दरसे १ डालर = २ रु० १५ आन। के लगभग।

लाख होगई। इन बड़े कारबारोंके मज़दूरोंकी संख्या भी बढ़कर २० लाख यानी ३०·५ फ़ीसैकड़ा तक पहुँच गई। कुल सामान २० अरब ७० करोड़ डालरका तैयार हुआ जिसमेंसे ९ अरब डालरका सामान (यानी ४३·८ फ़ी सैकड़ा माल) इन बड़े कारबारोंने बनाया।

तात्पर्य यह कि देशके सब कारबार जितना भी माल तैयार करते हैं उसका क़रीब आधा १ फ़ी सैकड़ा कारबारोंके हाथमें हैं। ये ३००० विशाल कारबार २६८ प्रकारके उद्योगोंमें लगे हुए हैं। इससे यह स्पष्ट है कि केन्द्रीकरण बढ़ते बढ़ते क़रीब क़रीब एकाधिकारका रूप ले लेता है। क्योंकि २० या २५ विशाल कारबार बड़ी आसानीसे आपसमें सब कुछ तै करके मिल सकते। फिर तो इनका एकाधिकार हो ही सकता है। इसके साथ साथ यह है ही कि प्रतियोगिता (competition) की बुराइयाँ और एकाधिकार (monopoly) की प्रवृत्ति—ये सब कारबारोंके बड़े होनेकी वजहसे ही पैदा होती हैं। इस प्रकार प्रतियोगिताका स्थान एकाधिकार ले लेता है। यही अर्वाचीन पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्थाकी मार्केकी बात है। आगे चलकर हम इसका विस्तारसे विचार करेंगे। यहाँ एक ग़लत फ़हमी हो सकती है, इस समय हम उसीको साफ़ करते हैं।

अमेरिकाके आँकड़ोंसे हम देखते हैं कि ३००० विशाल कारबार लगभग २५० प्रकारके उद्योगोंमें लगे हुए हैं, जिसका अर्थ यह हो सकता है कि एकएक क़िस्मका उद्योग १२, १२ विशाल कारबारोंके हाथमें है।

लेकिन मामला यह नहीं है। हर प्रकारके उद्योगके बड़े कारबार नहीं हैं। इसके अलावा मौजूदा पूंजीवादकी, जब कि वह तरक़्क़ीकी ऊंचीसे ऊंची मंज़िलपर पहुँच चुका है, एक बड़ी ही ख़ास चीज़ है जिसे हम संयोजन (combination) कह सकते हैं। संयोजनका अर्थ यह होता है कि तरह तरहके इस प्रकारके उद्योगोंको, जो किसी कच्चेमालको उपयोगी बनानेकी भिन्न-भिन्न क्रियाओंसे सम्बन्ध रखते हैं,

सम्मिलित करके, एक कारबार बना दिया जाता है—जैसे खानसे निकले हुए लोहेको पिघलाकर बीड़ बनाना, बीड़ोंसे फ़ौलाद तैयार करना, फिर फ़ौलादसे सामान बनाना इत्यादि। या ऐसे उद्योगोंका भी संयोजन किया जाता है जो परस्पर सहायक हों—जैसे रद्दीमालसे सामान बनाना, निकलेछ हुए मालका उपयोग, पैकिंग या बैठनकी सामग्री तैयार करना।

हिल्फ़ेर्डिंग (Hilferding) लिखता है:—"संयोजनसे व्यापारका उतार-चढ़ाव (fluctuation) दुरुस्त होता है, इसलिये संयुक्त कारबारके लिए मुनाफ़ेकी अधिक स्थिर दर पक्की हो जाती है। संयोजनकी दूसरी उपयोगिता यह है कि वह व्यापारको उठा देनेका प्रयत्न करता है। तीसरी यह कि इसके कारण औद्योगिक साधन-विधिकी† उन्नति (technical improvement) होती है। इसलिए 'अकेले' (pure, non-combined) कारबारकी अपेक्षा अधिक मुनाफ़ा मिलता है। चौथी उपयोगिता यह है कि संयुक्त कारबारकी स्थिति 'अकेले' कारबारके मुक़ाबलेमें ज़्यादा मज़बूत रहती है और वह मंदी, संकट, या ऐसे समयमें जब कि तैयार किये हुये सामानकी क़ीमत घटने लगती लेकिन कच्चे मालकी उतनी नहीं घटती, प्रतियोगिता (competition) का ज़्यादा अच्छी तरह सामना कर सकता है।"

जर्मनीके पूँजीजीवी अर्थशास्त्री हेमान (Heymann) ने जर्मनीके

* निकला हुआ माल—जैसे चीनी बनानेमें शीरा निकल आता है।

† साधनविधिकी उन्नति, technical improvement के स्थानपर रखा गया है। किसी उद्योगके चलानेके साधनोंकी उन्नति—जैसे यन्त्रोंका सुधार, नयी-नयी रासायनिक क्रियाओंका आविष्कार, संगठनके नये प्रकार, इत्यादि, जिनके कारणसे कि कम लागतसे अच्छामाल ज्यादासे ज्यादा तैयार हो सके उसको technical improvement कहते हैं।

लोहेके संयुक्त कारबारों पर एक किताब ही लिख डाली है। वह कहता है, "अकेले कारबार तबाह हो रहे हैं। कच्चे मालकी महँगी और तैयार मालकी सस्तीसे सेवे पिसे जा रहे हैं।" स्थितिका चित्र वह इस प्रकार देता है:—

"एक तरफ़ कोयलेकी बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ हैं, जो करोड़ों टन कोयला निकालती हैं। इनके हितोंकी देखरेख करनेके लिए इनका खूब संगठित सिण्डिकेट (syndicate) * है। फ़ौलादके बड़े-बड़े कारख़ाने, और उनका सिण्डिकेट (syndicate) भी इन कम्पनियोंसे खूब मिले हुये हैं। ये विशाल कारबार प्रतिवर्ष ४ लाख टन फ़ौलाद, अरबों टन कच्चा-लोहा, कोयला, और दूसरा सामान तैयार करते हैं। इनमें १० हज़ार मज़दूर काम करते हैं जिनके रहनेके लिये फ़ैक्टरियोंके आस-पास क़स्बे और बैरकें बनी हुई हैं। कई कारबारोंके अपने अपने बन्दरगाह, और रेलें भी हैं। जर्मनीमें लोहेके उद्योगके इस तरहके कारबार अपने ही ढंगके हैं। केन्द्रीकरण बड़ी तेज़ीसे हो रहा है। एक एक कारबार बेतहाशा बढ़ रहा है। एक ही प्रकारके या भिन्न भिन्न प्रकारके उद्योगोंके कई कई कारख़ाने मिल जाते हैं, और फिर दूसरे कारख़ाने इनमें मिलते रहते हैं; इस प्रकार विशाल कारबार खड़े हो जाते हैं, जिनकी सहायता और संचालन बर्लिनके ६ बड़े बैंक किया करते हैं। कार्लमार्क्सने केन्द्रीकरणके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है, उसकी सचाई खानोंके उद्योगके क्षेत्रमें तो निश्चय ही सिद्ध हो चुकी है; और हमारे जैसे देशमें, जो ज़कातों और यातायातकरों (tariff and transportation rates) से सुरक्षित हैं, उसका कथन अक्षर-अक्षर सत्य हुआ है। जर्मनीमें खानोंका

---

* सिण्डिकेट—कई कम्पनियाँ मिलकर अपना एक प्रकारका संघ बनालेती हैं। उसको सिण्डिकेट कहते हैं। सिण्डिकेट अधिकतर जर्मनीमें है।

उद्योग उस अवस्थाको पहुँच चुका है जब कि राज्यको उसपर क़ब्ज़ा कर लेना चाहिये।"

यह नतीजा निकालना पड़ा एक पूँजीजीवी अर्थशास्त्री (bourgeous economist) को, इसलिये कि वह ग़ैरमामूली दर्जेकी सचाई रखता था। यह भी समझलेना चाहिये कि उसने जर्मनीको एक विशेष श्रेणीमें रखा है। वह इसलिये कि वहाँ उद्योगोंको ज़कातोंके ज़रिये संरक्षण प्राप्त हैं। लेकिन संरक्षण तो ऐसी चीज़ हैं जिनकी वजहसे केन्द्रीकरण और भी तेज़ीसे होना चाहिये था, और एकाधिकारी (monopolist) कारख़ानेदारोंके संघ, कार्टेल* और सिण्डिकेट (combines, cartels, syndicate etc.) और भी तेज़ीसे बने होते। एक बात यह भी बड़े ही मार्केकी है कि जिन देशोंमें मुक्त† व्यापार (free trade) की नीति चलती है (जैसे इङ्गलैंड), उनमें भी केन्द्रीकरण आगे चलकर एकाधिकारका रूप धारण कर लेता है। यह बात दूसरी है कि उन देशोंमें अधिक समय लगता है और उस एकाधिकारकी शक्ल भी दूसरी हो सकती है। प्रोफ़ेसर हर्मानलेवी (Professor Hermann Levy) ने ब्रिटिश आर्थिक विकासके आँकड़ोंके आधारपर एकाधिकार, कार्टेल और ट्रस्टोंका‡ विशेष अध्ययन किया है। वह लिखता है:—

"इंगलैंडके कारबारोंका बड़ा होना और उनका उत्पादनकी बड़ी

* कार्टेल—सिण्डिकेटकी तरह कार्टेल भी एक दूसरे प्रकारका कम्पनियोंका संघ होता है। ये भी जर्मनीमें प्रचलित हैं।

† मुक्त व्यापार (free trade)—व्यापार पर किसी प्रकारका कर इत्यादि या किसी दूसरी रुकावटका न होना।

‡ ट्रस्ट—यह भी कम्पनियोंके संघ होते हैं। ये अमेरिकामें प्रचलित हैं।

भारी सामर्थ्य रखना, इन दोनों बातोंके अन्दर एकाधिकारकी ओर प्रकृति मौजूद है। तात्पर्य यह कि कारख़ाने बड़े बड़े हैं और ढेरों माल तैयार करते हैं। वे इस प्रकार इंगलैंडके उद्योगोंको एकाधिकारकी ओर लिये जा रहे हैं। इसका पहला कारण यह है कि एकबार केन्द्रीकरण चल पड़ने पर एक एक कारबारके लिये ढेरों पूँजीकी आवश्यकता होती है। इसलिये नये कारबार शुरू करनेके लिये पूँजीकी माँग बेहद बढ़ जाती है, जिसका नतीजा यह होता है कि नये कारबारोंका शुरू करना ज़्यादा मुश्किल हो जाता है। एक दूसरी बात और भी है जिसे हम अधिक महत्वकी समझते हैं। केन्द्रीकरणके सिलसिलेमें जो विशाल कारबार खड़े हो गये हैं उनके साथ दौड़ लगानेका ख़याल हर नये कारबारके सामने रहता है। इसलिये हर नया कारबार, खपतसे कहीं ज़्यादा, और इतना बेतरह ज़्यादा माल तैयार करनेके फेरमें रहता है कि जिसकी खपत तभी हो सकती है जब कि माँग भी ख़ूब ज़्यादा बढ़ जाय। या फिर यह होगा कि मालके बेहद ज़्यादा होनेकी वजहसे क़ीमत इतनी गिर जायगी कि नये कारबार और एकाधिकारी संघ दोनोंको कोई लाभ न होगा।"

ग्रेट ब्रिटेनकी बात अलग है। ग्रेट ब्रिटेनकी स्थिति उन देशोंसे, जहाँ पर ज़कातोंसे व्यापारका संरक्षण किया जाता है और उनकी वजहसे कार्टेल बनानेमें आसानी होती है, भिन्न है। ग्रेट ब्रिटेनमें साधारणतः एकाधिकार की विशेष सुविधाओंसे, कार्टेलों और ट्रस्टोंके ज़रिये, तभी फ़ायदा उठाया जा सकता है, जब कि आपसमें प्रतियोगिता करनेवाले कारबारों की तादाद बहुत कम हो जाय, कुल एक-दो दर्जन फ़र्म रह जायँ।

"बड़े उद्योगोंके केन्द्रीकरणका जो असर एकाधिकारके संगठनपर हो रहा है, उसे हम यहाँ आईनेकी तरह साफ़ साफ़ देख सकते हैं"—(हर्मान लेवी)

पचास वर्ष पहले, जिस समय मार्क्स अपनी पुस्तक कैपीटल

(Capital) लिख रहा था, मुक्त प्रतियोगिता (free competition) को 'प्राकृतिक-नियम' माना जाता था। बहुतसे अर्थशास्त्रियोंका यह विश्वास था कि व्यापारमें प्रतियोगिता करनेके लिये बेरोकटोक दर वाज़ा खुला रहना चाहिये। वे इसीको बिल्कुल स्वाभाविक नियम मानते थे। मार्क्सने अपनी पुस्तकोंमें पूँजीवादके सिद्धान्तों और उसके इतिहास का खूब विश्लेषण किया, अच्छी तरह छानबीन की और यह सिद्ध कर दिया कि मुक्त प्रतियोगिताकी ही वजहसे उत्पादनका केन्द्रीकरण होने लगता है, जो बढ़ते बढ़ते एक ख़ास मंज़िलपर पहुँचकर एकाधिकारकी शक्ल इख़्त्यारकर लेता है। पूँजीजीवी लेखकोंने खूब चुप्पी साधी, अपने लेखों अथवा पुस्तकोंमें मार्क्सके विचारोंका कोई उल्लेख तक न किया, और इस आशामें रहे कि मार्क्सके सिद्धान्त यों ही समाप्त हो जायँगे। लेकिन आज एकाधिकार सच्चा वाक़या है, वह हमारे सामने मौजूद है। अर्थशास्त्री ढेरों किताबें, पोथे के पोथे लिखते जारहे हैं। उनमें वे एकाधिकारके तरह तरहके रूपोंको देते हैं, उसकी मुख़तलिफ़ शक्लोंको बयान करते हैं और फिर गला फाड़कर चिल्लाते हैं कि "मार्क्सवादका खण्डन होगया"। लेकिन कहावत है—सच्ची घटनायें हिलाई नहीं जा सकतीं, वाक़यातको हम टाल नहीं सकते, हमको उनका ख़याल करना ही पड़ता है चाहे वे हमें रुचें या न रुचें। भिन्न भिन्न पूँजीवादी देशोंकी परिस्थितियोंमें फ़र्क होता है—जैसे कि संरक्षित व्यापार और स्वतन्त्र व्यापारका भेद हो सकता है। लेकिन घटनायें इस बातको स्पष्ट सिद्ध कर देती हैं कि ये फर्क एकाधिकारके मामलेमें नहींके बराबर असर डालते हैं। फ़र्कोंके रहते हुए भी पूँजीवादी देशोंमें एकाधिकार क़ायम होकर ही रहता है। अधिकसे अधिक इतना ही हो सकता है कि भिन्न भिन्न देशोंमें एकाधिकारका रूप भिन्न हो या कहीं वह जल्दी क़ायम हो और कहीं देर से। क़रीब क़रीब सब ही तरहके उत्पादनके सम्बन्धमें यह बात तै है कि

केन्द्रीकरणका नतीजा एकही होता है—एकाधिकारोंका क़ायम हो जाना। पूँजीवाद आजकल इस दर्जे तक उन्नति कर चुका है कि एकाधिकारोंका खड़ा होजाना उसका एक आम बुनियादी क़ानून बन गया है।

योरपके सम्बन्धमें यह ठीक ठीक निर्णय किया जा सकता है कि वह कौनसा समय था जब कि पुराने ढंगके पूँजीवादका ख़ात्मा हुआ और नये पूँजीवादने उसकी बिल्कुल जगह लेली। यह तै है कि २० वीं शताब्दीके शुरूमें नया पूँजीवाद क़ायम हो चुका था। हालहीमें एकाधिकारोंके इतिहास पर कई पुस्तकें निकली हैं जिन्होंने उसके हर पहलू पर खूब अच्छी तरह विस्तारसे प्रकाश डाला है। एक पुस्तकमें लिखा है:—

"१८६० के पहले पूँजीवादी एकाधिकार (capitalist monopoly) के उदाहरण कहीं कहीं इक्के दुक्के मिलते हैं। इतना अवश्य है कि इनमें हमें, आजकल एकाधिकारकी जितनी शक्लें दिखाई देती हैं उनके बीज देख पड़ते हैं। फिर भी वे जो कुछ भी हैं, कार्टेलोंके इतिहासके बहुत पहलेकी बातें हैं। अर्वाचीन एकाधिकारका वास्तविक आरम्भ सबसे पहले हुआ तो १८६० के बाद १८६० और १८७० के बीचमें। और अगर हम यह देखें कि अर्वाचीन एकाधिकारका ख़ासा विकास सबसे पहले कब शुरू हुआ तो वह उस समय हुआ जब कि अन्तर्राष्ट्रीय मन्दीका ज़माना था, और १८७३ के बादसे १८९१–९२ तक बराबर विकास होता रहा। ..... । योरपमें मुक्त प्रतियोगिता १८६० के बादसे ख़ूब बढ़ी और १८७९ तक चरम सीमापर पहुँच गई। यह उससमयकी बात है जब कि इंगलैंडमें पुराने ढंगका पूंजीवादी संगठन पूरा हो चुका था। जर्मनीमें पुराने ढंगका पूंजीवादी संगठन दस्तकारियों और घरेलू उद्योग-धन्धों पर टूट पड़ा और उनका ख़ात्मा करके ही दमलिया। इस बीचमें वह अपने अस्तित्वको बनाये रखनेके लिये आवश्यकतानुसार शक्लें बदलता गया। १८७३ में व्यापार यकायक बैठ गया। इसके बाद मन्दीका

दौरदौरा रहा। १८८० के बाद दो एक वर्ष व्यापार बढ़ा था लेकिन नहींके बराबर। लेकिन १८८९ में व्यापार ख़ूब चमका पर बहुत थोड़े समयके लिये। यह मन्दीके समयका २२ वर्षका (१८७३–९५) योरपका आर्थिक इतिहास विशेष इतिहास है। इसी १८७३में, या यह कहना ज़्यादा सही होगा कि १८७३के बादके मंदीके ज़मानेमें बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। अर्वाचीन एकाधिकारकी सबसे पहले ख़ासी तरक़्क़ी इसी ज़मानेमें हुई।.....१८८९-९०में, जब कि व्यापार चमक उठा था, बाज़ारकी स्थितिसे फ़ायदा उठानेके लिये चारो तरफ़ ख़ूब कार्टेल बनाये गये। इस अविचार पूर्ण नीतिका नतीजा यह हुआ कि क़ीमतें इतनी तेज़ीसे इतनी ज़्यादा चढ़ गईं कि किसी दूसरे तरीक़ेसे उतनी कभी न चढ़तीं, और ऐसी बरबादी आई कि लगभग सबके सब कार्टेल स्वाहा हो गये और कलंकका टीका अपने मत्थेपर लेते गये। इसके बाद पाँच वर्षतक फिर व्यापार ढीला रहा, क़ीमतें गिर गईं लेकिन इतना था कि उद्योगमें चारों ओर नया जोश दिखाई देता था। अब लोग यह समझने लगे थे कि मन्दी कोई ख़ास चीज़ नहीं है, वह तो सिर्फ़ व्यापारके चमक उठनेसे पहलेका ठहराव है।"

"इस प्रकार कार्टेलोंकी रफ़्तार दूसरी मंज़िलपर पहुँच गई। अब कार्टेलोंको अस्थायी साधन नहीं समझा जाता था बल्कि वे समस्त आर्थिक जीवनकी एक नींव बनगये थे। उद्योगके एकके बाद दूसरे क्षेत्रको उन्होंने अपने अधिकारमें लेना शुरू किया। पहले कच्चे मालको उपयोगी बनानेके उद्योगपर उन्होंने क़ब्ज़ा किया। १८९०–९१ तक संगठन-विधि (cartel technique) सुव्यवस्थित हो गई और उसका शास्त्र इतने ऊँचे दर्जेका तैयार हो गया कि आजतक उससे अच्छी संगठन-विधि नहीं तैयार हुई है। इसका नमूना कोक (बुझा हुआ कोयला) सिण्डिकेट (Coke Syndicate) का संगठन था जिसके तरीक़ेपर बादको कोयला सिण्डिकेट (Coal

Syndicate) का संगठन हुआ। व्यापारका यकायक चमक उठना और फिर संकट आ जाना, यह संघोंकी पूरी-पूरी छत्रछायामें सबसे पहले १९००–१९०३ में हुआ; कमसे कम यह बात खान और कच्चे लोहे को साफ़ करनेके उद्योगके सम्बन्धमें तो बिल्कुल निश्चित है। १९ वीं शताब्दीके अन्तमें व्यापार खूब चमका था और फिर मन्दीने आघेरा था। आजकलतो आम पब्लिक इसको तै मानती है कि आर्थिक जीवन (economic life) के बड़े-बड़े क्षेत्र, साधारणतः, मुक्तप्रतियोगितासे अलग रहते हैं। लेकिन उस समय अगर कोई इस बातको कहता तो लोग बिचित्र समझते।"

इस प्रकार एकाधिकारोंके इतिहासकी ख़ास ख़ास घटनायें निम्न-लिखित हैं:—

(१) १८६० और १८७९ के बीचके कालमें एकाधिकार मुश्किलसे अंकुरके रूपमें थे और मुक्त प्रतियोगिता चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। (२) १८७३ के संकटके बाद वह काल आता है जब चारों तरफ कार्टेल बने। लेकिन वे अबभी अपवाद थे और अबतक पक्के और मज़बूत न हुये थे, अस्थायी थे। (३) १९वीं शताब्दीके अन्तमें व्यापारका चमक उठना और फिर १९००–१९०३ में संकट आना। इसी कालमें कार्टेल समस्त आर्थिक जीवनकी बुनियाद बन जाते हैं। पूँजीवाद अब साम्राज्य-वादकी शक्ल इख़्तियार कर लेता है।

कार्टेलोंका तरीक़ा यह है कि वे सम्मिलित कारबारोंके बीच बिक्री व अदायगीकी शर्तोंका तै कर लेते हैं, बाज़ारोंको बाँटते हैं, और यह निश्चितकर लेते हैं कि कितना माल तैयार करना है और कौनसा माल किस क़ीमत में बेचा जायगा। मुनाफ़ा भिन्न भिन्न सम्मिलित कारबारोंमें बाँट दिया जाता है।

जर्मनीमें १८९६ में अनुमानसे लगभग २५० कार्टेल थे, और सन् १९०५ में लगभग ३८५ जिनमें लगभग १२००० फ़र्म शामिल थे।

लेकिन आम तौरसे लोग यह स्वीकार करते हैं कि यह तख़मीना ग़लत है, आँकड़े कम लिये गये हैं। हम पहले जर्मनीकी १९०७ की औद्योगिक तालिकासे कुछ आँकड़े दे चुके हैं। उसी तालिकासे यह साफ़ साफ़ साबित है कि यह बिल्कुल तै है कि देशभरमें कुल जितनी भाप और बिजली (steam and electric power) ख़र्च होती थी उसका आधेसे अधिक ये १२००० विशाल कारबार ही ख़त्म कर देते थे। संयुक्तराष्ट्र-अमेरिकामें (The United Stacs) १९०० में ट्रस्टोंकी संख्या १८५ और १९०७ में २५० थी। अमेरिकाकी तालिकामें कारबारों का इसतरह वर्गीकरण किया गया है कि व्यक्तियोंके, फ़र्मोंके, और कारपोरेशनों के कारबार अलग अलग रखे गये हैं। १९०४ में कारपोरेशनों के कारबारोंकी संख्या २३'६ फ़ी सैकड़ा थी। १९०९ में २५'९ फ़ी सैकड़ा। यानी देशभरमें जितने कारबार थे उनमें चौथाईसे अधिक कारपोरेशनोंके थे। १९०४ में कारपोरेशनोंके कारबारोंमें ७०'६ फ़ी सैकड़ा मज़दूर काम करते थे, १९०९ में ७५'६ फ़ी सैकड़ा। इसका मतलब यह होता है देशभरमें जितने मज़दूर थे उनके तीन चौथाई कारपोरेशनोंके कारबारोंमें लगे हुए थे। १९०४ में कारपोरेशनोंके कारबारोंने १०९०००००००० डालरका माल तैयार किया। यह देश भरमें तैयार हुए मालका ७३'७ फ़ी सैकड़ा था, और १९०९ में इन्होंने, १६३०००००००० डालरका माल बनाया, कुल मालका ७९ फ़ी सैकड़ा।

यह प्रायः होता रहा कि कार्टेलों और ट्रस्टोंने कुल उत्पादनका $\frac{2}{3}$ और $\frac{4}{5}$ तक अपने हाथोंमें कर लिया है। दी राइन-वेस्ट फ़ैलियन कोल सिण्डिकेट (The Rhine—Westphalian Coal Syndicate) १८९३ में, जब कि वह बना ही था, ज़िले भरमें जितना पक्का कोयला निकाला जाता था, उसका ८६'७ फ़ी सैकड़ा निकालता था। १९१० में उसने ९५'४ फ़ी सैकड़ा पर अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकारसे

जो एकाधिकार खड़ा हो जाता है उससे एकतो यह होता है, कि बेतहाशा मुनाफ़ा मिलता है दूसरे बड़े बड़े विशाल कारखाने बन जाते हैं। संयुक्तराष्ट्रका प्रसिद्ध तेलका ट्रस्ट—'दी स्टैन्डर्ड ऑइल कम्पनी* (The Standard Oil Company) १९०० में बनी थी। एस्० ट्शीर्शकी (S. Tschierschky). लिखता है:—

"इसकी स्वीकृत पूँजी १५०००००००० डालर है। इसने १०००००००० डालरके साधारण और १०६०००००० डालरके विशेष हिस्से बेचे थे। १९०० से १९०७ तक हिस्सेदारों को क्रमसे ४८, ४८, ४५,४४,३६,४०,४०,४०, फ़ीसैकड़ा मुनाफ़ेका हिस्सा (dividend) मिला; यानी कुल ३६७०००००० डालर मुनाफ़ा हिस्सेदारोंको बाँटा गया। १८८२ से १९०७ तक ८८९०००००० डालर खालिस मुनाफ़ा हुआ था जिसमेंसे ६०६०००००० डालर हिस्सेदारोंको बाँटा गया था, बाक़ी स्वरक्षित कोषमें जमा किया गया।"

"सन् १९०७ में फ़ौलादके ट्रस्ट (युनाइटेड स्टेट्स स्टील कॉरपोरेशन—United States Steel Corporation) में मज़दूर और दफ़्तरके कर्मचारी सब मिलकर २१०१८० से कम न थे। ...जर्मनीमें खानका उद्योग करनेवाली सबसे बड़ी गेल्सेनकीरखेन खान कम्पनी (Gelsenkirchener Bergwerksgesellschaft) में १९०८ में ४६०४८ आदमी काम करते थे।"

१९०२ की बात है फ़ौलादके ट्रस्ट (युनायटेड स्टेट्स स्टील कारपोरेशन) ने ९० लाख टन फ़ौलाद तैयार किया। इस ट्रस्टने, १९१० में, संयुक्तराष्ट्रभरमें जितना फ़ौलाद तैयार हुआ, उसका ६६·३ फ़ी सैकड़ा

* १८८२ से ही तेलकी कम्पनियोंका एक ट्रस्ट चला आ रहा था। १८९९ में ही, सब कम्पनियोंका अस्तित्व समाप्त करके बिल्कुल मिलादी गई और उनके स्थान पर एक दूसरी कम्पनी बनगई। बादको १९०० में यह ट्रस्ट बना।

और १९०२ में ५६·१ फ़ी सैकड़ा बनाया। और इन्हीं सालोंमें इस ट्रस्टने कच्चा लोहा क्रमसे ४३·९ फ़ी सैकड़ा और ४६·३ फ़ी सैकड़ा निकाला।

अमेरिकाके सरकारी दफ़्तरकी एक रिपोर्टमें ट्रस्टोंके सम्बन्धमें लिखा है:—

"केन्द्रीकरणके ज़रिये तम्बाकूके उद्योगके बड़े बड़े कारख़ाने बन गये हैं और इनमें से हर एकने काफ़ी हद तक किसी न किसी ख़ास क़िस्मकी तम्बाकूका उद्योग विशेष रूपसे अपने हाथमें ले रखा है। इसकी वजहसे उत्पादनमें मशीनोंका इस्तेमाल बहुत कुछ बढ़ गया है। छोटे छोटे कारख़ानोंमें मशीनें इस क़दर इस्तेमाल नहीं की जा सकतीं।"

"मशीनोंके पेटेण्टोंका संयोजन (Combination) के विकासके साथ ख़ासा तआल्लुक़ है। यह इस बातसे ज़ाहिर होता है कि दी अमेरिकन टुबैको कम्पनी (The American Tobacco Company) जब शुरू हुई तो उसने दी बोनसैक मशीन कम्पनी (The Bonsack Machine Company) से यह शर्तनामा किया कि उस कम्पनीकी सिग्रेट बनानेकी मशीनें सिर्फ़ वही इस्तेमाल कर सकेगी।"

"कुछ उदाहरण इस तरहके मिलेंगे कि पेटेण्टोंको ख़रीदा गया, उनको रद्द कराया गया और छोड़ दिया गया। दूसरे बहुतसे उदाहरण ऐसे भी हैं कि किसी किसी कम्पनीने ढेरों रुपया किसी पेटेण्ट मशीनके सुधारमें ख़र्च कर दिया।"

"१९०६ के अन्तमें दी अमरीकन टुबैको कम्पनी (The American Tobacco Company) के अधीन दो कारपोरेशन थे जिनका तम्बाकूकी मशीनोंके पेटेण्टोंको रखनाही काम था। मार्च १९०० में ही अमरीकन टुबैको कम्पनीने दी अमरीकन मशीन ऐण्ड फाउण्ड्री कम्पनी (The American Machine and Foundary company) का संगठन किया था और मशीनें बनाने व मरम्मतका साराकाम इसके

सुपुर्द कर दिया था। इस कम्पनीका कारखाना ब्रुक्लिन (Brooklyn) में है। १९०६ में लगभग ३०० आदमी इसमें काम करते थे। इस कम्पनीके कारखानेमें सिग्रेट बनानेकी मशीनोंमें सुधार करनेका काम बराबर चल रहा है। यहाँ सिर्फ़ उन मशीनोंका काम होता है, जिनपर दी अमरीकन टुबैको कम्पनीका या दी इण्टर्नेशनल सिगार मैशीनरी कम्पनी (The International Cigar Machinery Company) का अधिकार है।"

"दूसरे दूसरे ट्रस्ट भी इञ्जिनियरोंको रखते हैं जो उत्पादनके नये नये प्रकारोंकी खोज करते रहते हैं, और साधन-विधिकी उन्नतिकी समय-समयपर परीक्षा करते हैं। दी स्टील ट्रस्ट (The Steel Trust) अपने कार्यकर्ताओं और इञ्जिनियरोंको, उन आविष्कारोंके लिये जिनकी वजहसे साधन-विधिकी उन्नति होती है या लागत घट जाती है, बड़े बड़े इनाम बांटता है।"

जर्मनीमें भी बड़े बड़े उद्योगोंमें साधन-विधिकी उन्नतिका प्रबन्ध इसी तरह किया जाता है। रसायनके उद्योगकी मिसाल हमारे सामने है, जिसकी कि पिछले बीस तीस वर्षोंमें अत्यन्त उन्नति हुई है। उत्पादनका केन्द्रीकरण होते होते १९०८में इस उद्योगके दो प्रधान समूह बन गये थे। यह दोनों ही अपने अपने तरीक़ेसे एकाधिकार प्राप्त करते जारहे थे। पहले पहल इन समूहोंमेंसे प्रत्येकमें दो दो सबसे बड़ी फ़ैक्टरियाँ शामिल थीं। एक एक समूहकी पूँजी दो दो करोड़ मार्क* या इससे भी अधिक था। एक समूहमें हख्स्ट-ऑन-मेन शहरकी माइस्टेर फैक्टरी (The Former Maister Factory at Hochst-on-Main) और फ्रैंकफ़ुर्ट-ऑन-मेनकी ल्योपोल्ड कैसिला ऐण्ड कम्पनी (Leopold Cassella

*इस समयकी विनिमयकी दरसे १ मार्क = ११ आनेके लगभग।

& co. at Frank-fort-on-Main), ये दो कम्पनियाँ थीं। दूसरे समूहमें लड्विग शाफ़ेन-ऑन-राइन शहर (Ludwing-shafen-on-Rhine) की सोडा और अलकतरेका रंग तैयार करनेवाली फ़ैक्टरी, और दूसरी एल्बरफ़ेल्ड (Elberfeld) की फ़ैक्टरी जिसका पुराना नाम बायेर (Bayer) फ़ैक्टरी है—ये दोनों फ़ैक्टरियाँ शरीक थीं। इनमेंसे एक समूहने १९०५ में एक तीसरी बहुत बड़ी फ़ैक्टरीके साथ शर्तनामा किया और उसे शामिल कर लिया। दूसरे समूहने भी १९०८ में एक दूसरी बहुत बड़ी कम्पनीके साथ समझौता करके उसे अपने साथ मिला लिया। अब इन दोनों समूहोंमें तीन तीन फ़ैक्टरियाँ सम्मिलित थीं। इन दोनोंके पास चार चार या पाँच पाँच करोड़ मार्ककी पूँजी थी। धीरे धीरे यह दोनों समूह आपसमें भी मेलजोल बढ़ाने लगे और क़ीमतोंके सम्बन्धमें मामला तै करनेकी बात होने लगी।

इस समय प्रतियोगिताका स्थान एकाधिकारने ले लिया है। नतीजा यह है कि उत्पादन सामाजिक रूप (socialisation) की ओर खूब बढ़ चुका है। अर्थात् अब वह अवस्था नहीं है कि एक चीज़को बनानेमें एक ही व्यक्तिका श्रम लगता हो, बल्कि उसमें हज़ारों लाखों व्यक्तियोंका श्रम लग जाता है, अब उत्पादनमें सामाजिक श्रमका उपयोग होने लगा है। ख़ास तौरसे, साधन-विधिकी खोज और उन्नति भी सामाजिक रूपसे हो रही है। किसी आविष्कारको एक ही व्यक्ति नहीं करता, बल्कि उसमें हज़ारों लाखों आदमियोंका व्यक्त या अव्यक्त रूपसे भाग होता है।

अब पुराने ढंगकी मुक्त प्रतियोगिताका ज़माना नहीं रहा, अब वह समय नहीं है कि माल तैयार करने वाले इधर उधर पड़े हुये हैं, एकको दूसरेका पता नहीं है, न वे यही जानते हैं कि किस बाज़ारके लिये माल तैयार करना है, और फिर भी प्रतियोगिता चल रही है। केन्द्रीकरण इस हद तक पहुँच चुका है कि यह तख़मीना काफ़ी हद तक लगाया

जा सकता है कि किसी देशमें कच्चा माल कितना, कहाँ कहाँसे और किन ज़रियोंसे मिल सकता है। इतना ही नहीं बल्कि कई देशों, और दुनियाँ भरके, कच्चे मालका तख़मीना लगाना कुछ मुश्किल नहीं है। फिर इस तरहका हिसाब लगाकर ही मामला ख़त्म नहीं कर दिया जाता, बल्कि बड़े बड़े एकाधिकारी परिषद् कच्चे मालके साधनोंपर क़ब्ज़ा भी जमाते हैं। वे इसके भी आगे जाते हैं। बाज़ारमें कितने मालकी खपत हो सकेगी, इसका भी हिसाब तैयार किया जाता है और फिर यह परिषद् आपसमें शर्तनामें करते हैं और यह तै कर लेते हैं कि कौन कितना माल तैयार करेगा। वे बाज़ारको आपसमें बाँट लेते हैं। होशियार होशियार कारीगर भी एकाधिकारसे नहीं बचने पाते। उनपर भी एकाधिकार किया जाता है। अच्छेसे अच्छे इञ्जिनियरोंको रखा जाता है। यातायातके साधनों (means of transportation)—अमेरिकामें रेलों, योरप और अमेरिकामें जहाज़ोंकी कम्पनियों—पर भी एकाधिकार स्थापित किया जाता है। ग़रज़े कि केन्द्रीकरणके कारण उत्पादन और वितरणके सभी साधनोंपर एकाधिकार बढ़ रहा है और बढ़ते बढ़ते वह, उत्पादनके सबसे बड़े सामाजिकरूप (socialisation of production) के बिल्कुल नज़दीक पहुँच गया है। पूँजीवादने एक प्रकारकी नवीन अस्थायी बीचकी अवस्था पैदा कर दी है। बात यह है कि उद्योग व्यापारमें पूर्ण मुक्त प्रतियोगिताका ज़माना ख़त्म हो गया। उस समय उसके आधार पर जो सामाजिक व्यवस्था थी वह भी ख़त्म हो चुकी। अब उत्पादन पूर्ण सामाजिक प्रकारकी ओर बढ़ रहा है और नयी सामाजिक व्यवस्था बन रही है। पूँजीवाद इस नवीन व्यवस्थामें पूँजीवादियोंको उनकी मर्ज़ीके ख़िलाफ़ ज़बर्दस्ती घसीटे लिये जा रहा है।

यद्यपि उत्पादनका प्रकार सामाजिक बन गया है लेकिन फिर भी अभी अधिकार व्यक्तियोंका ही बना हुआ है। उत्पादनके सामाजिक साधन

अबभी चन्द व्यक्तियोंकी निजी सम्पत्ति हैं। मुक्त प्रतियोगिताका, जिसे बाक़ायदा उपयुक्त माना गया है, आम ढाँचा ज्योंका त्यों है। चन्द एकाधिकारियों (monopolists) का अत्याचार सैकड़ों गुना बढ़ गया है, और अत्यन्त असह्य अवस्था आगई है।

जर्मन अर्थशास्त्री केस्टनर (Kestner) ने एक पुस्तक ख़ास तौरसे 'कार्टेलों और बाहरवालोंका संघर्ष' विषय पर लिखी है। 'बाहरवालोंसे' मतलब उन कारबारोंसे है जो कार्टेलोंमें शरीक नहीं होते। उसने अपनी पुस्तकका नाम "जबरिया संगठन" (Compulsory Organisation) रखा है। स्वाभाविक तो यह था कि वह जबरिया संगठनकी बजाय पूँजीवादकी तारीफ़के ख़यालसे उस पुस्तकमें इस बातका ज़िक्र करता कि एकाधिकारी परिषदोंके सामने किस प्रकार कारबारोंको मजबूरन सर झुकाना पड़ता है। इस किताबकी खूबी और कुछ न हो लेकिन इतनी ज़रूर है कि उसमें उन सब तरीक़ोंकी फ़ेहरिस्त दे रखी है जिनको एकाधिकारी परिषद् 'संगठन'के युद्धमें वर्त्तते हैं। संगठनका युद्ध भी कोई मामूली नहीं, बल्कि वह अर्वाचीन कालका नवीनसे नवीन सभ्यताका युद्ध है। वे तरीक़े इस प्रकार हैं—(१) कच्चे मालको रुकवा देना—यह कार्टेलमें शरीक होनेके लिये किसी कारबारको मजबूर करनेका सबसे ख़ास तरीक़ा है। (२) 'दोस्तियों' (alliances) के ज़रिये इस प्रकारका प्रबन्धकर देना कि मज़दूर ही न मिलें—'दोस्तियों'से मतलब उन इक़रारनामोंसे है जो पूँजीपति व्यापारसंघों (trade unions—ट्रेड यूनियन्स) से करते हैं। व्यापारसंघ इन इक़रारनामोंके अनुसार अपने मेम्बरों यानी मज़दूरोंको उन्हीं कारबारोंमें काम करनेकी अनुमति देते हैं, जो ट्रस्टमें शामिल हैं। (३) स्थानीय यातायातके साधनों (means of transport) का उपयोग बन्द करा देना—ऐसा प्रबन्धकर देना कि जो कारबार कार्टेलमें शरीक न हो रहा हो, उसको सामान लाने लेजानेके स्थानीय साधनोंकी

सहायता ही न मिले। (४) व्यापारके निकासोंको बन्द करा देना—सामान का बाहर जाना रुकवा देना। (५) ख़रीदनेवालोंके साथ ऐसे इक़रारनामें करना कि वे उस कार्टेलसे ही माल ख़रीदेंगे। (६) 'बाहरवालों' (जो कार्टेलमें शरीक न हों) को बरबाद करनेके उद्देश्यसे क़ीमतोंको गिराना—*सामानको एक ख़ास समय तक लागतसे भी कम दाम पर बेचनेमें लाखों ख़र्च कर दिया जाता है* (*बेनज़ाइन—मिट्टीके तेलसे निकली एक प्रकारकी तारपीन जैसी चीज़—के उद्योगमें ४० से २२ मार्क तक यानी आधी क़ीमत करदी गई थी*)। (७) साखको बन्द करा देना—जिससे कि क़र्ज़ मिलना असम्भव हो जाय। (८) बायकाट—बहिष्कार !

यह अब न तो छोटे और बड़े कारबारोंकी प्रतियोगिता है और न उन्नत साधनवाले और पिछड़े हुए कारबारोंकी। हमतो यह देखते हैं कि एकाधिकारी संघ उन कारबारोंका गला घोटे दे रहे हैं जो उनको समर्पण करनेके लिए तैयार नहीं होते, और उनका हुक्म माननेको राज़ी नहीं हैं। पूँजीजीवी अर्थशास्त्री केस्टनर (Kestner) का इस सम्बन्धमें यह विचार है:—

"शुद्ध आर्थिक क्षेत्रमें भी परिवर्त्तन हो रहा है। पुराने अर्थमें व्यवसाय अब ख़त्म हो रहा है और संगठन व सट्टा (organisation and speculation) उसका स्थान ले रहे हैं। अब सबसे अधिक सफलता वह व्यापारी नहीं प्राप्त कर सकता जो अपने साधन-विधि सम्बन्धी ज्ञान और व्यवसायिक अनुभवसे ख़रीदारोंकी आवश्यकताओंका अच्छासे अच्छा तख़मीना लगा सके, यानी जो यह पता लगा सके कि कितनी माँग पैदा की जा सकती है और साथही उस माँगको पैदा भी कर सके। बल्कि अब वही व्यापारी सबसे अधिक सफल होता है जो सट्टेका दिमाग़ (!!) रखता है यानी वह जो पहलेसे यह अन्दाज़ा लगा सकता है कि संगठनका विकास किस प्रकारका होगा और यह सोच सकता

है कि अकेले कारबारों और बैंकोंके सम्बन्धका क्या क्या परिणाम होगा।"

साधारण शब्दोंमें इसका यह मतलब होगा कि पूँजीवाद अब ऐसी मंज़िल पर पहुँच चुका है कि सामग्री-उत्पादन (commodity production) की जड़ निश्चय ही खोखली हो गई है। ख़ास मुनाफ़ा तो उनको मिलता है, जो बैंकों की पूंजी की हेरफेरके उस्ताद होते हैं। वैसे कहनेके लिये तो अब भी सामग्री-उत्पादनका ही राज्य है और इस समय भी उसको समस्त आर्थिक जीवनका आधार माना जाता है। इन सब तिकड़मों और बंक-पूंजीके उलटफेर की तहमें उत्पादनका समाजीकरण (उत्पादनका सामाजिक श्रमसे होना) मौजूद है। पर नतीजा क्या है? इस समाजीकरणको प्राप्त करनेके लिये मानव समाजने इतनी भारी उन्नति की लेकिन उसका फ़ायदा चन्द सट्टेबाज़ोंको मिल जाता है। हम यह आगे चलकर देखेंगे कि पूंजीवादी साम्राज्यवादका प्रतिगामी टुटपूंजिया (petty-bourgeois) आलोचक कॉट्स्की (Kautsky) किस प्रकार इस आधारपर 'शान्तिपूर्ण' और 'ईमानदार' मुक्त प्रतियोगिताको फिरसे अपनानेका स्वप्न देखता है।

केस्टनर (Kestner) कहता है कि—"कार्टेलोंके कारणसे यदि क़ीमतोंमें स्थायी रूपसे बढ़ती हुई है तो वह अबतक सिर्फ़ उत्पादनके मुख्य साधनोंमें ही देखी गई है, ख़ासतौरसे कोयला, लोहा और पुटाशमें। बने हुये मालमें कार्टेलोंके कारण थोड़े समयके लिये भी क़ीमतोंमें स्थायी बढ़ती नहीं हुई है। इसी प्रकार मुनाफ़ेकी बढ़ती भी यदि कार्टेलोंके कारण हुई है तो वह सिर्फ़ उत्पादन-साधनों (means of production) को बनानेवाले उद्योगोंमें। इसके साथ यह भी कह देना आवश्यक है कि कच्चे मालको उपयोगी बनानेके उद्योगको (आधे तैयार मालसे मतलब नहीं है) गहरा मुनाफ़ा मिल रहा है जिसकी वजहसे अधबना माल तैयार करनेवाले उद्योगको काफ़ी नुक़सान हो रहा है। इतना ही नहीं, बल्कि

कच्चा माल उपयोगी बनानेवाले उद्योगने अधबना माल तैयार करनेवाले उद्योगपर हुकूमत जमा ली है जैसा कि मुक्तप्रतियोगिताके ज़मानेमें कभी नहीं था। इस सबका श्रेय कार्टेलोंको है।"

'हुकूमत' शब्द असली ख़ासियतको ज़ाहिर करता है जिसे पूँजीजीवी अर्थशास्त्री बड़ी मुश्किलसे इतनी आनाकानीके साथ स्वीकार करते हैं। यह वह ख़ासियत है जिससे कॉट्स्की (Kautsky)के अनुगामी, मौजूदा ज़मानेके समयसाधक वीर बड़े जोशके साथ कतरा जानेकी कोशिश करते हैं। हुकूमत और उसका साथी, दबाव—ये 'पूँजीवादी विकासकी सबसे ताज़ी शक्ल'की निराली विशेषताएँ हैं। आर्थिक एकाधिकारका यही नतीजा होना था और यही हुआ भी है।

कार्टेलोंकी हुकूमतका एक उदाहरण और भी दिया जाता है। कार्टेलों और एकाधिकारोंका क़ायम होना उस हालतमें ख़ास तौरसे आसान होता है जब कि कच्चे मालके सभी, या कमसे कम मुख्य साधनोंपर क़ब्ज़ा किया जा सके। लेकिन तो भी यह मान लेना ग़लत होगा कि उन उद्योगोंके एकाधिकार खड़े ही नहीं होते, जिनके लिये कच्चे मालके साधनोंपर क़ब्ज़ा करना असम्भव होता है। सीमेण्टके उद्योगके लिये कच्चा माल किसी भी जगह मिल सकता है। फिर भी जर्मनीमें इस उद्योगके बड़े मज़बूत ट्रस्ट बन गये हैं। देशके एक एक भागके कारख़ाने मिल गये हैं और इस प्रकार उनके प्रान्तीय सिण्डिकेट भी बन गये हैं। उदाहरणके लिये दक्षिणी जर्मन, राइन-वेस्ट-फैलियन (South German, Rhine West-phalian) इत्यादि। मनमानी एकाधिकारी कीमतें निश्चित कर दी जाती हैं। एक गाड़ी सीमेण्टकी लागत होती है १८० मार्क और कीमत २३० से २८० मार्क तक। कारख़ाने १२ से १६ फ़ी सैकड़ा तक मुनाफ़ा बाँटते हैं। इसके अतिरिक्त हमें यह न भूल जाना चाहिये कि आधुनिक सट्टेबाज़ीके उस्ताद लोग मुनाफ़ेके हिस्सेके अलावा गहरी गहरी रक़मोंको जेब करना भी ख़ूब

जानते हैं। इतने बड़े मुनाफ़ेके उद्योगमें प्रतियोगिता बन्द करनेके लिये एकाधिकारी नीच साधनोंको भी नहीं छोड़ते। उदाहरणके लिये, वे ग़लत अफ़वाह उड़ा देते हैं कि उद्योगकी हालत ख़राब है। अखबारोंमें इस प्रकारकी गुमनाम चेतावनियाँ निकलती हैं—"पूँजीपतियों, होशियार हो जाओ, अपना रुपया सोमेण्टके उद्योगमें मत लगाओ।" अन्तमें वे 'बाहरी कारबारों' (जो ट्रस्टमें शामिल नहीं हैं) को ख़रीद लेते हैं और ६० या ८० से १५० हज़ार मार्क तक म्वाञ्ज़ा (indeminty) दे देते हैं। एकाधिकार किसी न किसी तरीक़ेसे अपना मतलब पूरा कर लेता है फिर चाहे उसे 'साधारण' (modest) म्वाञ्ज़ा देने या दूसरे साधनका ही इस्तेमाल क्यों न करना पड़े।

यह विचार कि कार्टेलोंसे अर्थ-संकट हमेशाके लिये उठ जायेगा, कोरी कल्पना है। इस विचार को पूंजीजीवी अर्थशास्त्रियोंने फैला रखा है। क्योंकि पूँजीवादकी तारीफ़ करना ही उनका हमेशा उद्देश्य रहता है। लेकिन मामला बिल्कुल उलटा है। जब कुछ उद्योगों में एकाधिकार खड़ा हो जाता है तो उससे यही होता है कि, पूँजीवादी उत्पादनके अन्दर व्यापकरूपसे जो स्वाभाविक उथल-पुथल मौजूद है, वह बढ़ती है और ख़ूब गहरी होती जाती है। पूँजीवादकी एक आम ख़ासियत यह भी है कि खेती और उद्योगकी उन्नतिमें बड़ा भारी अन्तर रहता है। एकाधिकारसे यह अन्तर भी बढ़ता जाता है।

एक बात और भी है। कुछ उद्योगोंके ट्रस्ट ख़ूब बन चुके हैं, विशेषतः कोयले और लोहेके उद्योगोंके। इन उद्योगोंकी स्थिति संगठनके कारण सुविधापूर्ण है। इस वजहसे दूसरे उद्योगोंमें आयोजन (planning) की कहीं ज़्यादा कमी है और उनकी उन्नति भी नहीं हो पाती। इस बातको जाइडेल्स (Jeidels) ने स्वीकार किया है। उसने 'जर्मनीके बड़े बैंकोंका उद्योगसे सम्बन्ध'—इस विषयपर एक बहुत अच्छी पुस्तक लिखी है।

लेकिन उधर पूँजीवादका बेहया समर्थक लाइफ़मान (Liefmann) *लिखता है कि "किसी देशकी आर्थिक व्यवस्थाकी जितनी अधिक उन्नति होती है उतना ही अधिक ध्यान, अधिक ख़तरेके कारबारों, विदेशी कारबारों, और उन कारबारोंपर जिनकी उन्नतिके लिये अधिक समयकी आवश्यकता है या फिर स्थानीय महत्वके कारबारोंपर दिया जाता है।"*

आगे चलकर पूँजीकी बेहद बढ़तीके साथ साथ ख़तरा भी बढ़ता जाता है जब कि यह पूँजी बेतरह उमड़ पड़ती है और विदेशोंमें जाकर बहने लगती है। साथ ही साधन-विधिकी बड़ी तेज़ीसे उन्नति होती है, जिसके कारणसे देशकी आर्थिक व्यवस्थाके विभिन्न पहलुओंमें नई नई असंगतियाँ (contradictions) पैदा होने लगती हैं और वे बढ़ते बढ़ते उथलपुथल और संकटकी शक्ल इख़्तियार कर लेती हैं। उन्हीं लाइफ़मान महाशयको यह स्वीकार करना पड़ा कि:—

"इस बातकी बहुत कुछ सम्भावना है कि साधन-विधिमें जल्दी ही भारी क्रान्ति हो जाय। उसका आर्थिक ढाँचेपर भी असर होगा··· (बिजली, हवाई जहाज···)। आमतौरसे ऐसे समयमें जब कि बड़े मार्केके आर्थिक-परिवर्तन होते हैं, सट्टेबाज़ी बहुत बढ़ जाती है।"

आर्थिक संकट अपनी बारी आनेपर प्रायः अपना काम ख़ूब करते हैं। वे केन्द्रीकरण और एकाधिकारकी प्रवृत्तिको बेहद बढ़ा देते हैं। इस सिलसिलेमें १९०० के संकटके प्रभावके सम्बन्धमें जाइडेल्स के विचार बड़े उपयोगी हैं। उन्हें हम नीचे देते हैं। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं। इस संकटने आधुनिक एकाधिकारके इतिहासकी धारा ही पलट दी थी। जाइडेल्स लिखता है:—

"१९०० के संकटके समय मूल उद्योगोंके एक ओर विशाल कारबार थे और दूसरी ओर बहुतसे 'अकेले' (जो कार्टेलोंमें शरीक नहीं थे) कारबार। उस समय इन 'अकेले' कारबारोंका संगठन इस प्रकारका था जिसे हम

पुराने ढर्रेका कह सकते हैं। यह तब खड़े किये गये थे जब व्यापार १८८९-१८९० में अपनी ऊँचीसे ऊँची हदपर चमक रहा था। ज्यों ही क़ीमतें गिरीं और माँगमें कमी हुई त्योंही इन 'अकेले' कारबारोंको मुसीबतोंने आ घेरा। लेकिन विशाल संयुक्त कारबारोंपर कुछ भी असर न हुआ, और हुआ भी तो बहुत थोड़े समयके लिये। इसका नतीजा यह हुआ कि इसबार उद्योगमें केन्द्रीकरण १८७३ की अपेक्षा कहीं अधिक हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस संकटने चुन चुनकर मज़बूतसे मज़बूत कारबारोंको ही छोड़ा। लेकिन उस समय साधन-विधि की इतनी उन्नति न हो पाई थी कि वे कारख़ाने, जो संकटको सफलतापूर्वक पार कर गये थे, एकाधिकार प्राप्त कर सकते। एकाधिकार तो वाक़ईमें उस ऊँचे दर्जेके और स्थायी एकाधिकारको कहते हैं जिसका उपभोग आजकल बिजली और लोहेके कारबार कर रहे हैं। किसी हदतक इस प्रकारका एकाधिकार इंजिनीयरिंग, धात साफ़ करनेके कुछ उद्योग, यातायात और कुछ दूसरे उद्योगोंके कारबारोंको भी प्राप्त है। बिजली और लोहेके बड़े बड़े कारबार साधन-विधिके बीहड़ तरीक़े काममें लाते हैं, उनका संगठन बड़ा मज़बूत होता है, और ढेरों पूँजी लगी रहती है। इन्हीं सब कारणोंकी वजहसे वे एकाधिकार प्राप्त कर सके हैं और उसे क़ायम रखते हैं।"

एकाधिकार—यह है "पूंजीवादके विकासकी ताज़ीसे ताज़ी शक्ल" का अन्तिम शब्द। लेकिन अगर हम यह न समझ लें कि इस मामलेमें बैंकोंकी क्या हैसियत है और उनका क्या नवीन कार्य है तो अर्वाचीन एकाधिकारोंके महत्व और वास्तविक शक्तिका ठीक ठीक अन्दाज़ न कर सकेंगे और हम जो कुछ भी समझेंगे, अधूरा और नाकाफ़ी होगा।

दूसरा अध्याय

बैंक और उनका नवीन कार्य

बैंकोंका पहला और बुनियादी काम यह होता है कि वे देना चुकता करनेमें बीचके दलालका काम करते हैं। इस प्रकार वे बेकार पूँजीको उपजाऊ बना देते हैं। मतलब यह कि जो पूँजी किसी काममें नहीं लगी हुई थी वह अब मुनाफ़ा पैदा करने लगती है। रुपये पैसेकी शक्लमें जितनी भी क़िस्मकी आमदनी होती है बैंक सबको इकट्ठा करते हैं और फिर उसको पूँजीपतियोंके सुपुर्द कर देते हैं। पूँजीपति उसका चाहे जैसा इस्तेमाल कर सकते हैं।

ज्यों ज्यों बैंकिंग (banking) का कारबार बढ़ता है और थोड़ी सी संस्थाओंमें उसका केन्द्रीकरण होता जाता है, त्यों त्यों बैंकोंका बीचके दलालका काम छूटता जाता है और वे सर्वेसर्वा एकाधिकारी बनते जाते हैं। अब छोटे छोटे व्यापारियों और पूँजीपतियोंकी सारीकी सारी पूँजीपर उनका अधिकार होजाता है। अब वे एक या कई देशोंके उत्पादन-साधनों और कच्चे मालके ज़रियोंके एक बहुत बड़े हिस्सेके मालिक भी बन जाते हैं। पूँजीवाद बढ़ते बढ़ते जब पूँजीवादी साम्राज्यवादकी शकल लेता है तब उसका यह पहला तरीक़ा चलता है कि बहुतसे छोटे छोटे बीचके दलालका काम करनेवाले बैंक ख़त्म हो जाते हैं और चन्द एकाधिकारी बैंक उनका स्थान ले लेते हैं। इसीलिए पहले बैंकोंके केन्द्रीकरणपर विचार करना आवश्यक है।

सन् १९०७–१९०८ में जर्मनीमें, जितने भी दस लाख मार्कसे अधिक पूँजीवाले ज्वाइण्ट-स्टाक* (joint stock) बैंक थे, उनकी कुल अमानत (deposits)–जितना भी लोगोंका रुपया जमा था—सब मिलकर ७ अरब मार्क थी। १९१२–१३ में वह ९ अरब ८० करोड़ मार्क होगई, इस प्रकार ५ वर्षमें ४० फ़ीसैकड़ाकी वृद्धि हुई। २ अरब ८० करोड़की बढ़तीमेंसे २ अरब ७५ करोड़ मार्क ५७ बैंकोंके पास थे जिनमेंसे हरएककी पूँजी १करोड़ मार्कसे अधिक थी। अमानत बड़े और छोटे बैंकोंमें किस प्रकार बटी हुई थी, इसका विवरण हम नीचे देते हैं:—

कुल अमानतका प्रतिशत

	बर्लिन के ९ बड़े बड़े बैंकोंमें।	४८ दूसरे बैंकोंमें जिनमेंसे हरएककी पूँजी १करोड़ मार्क से अधिक थी।	११५ बैंकोंमें जिनमेंसे हर एककी पूँजी १० लाखसे १करोड़ मार्क तक थी।	१० लाख-से कम पूँजीवाले बैंकोंमें
१९०७–१९०८	४७	३२·५	१६·५	४
१९१२–१९१३	४९	३६	१२	३

* ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनी—जिन कम्पनियोंकी पूँजी हिस्सोंसे बनी होती है, और वे साथ ही रजिस्टर्ड होती हैं।

इससे बिल्कुल साफ़ मालूम पड़ता है कि बड़े बैंक छोटे छोटे बैंकोंको चूस रहे हैं। हम देखते यह हैं कि बड़े बैंकोंकी अमानत बराबर बढ़ती चली जा रही और छोटे छोटे बैंकोंकी घट रही है। केवल ९ बैंकोंने लगभग आधी अमानतको अपनी मुट्ठीमें कर लिया है। लेकिन यहाँपर हमने दूसरी बहुतसी महत्वपूर्ण बातोंका ख़याल ही नहीं किया है, जैसे, बहुतसे छोटे छोटे बैंक अब स्वतंत्र रूपसे नहीं हैं बल्कि बड़े बैंकोंकी शाखायें बन गये हैं इत्यादि। इन सब बातोंके सम्बन्धमें आगे विचार किया जायगा।

१९१३ के अन्तमें शूल्ट्से-गायफ़र्नीट्स (Schulze-Gaevernitz) ने हिसाब लगाया था कि इन ९ बैंकोंमें उस समय ५ अरब १० करोड़ मार्क अमानत थी, जब कि सब बैंकोंकी कुल अमानत १० अरब मार्क होती थी। इन बैंकोंकी अमानत व पूँजीपर विचार करते हुए इस लेखकने इस प्रकार लिखा है कि:—

"१९०९ के अन्तमें, बर्लिनके ९ बड़े बैंकों और उनके **सम्बद्ध** (affiliated) बैंकोंके अधिकारमें ११ अरब ३० करोड़ मार्क थे। यह रक़म जर्मनीके बैंकोंकी कुल पूँजीका ८३ फ़ीसैकड़ा थी। ड्वाइचे बांक (Deutsche Bank) और उसके सम्बद्ध बैंकोंके अधिकारमें सब मिलकर ३ अरब मार्ककी पूँजी थी। इस बैंकके पास पुरानी दुनियाँ भर (एशिया, योरप, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रिका) में प्रूशियन स्टेट रेलवे (Prussian State Railways) को छोड़कर सबसे अधिक पूँजी है और वह सबसे अधिक फैली हुई (decentralised) है।

हमने 'सम्बद्ध' बैंकोंपर ज़्यादा ज़ोर दिया है। उसकी वजह यह है कि इस बातका तआल्लुक़ अर्वाचीन पूँजीवादी केन्द्रीकरणकी सबसे मार्केकी

ख़ासियतसे है। बड़े कारबार, ख़ासतौरसे बैंक, इतना ही नहीं करते कि छोटे छोटे कारबारों (या बैंकों) को हज़म कर जाते हों बल्कि वह उनका अपनेमें सम्मिलित करते हैं, उनको अपने अधीन करते हैं, और अपने समूहमें ले आते हैं। इस अभिप्रायसे बीसों प्रकारके तरीकोंसे काम लिया जाता है। वे छोटे छोटे कारबारोंकी पूँजीमें हिस्सा डालना, उनके हिस्से ख़रीदना या अपने हिस्सोंसे बदलना, किसी प्रकारकी साखों (credits) द्वारा उनसे सम्बन्ध जोड़ना, इत्यादि साधन काममें लाते हैं। 'अर्वाचीन शिरकत करनेवाली और उद्योगमें पूँजी लगानेवाली कम्पनियों' (participating and financing companies) पर प्रोफ़ेसर लाइफ़मानने ५०० पृष्ठोंकी एक पुस्तक ही लिख डाली है। परन्तु दुर्भाग्यसे उसने विषयकी सामग्रीको बिना अच्छी तरह समझे हुए ही बड़े रद्दी रद्दी सैद्धान्तिक विचार ज़ाहिर कर दिये हैं। किन्तु जर्मनीके विशाल बैंकोंपर, बैंकर रीसेर (Riesser) की लिखी हुई पुस्तक अच्छी है। उसमें 'शिरकत' (participation) का तरीक़ा किधर लिये जारहा है—इस विषयपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। उसके प्रमाणोंको परखनेसे पहले हम यहाँ 'शिरकत'के तरीक़ेका एक सच्चा उदाहरण देते हैं।

ड्वाइचे बांक (Deutsche Bank) के समूहकी गिनती सबसे बड़े समूहोंमें है। अब हमें उन ख़ास ख़ास तरीक़ोंको देखना है जिन्होंने इस समूहके सब बैंकोंको आपसमें बाँध रखा है। लेकिन इससे पहले हमें यह समझलेना चाहिये कि 'शिरकत' या यों कहना चाहिये कि अधीनता (छोटे बैंकोंकी ड्वाइचे बांकके प्रति) पहले, दूसरे, और तीसरे दर्जे की, अलग अलग होती है।

ड्वाइचे बांककी 'शिरकत' और सम्बन्धोंका ख़ाका आगे दिया जाता है:—

ड्वाइचे बांक शिरकत रखता है

	स्थायीरूपसे	अनिश्चित कालके लिए	कभी कभीके लिए	कुल जोड़
पहले दर्जेकी अधीनताके	१७ बैंकोंमें जिनमेंसे ९ शिरकत रखते हैं	५ बैंकोंमें	८ बैंकोंमें जिनमेंसे ५ शिरकत रखते हैं	३० बैंकोंमें जिनमेंसे कुल १४ शिरकत रखते हैं
दूसरे दर्जेकी अधीनताके	दूसरे ३४ बैंकोंमें जिनमेंसे ४ शिरकत रखते हैं		दूसरे १४ बैंकोंमें जिनमेंसे २ शिरकत रखते हैं	दूसरे ४८ बैंकोंमें जिनमेंसे ६ शिरकत रखते हैं
तीसरे दर्जेकी अधीनताके	दूसरे ७ बैंकोंमें		दूसरे २ बैंकोंमें	दूसरे ९ बैंकोंमें

'पहले दर्जे' की अधीनताके 'अन्दर कभी कभी के लिए' जो ८ बैंक ड्वाइच्चे बांकके अधीन हैं, उनमेंसे तीन विदेशोंमें हैं :—एक ऑस्ट्रियाका है वियना "बांकफ़ेराइन" (Vienna "Bank-verein"); और दो

रूसके हैं—साईबेरियन कमर्श्यल बैंक (Siberian Commercial Bank) और रशियन बैंक फ़ॉर फ़ारेन ट्रेड (Russian Bank for foreign trade)। ड्वाइचे बांकके समूहमें कुल ८७ बैंक पूरे पूरे या अंशतः सम्मिलित हैं। इसकी अपनी और सम्मिलित बैंकोंकी पूंजी कुल मिलाकर दो या तीन अरब मार्क है :

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस बैंकके अधीन बैंकोंका एक बड़ा समूह है; और वह अपनेसे छोटे छोटे दूसरे दूसरे बैंकोंसे शिरकत, ख़ास कर इसलिए करता है कि पूँजीके बड़े बड़े कारबार (जैसे सरकारको क़र्ज़ देना इत्यादि) किये जायँ और उनसे ढेरों मुनाफ़ा उठाया जाय। यह मानना ही पड़ेगा कि अब इस बैंककी बीचके दलालकी हैसियत ख़त्म हो गई और वह कुछ सर्वेसर्वा एकाधिकारियोंका परिषद् बन गया है।

जर्मनीमें बैंकिंगका केन्द्रीकरण १९वीं शताब्दीके आख़िर और बीसवीं शताब्दीके शुरूमें ख़ूब चला जिसका पता रीसेर (Riesser) के दिए हुए आँकड़ोंसे चलता है। उन्हें संक्षेपमें नीचे दिया जाता है :—

जर्मनीके ६ बड़े बैंकोंका ब्यौरा

	जर्मनी में प्रधान कार्यालय और शाखा कार्यालय	जर्मनीमें अमानत और विनिमय कार्यालय	जर्मनीके ज्वाइंट-स्टाक बैंकोंमें स्थायी शिरकत	दफ्तरों और बैंकोंके सम्बंधोंकी कुल संख्या*
१८९५	१६	१४	१	४२
१९००	२१	४०	८	८०
१९११	१०४	२७६	६३	४५०

* इस जोड़ में व्यक्तियोंके बैंक भी शामिल हैं जिनमें गुप्तरूपसे बड़े बैंकोंका हिस्सा है।

हम तो देखते हैं कि जर्मनी भरमें जैसे नहरोंका एक जालसा बड़ी तेज़ीसे बिछ गया हो। इनके द्वारा सारीकी सारी पूंजी और रुपये पैसेकी सब तरहकी आमदनी केन्द्रित हो रही है। हज़ारोंके हज़ारों इधर उधर फैले हुये आर्थिक कारबार एक राष्ट्रीय पूंजीपति (national capitalist) की शक्ल इख़्तियार कर रहे हैं। आगे चलकर यही फिर एक संसार-व्यापी पूंजीवादी आर्थिक संगठन (capitalist economic unit) हो जायगा। ऊपर हमने शूल्ट्से-गायफ़नीट्सका अवतरण दिया है जिसमें उसने "फैलाव" (decentralisation) का ज़िक्र किया है।

यह महोदय अर्वाचीन पूँजीजीवी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था (bourgeois political economy) के पण्डित हैं। इनके "फैलाव"का दरअसल मतलब यह है कि, जो बैंक पहले, इस समयके मुक़ाबले में स्वतन्त्र थे, या जो स्थानीय लेनदेन करते थे वे ज़्यादासे ज़्यादा तादादमें अधीन होते जा रहे हैं। लेकिन यह तो 'फैलाव' नहीं बल्कि वास्तवमें केन्द्रीकरण है। वाक़ईमें यह है विशाल एकाधिकारोंकी शक्ति, महत्व और उनके नवीन कार्यके क्षेत्रका विस्तार हो जाना।

अधिक पुराने पूँजीवादी देशोंमें बैंकिंगका जाल और भी अधिक घना है। इंगलैंड और आयरलैंडमें १९१० में बैंकोंकी शाखाओंकी कुल संख्या ७१५१ थी। चार सबसे बड़े बैंकोंमेंसे हर एककी शाखायें ४४७ से ६८९ तक थीं। दूसरे ४ बैंकोंमेंसे हर एककी २०० से अधिक और बाक़ी ११ मेंसे हरएककी १०० से अधिक शाखायें थीं।

फ्रांसमें तीन सबसे बड़े बैंक थे (क्रेदी लिआँने, काँपत्वार नॉसिओनॉल देस्काँपते, और सोसियेते जेनेराले—(Credit Lyonnais, Comptoir National d'Escompte, Societe Generale)। इनका कारबार जिस प्रकारसे बढ़ा और शाखाओंका जाल जिस ढंगसे फैला, उसका ख़ाका आगे दिया जाता है

वर्ष	शाखायें और कार्यालय पेरिस और उसके आस-पासके क़स्बोंमें	प्रान्तोंमें शाखायें	कुल	पूँजी और अतिरिक्तधन लाख फ्रांकमें	अमानत लाख फ्रांकमें*
१८७०	१७	४७	६४	२०००	४२७०
१८९०	६६	१९२	२५८	२६५०	१२४५०
१९०९	१९६	१०३३	१२२९	८८७०	४३६३

आजकल एक बड़े बैंकके 'सम्बन्ध' किस प्रकारके होते हैं, इसको दिखानेके लिए रीसेरने डिस्कॉण्टो-गेसेलशाफ्थ (Disconto-Gesellschaft) बैंकके प्रेषित और प्राप्त पत्रोंकी संख्या दी है, जिसे हम नीचे देते हैं। इस बैंकका स्थान जर्मनीमें ही नहीं बल्कि दुनियाँ भरके सबसे बड़े बैंकोंमें है। इसकी पूँजी १९१४ में ३० करोड़ मार्कके लगभग थी।

वर्ष	प्राप्त पत्रोंकी संख्या	प्रेषित पत्रोंकी संख्या
१८५२	६१३५	६२९२
१८७०	८५८००	८७५१३
१९००	५३३१०२	६२६०४३

पेरिसके बड़े बैंक क्रेदी लिऑनेमें १८७५ में, २८५३५ खाते थे। १९१२ में खातोंकी संख्या ६३३५३९ हो गयी।

लम्बे लम्बे विवेचनोंकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि ये आँकड़े ही इस बातको अच्छी तरह सिद्ध कर देते हैं कि पूँजीका केन्द्रीकरण और बैंकोंके कारबारका विस्तार उनके अर्थको जड़बुनियादसे बदले दे रहा

---

* आजकलकी विनिमयकी दरसे १ फ्रांक = ३ आनेके लगभग।

है। अलग अलग अपना अपना कारबार करनेवाले पूँजीपति अब एक सामूहिक पूँजीपति (collective capitalist) की शक्ल इख़्तियार कर रहे हैं। बैंकको चन्द पूँजीपतियोंके चलते खातोंका हिसाब रखनेमें एक सहायक और महेज़ काग़ज़ी कार्रवाई करनी होती है। लेकिन जब ये क्रियायें बहुत लम्बी चौड़ी हो जाती है तब चन्द एकाधिकारी बैंक संचालक, पूँजीवादी समाजके व्यवसायिक और औद्योगिक (commercial and industrial) दोनों ही प्रकारके सब कार्योंका नियन्त्रण करने लगते हैं। बैंक-संचालक अपने बैंकके 'सम्बन्धों', चलते खातों, लेन देनके व्यवहारों और दूसरे ज़रियोंसे पहले विभिन्न पूँजीपतियोंकी हैसियत ठीक ठीक निश्चित कर लेते हैं, और फिर वे उनका नियन्त्रण करने लगते हैं। वे पूँजीपतियोंकी साखको घटा या बढ़ा कर, उसमें सहूलियतें पैदाकरके या रुकावटें डालकर, उनपर प्रभाव जमाते हैं। अन्तमें वे उनके पूरे पूरे भाग्यविधाता बन जाते हैं। उनकी आयको निश्चित करना, उनको बे-पूँजी कर देना या उनकी पूँजीको तेज़ीसे बेहद बढ़वा देना यह सब एकाधिकारियोंके हाथमें रहता है।

हमने अभी कहा है कि बर्लिनके डिस्कॉण्टो-गेसेलशाफ़्थ बैंककी पूँजी १९१४ में ३० करोड़ मार्क थी। बर्लिनके दो सबसे बड़े बैंकों—डिस्कॉण्टो-गेसेलशाफ़्थ ओर ड्वाइचे बांकमें सर्वेसर्वा बननेके लिए युद्ध चला। डिस्कॉण्टो-गेसेलशाफ़्थकी पूँजीका इतना बढ़ जाना इसी युद्धका फल था।

१८७० में डिस्कॉण्टो-गेसेलशाफ़्थ की पूँजी, जब कि वह नया ही था, १ करोड़ ५० लाख मार्क थी। ड्वाइचे बांककी पूँजी उस समय ३ करोड़ मार्ककी थी। १९०८ में पहलेकी पूँजी २० करोड़ मार्क होगई और दूसरेकी १७ करोड़ मार्क। १९१४ में डिस्कॉण्टो-गेसेलशाफ़्थने अपनी पूँजी २५ करोड़ मार्क करली। उधर ड्वाइचे बांक एक और प्रथम श्रेणीके बड़े बैंक—शाफ़हाउसेन बांक फ़ेराइन (Schaffhausen Bank-

verein)–से मिल गया, और तब उसकी पूँजी ३० करोड़ मार्क होगई। इसके साथ साथ जैसे जैसे संघर्ष चलता गया वैसे वैसे इन दोनों बैंकों ड्वाइचे और डिस्कॉण्टोमें भी आपसमें अधिकाधिक स्थायी शर्तनामे (agreements) होते रहे। बैंकिंगके विशेषज्ञ, जो कि आर्थिक समस्या को साधारणसे साधारण पूँजीजीवी सुधारवादकी हदसे ज़रा भी आगे नहीं देखते, इस मामलेके सम्बन्धमें निम्नलिखित नतीजे पर पहुँचे।

जर्मन पत्रिका डीबांक (Die Bank) ने डिस्कॉण्टो–गेसेलशाफ़्थकी पूँजी ३० करोड़ मार्क होजानेकी आलोचनाके सिलसिलेमें इस प्रकार लिखा था:—

"दूसरे बैंक भी यही रास्ता इख़्तयार करेंगे.....और कुछ समयमें यह होगा कि आज जो ३०० आदमी जर्मनीके ऊपर आर्थिक शासन कर रहे हैं, उनकी संख्या घटकर ५० और फिर २५ या इससे भी कम रह जायगी। यह भी आशा नहीं की जा सकती कि केन्द्रीकरणकी जो नयी प्रवृत्ति चल पड़ी है, वह बैंकिंग तक ही सीमित रहेगी। कुछ बैंकोंका अधिक घनिष्ट सम्बन्ध होजानेका स्वाभाविक फल यह होगा कि जिन जिन औद्योगिक संघोंको वे सहायता देते हैं, उनका सम्बन्ध भी अधिक गहरा हो जायगा।.....एक दिन वह आयेगा कि, जब हम सुन्दर प्रातः कालके समय जागेंगे, तो अपनी आँखोंके सामने ट्रस्टोंके सिवा कुछ भी न देखकर भौचक्के रह जायँगे। हमारे सामने नयी ज़रूरत यह आ पड़ेगी कि वैयक्तिक एकाधिकारोंके स्थानपर राज्यके एकाधिकार स्थापित किये जायँ। लेकिन हमें किसी भी बातके लिए अपनेको भलाबुरा कहनेकी ज़रूरत न होगी। यदि होगी तो सिर्फ़ इसीलिए कि जिन चीज़ोंको हमने स्टाकों* (stocks) के हिस्सों द्वारा थोड़ी सी उत्तेजना दी थी उनको स्वाभाविक रूपसे बढ़ने दिया।

* स्टाक—प्रायः सरकारी ऋण पत्रोंके लिये कहते हैं। कभी कभी कम्पनियोंके

यह है पूँजीजीवी सम्पादनकला की कमज़ोरीका एक नमूना। पूँजीजीवी विज्ञानमें और इसमें फ़र्क़ इतनाही है कि पूँजीजीवी विज्ञानको सचाईसे कम तआल्लुक़ रहता है, वह तत्व पर पर्दा डालने की कोशिश करता है और जंगलको पेड़ोंसे छिपाना चाहता है। केन्द्रीकरणके नतीजेको देखकर 'भौचक्का' रहजाना, जर्मन पूँजीवादी सरकार या पूँजीवादी 'समाज' को (अपनेको) भला बुरा कहना, यह डरना कि स्टाकों की वजहसे केन्द्रीकरण 'तेज़ीसे होगा'—जैसा कि जर्मनीका एक कार्टेलोंका विशेषज्ञ ट्शीर्शकी (Tschierschkey) को अमेरिकाके ट्रस्टोंसे भय लगता है और वह जर्मन कार्टेलोंको अच्छा समझता है, इसलिए कि वे ट्रस्टोंसे भिन्न हैं और आर्थिक या साधन-विधिकी उन्नतिको इतनी तेज़ीसे इतना बेहद नहीं बढ़ा देते—क्या ये सब कमज़ोरियाँ नहीं हैं?

लेकिन वाक़यात तो वाक़यात ही रहेंगे। जर्मनीमें ट्रस्ट नहीं हैं, कार्टेल ही सही; लेकिन जर्मनी पर ३०० से अधिक धनकुबेरोंका 'शासन' नहीं है और उनकी संख्या बराबर घट रही है। सभी पूँजीवादी देशोंका तरीक़ा यही है कि बैंक हर हालत में पूँजीके केन्द्रीकरण की प्रगतिको बेहद उत्तेजित कर देते हैं, फिर चाहे उस देशमें बैंकिंगका कोई भी क़ानून क्यों न हो। मार्क्सने अपने ग्रन्थ कैपिटल (Capital) में ५० वर्ष पहले लिख दिया था कि बैंकिंगका तरीक़ा 'सार्वभौमिक' बहीखाते (universal book keeping) के, और सामाजिक पैमाने पर उत्पादन-साधनोंके वितरणके रूपको हमारे सामने रख देता है।

एक प्रकारके हिस्सोंको भी स्टाक कहते हैं। पर साधारण हिस्सेसे स्टाक भिन्न होता है। साधारण हिस्सेके टुकड़े नहीं किये जासकते हैं, अगर १०) का हिस्सा है तो आधा या चौथाई नहीं खरीदा या बेचा जासकता है। लेकिन स्टाक अगर २५०) का है तो उसका आधा चौथाई या तिहाई भी खरीदा या बेचा जा सकता है।

हमने बैंकों की पूँजी की वृद्धि, और बड़े बैंकोंकी शाखाओं, दफ़्तरों और खातों की तादादकी बढ़ती वग़ैराके सम्बन्धमें जो आंकड़े दिये हैं, वे वास्तवमें हमारे सामने सारे पूँजीपतिवर्गके 'सार्वभौमिक बहीखाते' की शक्ल रख देते हैं। बल्कि पूँजीपतियोंका ही क्यों, क्योंकि बैंक तो, चाहे अस्थायी रूपसे ही सही, छोटे व्यापारियों, नौकरों और कुछ ऊपरी श्रेणीके मज़दूरों की सब तरह की रुपये-पैसे की आमदनीको भी इकट्ठा करते हैं। रहा 'सामाजिक पैमाने पर उत्पादन-साधनोंका वितरण', अगर उसके तरीक़ोंको देखा जाय, तो वह अर्वाचीन बैंकोंका ही पैदा किया हुआ है। यह भी न भूल जाना चाहिये कि इन बैंकों की यह हालत है कि फ्रांस और जर्मनीमें सबसे बड़े बैंकों की संख्या क्रमशः ३ से ६ तक और ६ से ८ तक होगी लेकिन इनका अरबोंकी पूँजीपर अधिकार है। तो वास्तवमें उत्पादन-साधनोंका वितरण, तत्वतः, सामाजिक नहीं बल्कि वैयक्तिक है। मतलब यह कि वह बड़ी पूँजी की स्वार्थसिद्धि, ख़ासतौरसे बहुत बड़ी एकाधिकारी पूँजीके स्वार्थसाधनके लिये ही होता है। यह भी समझ लेना चाहिये कि बड़ी पूँजीका कारबार किन अवस्थाओंमें चलता है। उन्हींमें तो, जिनमें कि जनता भूखों मरती है, खेती औद्योगिक उन्नतिसे बुरी तरह पिछड़ी रहती है, और उद्योगमें भी 'भारी उद्योग' दूसरे साधारण उद्योगोंसे कठोरता पूर्वक कर वसूल करते हैं यानी उनको पीसते रहते हैं।

सेविंग्स बैंकों और पोस्ट आफ़िसोंने भी, पूँजवादी अर्थ-व्यवस्थाको सामाजिक रूप देनेके मामलेमें, बैंकोंसे होड़ लगाना शुरू कर दिया है। वे अधिक 'फैले' (decentralised) हैं, जगह जगह पर हैं, और उनके कार्यक्षेत्र दूर दूरके भागोंमें हैं। बैंकों और सेविंग्स बैंकोंकी अमानतकी वृद्धिके तुलनात्मक आँकड़े अमेरिकाके एक कमीशनने इकट्ठे किये हैं। उन्हें हम आगे देते हैं :—

अमानत (अरब मार्कमें)

वर्ष	इङ्गलैंड: बैंकोंमें	इङ्गलैंड: सेविंग्स बैंकोंमें	फ्रांस: बैंकोंमें	फ्रांस: सेविंग्स बैंकोंमें	जर्मनी: बैंकोंमें	जर्मनी: सेविंग्स बैंकोंमें	जर्मनी: क्रेडिट सोसाइटियोंमें
१८८०	८·५	१·६	—	१·०	०·५	२·६	०·४
१८८८	१२·५	२·१	१·५	२·२	१·१	४·५	०·४
१९०८	२३·२	४·२	३·७	४·२	७·१ (१९०७)	१३·९ (१९०७)	२·२ (१९०६–७)

सेविंग्स बैंक अमानत पर ४ या ४½ फ़ीसैकड़ा सूद दिया करते हैं। इसलिये वे अपनी पूँजीको अच्छे मुनाफ़ेके कामोंमें लगाते हैं। उनको हुंडी और रहनका कारबार करना पड़ता है। इसवक्त हालत यह है कि बैंकों और सेविंग्स बैंकोंका भेद बराबर कम होता जारहा है; जिसके सुबूतकी मिसाल यह है कि बोचम और अर्फ़ूर्टके व्यवसायसंघों (The Chambers of Commerce of Bocham and Erfurt) की माँग है कि सेविंग्स बैंकोंको शुद्ध बैंकिंगके कामों (जैसे विनिमयकी हुण्डी—bill of exchange) पर मितीकाटा लेना (discounting) वग़ैरासे रोक दिया जाय। उनकी यह भी माँग है कि पोस्ट आफ़िसोंपर भी बैंकिंग करनेकी रुकावट हो। बैंकोंके अधिपतियोंको भय है कि कहीं राज्यका एकाधिकार यकायक उनपर क़ब्ज़ा न कर ले। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह भय सिर्फ़, एकही व्यापारके दो विभागोंके अध्यक्षोंके प्रतियोगिताके भावको ज़ाहिर करता है और इसके अतिरिक्त उसका दूसरा अर्थ नहीं है। क्योंकि एक तरफ़, यदि सेविंग्स बैंकोंकी छानबीन कीजाय, तो अन्तमें यह स्पष्ट होजायगा कि इनकी अरबोंकी पूँजी पर उन्हीं

बैंक-अधिपतियोंका अधिकार है; और दूसरी तरफ़ राज्य-एकाधिकारका भी मतलब यही होता है कि किसी उद्योगके दिवालिया धनकुबेरोंकी आमदनीकी रक्षा की जाय और उसे बढ़ाया जाय। इसके अतिरिक्त राज्य-एकाधिकारका भी दूसरा उद्देश्य नहीं होता।

हम यह भी देखते हैं कि स्टॉक एक्सचेंजों* (stock exchange) का महत्व घट गया है। इससे दूसरी बातोंके साथ साथ यह भी ज़ाहिर होता है कि पुराने ढंगका पूँजीवाद—जिसमें मुक्त प्रतियोगिता (free competition) का ज़ोर था—समाप्त होगया, या हो रहा है, और उसका स्थान नवीन पूँजीवादने ले लिया है। नवीन पूँजीवादमें एकाधिकारका राज्य है।

जर्मन पत्रिका डी बांक (Die Bank) ने लिखा था—"अब, बहुत अरसे पहलेसे, स्टॉक एक्सचेंजकी पहले जैसी स्थिति नहीं रही। अब वह विनिमयका बीचका अनिवार्य दलाल नहीं रहा, जैसी कि उस समय हालत थी जब कि बैंक अपने गाहकोंको जारीशुदा सिक्यूरिटियाँ† (securities) ज़्यादा तादादमें नहीं दे सकते थे।"

"अब बैंक जितने ही बड़े होते जा रहे हैं और केन्द्रीकरण जितना ही बढ़ता जा रहा है उतना ही हर एक बैंक 'स्टाक एक्सचेंज' बनता जा रहा है। अगर पहले (१८७०–७९) स्टाक एक्सचेंज जवानीके जोशसे बवल चला था (१८७३ के व्यापारिक गिरावकी तरफ़ इशारा है), जब कि वह स्टाकों (stocks) की सट्टेबाज़ी (speculation) से

* स्टाक एक्सचेंज—हर एक देशमें कुछ बड़े बड़े शहरोंमें एक बाज़ार होता है जहाँ पर स्टाकों—सरकारी ऋणपत्रों और कम्पनियोंके हिस्सों की ख़रीदफ़रोख़्त होती है। हिन्दुस्तानमें बम्बई और कलकत्तेमें स्टॉक एक्सचेंज हैं।

† सिक्यूरिटी—एक प्रकारके सरकारी ऋणपत्र को कहते हैं।

फ़ायदा उठाकर जर्मनीमें उद्योगोंको खूब बढ़ा रहा था, तो अब यह हालत है कि बैंकों और उद्योगोंके लिये उसकी (स्टाक एक्सचेंजकी) कोई आवश्यकता ही नहीं रही। अब वे उसके बिना ही चल सकते हैं। इस समय तो हमारे बड़े बड़े बैंक उल्टे उसी पर हुकूमत कर रहे हैं। इससे यही ज़ाहिर होता है कि जर्मन औद्योगिक राज्य (German Industrial state) का संगठन पूरा हो चुका है। यह कहा जा सकता है कि इस कारणसे स्वतः क्रियाशील आर्थिक विधानों (automatically functioning economic laws) की सीमा संकुचित होगई है, और ज्ञानपूर्वक संचालित (conciously regulated) बैंकोंकी सीमा बढ़ गई है। इसीलिये हमें यह भी मानना पड़ेगा कि चन्द ख़ास ख़ास व्यक्तियोंके ऊपर राष्ट्रकी आर्थिक ज़िम्मेदारी बहुत अधिक होगई है।"

यह लिखा था जर्मन प्रोफ़ेसर शूल्ट्से-गायफ़नीर्ट्स (Sculze–Gaevernitz) ने जो कि जर्मन साम्राज्यवादकी दम भरता है और सभी देशोंके साम्राज्यवादियोंके लिये प्रमाण है। वह बैंकोंके 'ज्ञानपूर्वक संचालन' की असलियत पर रंग चढ़ानेकी कोशिश करता है। वास्तवमें, 'ज्ञानपूर्वक संचालन' मुट्ठीभर सुसंगठित एकाधिकारियों द्वारा जनताकी लूटके सिवा कुछ भी नहीं है। पूंजीजीवी प्रोफ़ेसरका यह कर्त्तव्य भी तो नहीं है कि वह बैंकिंगके एकाधिकारियोंकी सारी मशीनको खोल दे या उनके सारे हस्कण्डों और षड्यन्त्रोंका भण्डाफोड़ कर दे। बल्कि उसे तो उनकी तारीफ़ ही करनी चाहिये।

रीसेर (Riesser) इससे भी अधिक प्रामाणिक अर्थशास्त्री है और बैंक-नेता भी है। वह भी इसी तरह अटल सच्ची घटनाओंको निरर्थक शब्दोंसे उड़ा देनेकी कोशिश करता है। वह कहता है:—

"स्टॉक एक्सचेंज सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्थाके लिये और सिक्यूरिटियोंको

चलता रखनेके लिये नितान्त अनिवार्य है। स्टाक एक्सचेंज पर ही सब आर्थिक आन्दोलन आकर मिलते हैं और व्यवस्थित हो जाते हैं। लेकिन धीरे धीरे उसका प्रभाव कम हो रहा है। इतना ही नहीं कि नापके ठीक साधन (exact instrument for measuring) की हैसियतसे उसकी शक्ति घट रही हो बल्कि आर्थिक आन्दोलनोंको व्यवस्थित करनेकी ताक़तको भी वह खो रहा है।"

दूसरे शब्दोंमें हमें यह कहना चाहिये कि, पुराना पूँजीवाद, जिसके कि मुक्त प्रतियोगिता, और अर्थव्यवस्थाको व्यवस्थित रखनेवाला नितान्त आवश्यक साधन स्टाक एक्सचेंज-ये दो प्रधान अंग हैं, ख़त्म हो रहा है। उसका स्थान नवीन पूँजीवाद ले रहा है। यह साफ़ ज़ाहिर है कि इस नवीन पूँजीवादमें कुछ अस्थायी ख़ासियतें—पूर्ण मुक्त प्रतियोगिता और पूर्ण एकाधिकारके बीचकी मिली हुई अवस्थायें—मौजूद हैं। अब सवाल यह है कि यह नया पूँजीवाद बदलते बदलते आख़ीरमें किस शक्लको इख़्तियार करेगा। लेकिन पूँजीजीवी विद्वान इस सवालसे घबराते हैं।

"तीस साल पहले, दस्तकारियोंके क्षेत्रके बाहर जितना भी आर्थिक काम होता था उसका ९०% भाग मुक्त प्रतियोगी व्यापारके ज़रियेसे चलता था। लेकिन आजकल इस 'दिमाग़ी काम'के ९०% हिस्सेको कर्मचारी (functionaries) करते हैं। इस परिवर्त्तनमें बैंकिंगका सबसे बड़ा हाथ है।"

यह शूल्ट्से-गायफ़र्नीट्सकी स्वीकृति है। यह भी तो उसी सवालके चारो तरफ़ चक्कर काटने लगती है कि यह नया पूँजीवाद, जो आजकल साम्राज्यवादी मंज़िलपर है, बदलते बदलते आख़िर क्या शक्ल इख़्तियार करेगा?

हम देखते हैं कि केन्द्रीकरणका नतीजा यह हुआ है कि समस्त पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था चन्द बैंकोंके हाथमें है। यह भी स्पष्ट दिखाई

दे रहा है कि इन बैंकोंमें आपसमें एकाधिकारी शर्तनामें करने और बैंक-ट्रस्ट बनानेकी प्रवृत्ति बराबर बढ़ रही है। यह स्वाभाविक है भी। इसीका फल यह है कि अमेरिकामें ९ नहीं बल्कि सिर्फ़ २ ही बड़े बैंक हैं। और वे हैं रॉकफेलर (Rockfeller) और मॉर्गेन (Morgan) अरब-पतियों के। इन दोनों बैंकोंके अधिकारमें ११ अरब मार्ककी पूँजी है। डिस्कॉण्टो-गेसेलशाफ़्थ बैंकका नाम पहले आ चुका है। जब इस बैंकने शाफ़हाउसेन बांक फ़ेरायनको अपने साथ सम्मिलित किया तब स्टाक एक्सचेंज-हित प्रचारक पत्र, फ्रांकफूर्टेर ट्साइटुंग (Frankfurter Zeitung) ने इस प्रकार आलोचनाकी थी:—

"बैंकोंके केन्द्रीकरणकी प्रगति बढ़ रही है और इस वजहसे ऐसी संस्थाओं (बैंकों) का दायरा घटता जा रहा है जिनसे भारी क़र्ज़ मिल सके। इसका यह नतीजा हो रहा है कि बड़े पैमानेके उद्योग चन्द बैंक-समूहोंपर आश्रित होते जा रहे हैं। औद्योगिक कम्पनियोंकी स्वतन्त्र प्रगतिमें रुकावट पड़ रही है। क्योंकि उद्योग और बंक-पूँजीका गहरा तआल्लुक़ है, और इन कम्पनियोंको बैंकों की पूँजी पर आश्रित रहना पड़ता है। इसलिये बड़े पैमानेका उद्योग, बैंकोंकी ट्रस्ट बनानेकी प्रगतिको तरह तरहकी आशंकाओंसे देख रहा है। हमने बार बार अकेले अकेले बड़े बड़े बैंकोंमें, आपसमें शर्तनामें होते देखे हैं। वाक़ईमें उनका मतलब होता है प्रतियोगिताको सीमित कर देना।"

फिर हमें यही कहना पड़ता है कि बैंकिंगकी उन्नतिका अन्तिम शब्द है—एकाधिकार।

बैंकों और उद्योगके घनिष्ट 'सम्बन्ध' ही इस बातको अच्छी तरह स्पष्ट कर देते हैं कि बैंकोंकी क्या नयी हैसियत है और उनका कौनसा नवीन कार्य है। जबकि बैंक किसी व्यापारीके नामकी हुण्डी (bill) पर मिती-

काटा लेता है (discounts) और उसके नामका खाता खोलता है, तो, इन क्रियाओंको यदि अलग अलग देखा जाय, तो हमको ऐसा मालूम होगा कि उस व्यापारीकी स्वतन्त्रता ज़रा भी कम नहीं होती और साधारण बीचके दलालके अलावा बैंकका कोई दूसरा काम नहीं है। लेकिन जब इन क्रियाओंकी तादाद बढ़ जाती है, और वे एकत्रित हो जाती हैं; जब बैंक ढेरों पूँजी 'इकट्ठी कर लेता है' और जब किसी फ़र्मका हिसाब रखते रखते बैंकको उसकी जानकारी बढ़ जाती है, तब नतीजा यह यह होता है कि औद्योगिक पूँजीपति (फ़र्मवाला) उस बैंकपर पूरा पूरा आश्रित हो जाता है।

इसके अलावा बैंकों और बड़े बड़े कारबारोंके बीच निजी सम्बन्ध (personal connection) बढ़ रहा है। बैंक और कारबार एक दूसरेके हिस्से रखते हैं और एकके डायरेक्टर दूसरेके डायरेक्टर नियुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार बैंक और कारबार एकरस मिलते जा रहे हैं।

जाइडेल्सने पूँजी और कारबारोंके इस प्रकारके आपसी केन्द्रीकरणके सम्बन्धमें खूब प्रमाण इकट्ठे किये हैं। उसके कथनके अनुसार बर्लिनके सबसे बड़े ६ बैंकोंके डायरेक्टर ३४४ औद्योगिक कम्पनियोंमें प्रतिनिधिकी हैसियतसे थे। इसी प्रकार उनके बोर्डोंके मेम्बर दूसरी ४०७ कम्पनियोंमें थे। इस तरह ७५१ कम्पनियोंमें इन ६ बैंकों का प्रतिनिधित्व था। २८९ कम्पनियोंमें या तो किसी कम्पनीके डायरेक्टर बोर्डमें इनके दो दो प्रतिनिधि थे या फिर किसी किसी कम्पनीके चेयरमैनके पदपर इनका एक एक आदमी था। यह कम्पनियाँ बीसों तरहके उद्योगोंमें लगी हुई हैं—जैसे, बीमा, यातायात (transport), रेस्टोरां (restaurant—चाय, जलपान वग़ैराकी दुकानें), थियेटर, और दूसरे कला-व्यापार इत्यादि। उधर इन ६ बैंकोंके डायरेक्टरोंमें (१९१०) ५१ बड़े बड़े उद्योग-पति भी थे। इन ५१ में क्रूप (Krupp) कम्पनी-

का एक डायरेक्टर और विशाल जहाज़ी कम्पनी, हैम्बर्ग-अमेरिकन लाइन (Humburg-American Line) का एक डायरेक्टर—ऐसे ऐसे महारथी शामिल थे। १८९५ से १९१० तक इनमेंसे हर एक बैंक सैकड़ों (२८१–४१९) कम्पनियोंके स्टाकों और ऋणपत्रों * (bonds) में शरीक होता रहा।

बैंकों और उद्योगोंका 'निजी सम्बन्ध' बिल्कुल पूरा और पक्का होजाता है जब कि दोनों मिलकर सरकारके साथ 'निजी सम्बन्ध' जोड़ते हैं।

जायडेल्सने लिखा है : "डायरेक्टर-बोर्डोंमें बड़े बड़े नामों और सिविल सर्विसके पूर्व-कर्मचारियोंको खूब स्थान दिये जाते हैं क्योंकि ये लोग अधिकारियोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेमें बहुत कुछ सुविधायें पैदा कर सकते हैं!"

आम तौरसे, पार्लियामेण्टका कोई मेम्बर या बर्लिन-शहर-काउन्सिलका एक सदस्य किसी बड़े बैंकके डायरेक्टरोंमें रहता है। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि पूँजीवादी एकाधिकारोंका निर्माण और उत्थान 'मानवी' और 'दैवी' सभी तरीक़ोंसे पूरी रफ़्तारसे चल रहा है। मौजूदा पूँजीवादी समाजकी बागडोर चन्द सैकड़ा बैंक-अधिपतियोंके हाथमें है। इनका, आपसमें कामके बटवारेका ख़ास ढंग भी विधिपूर्वक तैयार किया जा रहा है। इस सम्बन्धमें जाइडेल्स कहता है:—

"इस प्रकार, एक एक बड़े उद्योगपतिका क्षेत्र विस्तृत होरहा है, और दूसरी ओर प्रान्तीय बैंकोंके डायरेक्टरोंका कार्यक्षेत्र सीमित किया जा रहा है। साथ ही बड़े बैंकोंके डायरेक्टरोंमें व्यापारकी किसी ख़ास शाखाको अकेले अकेले ख़ास तौरसे अपने हाथमें लेनेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है। लेकिन यह

* ऋणपत्र—सरकार जो क़र्ज़ लिया करती है, क़र्ज़ देनेवाले को उसको जो सनद दी जाती है उसे कहते हैं।

तभी सम्भव है जब कि बैंकिंग बड़े पैमानेपर चले, और ख़ास तौरसे जब कि उसका उद्योगके साथ विस्तृत सम्बन्ध हो। यह कामका बटवारा (या एक एक व्यक्तिका विशेष उद्योगको विशेष रूपसे अपने हाथमें लेना) दो तरफ़ चलता है: एक ओर सम्पूर्ण उद्योगका मामला एकडायरेक्टरके सुपुर्द कर दिया जाता है, और दूसरी ओर एक एक डायरेक्टरके हाथमें वे सब छिटफुट फैले हुये कारबार या कारबार-समूह दे दिये जाते हैं जो सहकारी उद्योगों या एकही उद्योगमें लगे होते हैं, या जिनका स्वार्थ एक होता है। (पूँजीवाद अब इस हद तक बढ़ चुका है कि अब वह वैयक्तिक कम्पनियोंका संगठित निरीक्षण और नियन्त्रण होगया है)। एक डायरेक्टर घरेलू उद्योगको विशेष रूपसे अपने हाथमें ले लेता है—कभी कभी सिर्फ़ पश्चिमी जर्मनीके उद्योगको ही। कोई विदेशी राज्योंके सम्बन्ध और कोई विदेशी उद्योगोंके सम्बन्धोंकी देख भाल करता है। किसीके सुपुर्द उद्योगपतियों की जानकारी रखना और किसीके सुपुर्द स्टॉक एक्सचेंज की ख़रीदफ़रोख़्त करना रहता है। इसके अलावा बैंकके हरएक डायरेक्टरको अक्सर एकख़ास स्थान या खास उद्योग-शाखा देदी जाती है। कोई बिजलीकी कम्पनियोंके डायरेक्टर-बोर्डमें, कोई रासायनिक उद्योगमें, कोई शराब बनानेके उद्योगमें मुख्यरूपसे काम करता है। किसी एकको बहुतसे छिटफुट कारबारों और बीमा कम्पनियोंकी देख भाल देदी जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि जैसे जैसे बैंक उन्नति करते जा रहे हैं और उनके कार्य तरह तरहके होते रहे हैं वैसे वैसे डायरेक्टरोंके कामका बटवारा बढ़ता जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि डायरेक्टर लोग शुद्ध बैंकिंगके मामलोंसे किसी हद तक आगे चले जाते हैं और आम औद्योगिक मामलोंमें ज़्यादा होशियार हो जाते हैं; इसके अतिरिक्त ख़ास ख़ास उद्योगोंकी समस्याको वे विशेषरूपसे समझने लगते हैं। मतलब यह कि वे बैंकके औद्योगिक क्षेत्रके लिये दक्ष बन जाते हैं। इस तरीक़ेमें सहायताके ख़यालसे बैंक अपने डायरेक्टर-

बोर्डमें औद्योगिक मामलोंके दक्ष लोगोंको जैसे, कारख़ानेदारों, सिविल सर्विसके पूर्व कर्मचारियों और विशेषतः रेलवे और खानके पूर्व-कर्मचारियोंको रखते हैं।"

फ्रांसकी बैंकिंग-संस्थायें भी इसी प्रकारकी हैं, या कुछ थोड़ी सी भिन्न हैं। उदाहरणके लिये, फ्रांसके सबसे बड़े बैंकोंमेंसे एक क्रेदी लिआँने (Credit Lyonnais) ने बैंकिंग-क्षेत्रके सम्बन्धकी जानकारी रखनेके लिये एक ख़ास दफ़्तरका संगठन किया है, जिसका नाम सर्विस दे एतूदे फिनांसियेरे (Service des etudes financieres) है। इसमें ५० से अधिक इंजिनियर, आंकड़े इकट्ठे करनेवाले, अर्थशास्त्री, वकील वग़ैरा स्थायीरूपसे काम करते हैं। इसका ख़र्च ६ या ७ लाख फ्रांक सालाना बैठता है। इस दफ्तरके ८ विभाग हैं। एक औद्योगिक कारबारों की जानकारी इकट्ठी करता है। दूसरा आम आंकड़ोंका अध्ययन करता है। तीसरा रेलवे और जहाज़ी कम्पनियोंकी जानकारी रखता है। चौथा सिक्यूरिटियों और पांचवा बंक-पूँजी सम्बन्धी रिपोर्टोंकी जानकारीमें लगा रहता है, इत्यादि।

निचोड़ यह कि दो नतीजे सामने हैं: (१) ज़्यादा-ज़्यादा मज़बूत एकीकरण, या जैसा कि बुखारिन (Bukharin) ने ठीक ही कहा है, बैंक और औद्योगिक पूँजीका नसनस रेशा-रेशा मिलकर बढ़ना। (२) बैंकोंका ऐसी संस्थायें बन जाना जो वास्तव में सभी आर्थिक क्षेत्रोंमें अपना हाथ रखती हैं। इस प्रश्नके सम्बन्धमें जाइडेल्सके ही शब्द देना आवश्यक है क्योंकि उसने इस विषयकी खूब अच्छी तरह छानबीनकी है। वह लिखता है:—

"यदि सम्पूर्ण औद्योगिक सम्बन्धों (relationships) की छानबीन कीजाय तो हमें बैंकोंकी व्यापक प्रकृति (universal character) का पता चल जायगा। बड़े बैंक साधारण बैंकोंसे बिल्कुल भिन्न होते हैं।

वे, बैंकिंग-सम्बन्धी पुस्तकोंमें समय समयपर जो सिद्धान्त दिये जाते हैं, उनके भी ख़िलाफ़ जारहे हैं। उन सिद्धांतोंके अनुसार किसी बैंकको किसी एक क्षेत्र या एक उद्योगको ख़ास तौरसे अपने हाथमें लेना चाहिये, जिससे कि उसकी बुनियाद मज़बूत बनी रहे। लेकिन बड़े बैंक बिल्कुल उलटे जा रहे हैं। वे जहाँतक सम्भव होता है बीसों तरहके और दूर दूरके कारबारों से अपना सम्बन्ध जोड़नेकी कोशिश करते हैं; और उनका प्रयत्न, विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न उद्योगोंमें पूँजीके विषम वितरण (uneven distribution) को समान बनानेका रहता है। हम देखते भी हैं कि अकेली संस्थाओंकी उन्नतिसे पूँजीका विषम वितरण हुआ करता है। .....। एक प्रवृत्ति तो यह चल रही है कि उद्योगसे आम सम्बन्ध किया जा रहा है, दूसरी यह कि इन सम्बन्धोंको मज़बूत और स्थायी बनाया जा रहा है। बर्लिनके ६ बड़े बैंकोंमें दोनों ही प्रवृत्तियां काफ़ी हद तक बढ़ चुकी हैं।"

अक्सर उद्योग-व्यवसायके दायरोंमें बैंकोंके 'आतंकवाद' (terrorism) की शिकायत की जाती है। इस तरहकी शिकायतका होना कोई आश्चर्यकी बात भी नहीं है क्योंकि बड़े बैंकोंकी 'हुकूमत' ही इस ढंगकी होती है। नीचे की मिसालसे यह साफ़ हो जायगा। १९ नवम्बर, १९०१ को एक बर्लिन 'डी' बैंक ("D" bank)* ने जर्मन सेण्ट्रल नॉर्थवेस्ट सीमेण्ट सिण्डिकेट (German Central Northwest Cement Syndicate) के प्रबन्धकोंको इस प्रकार लिखा था:—

"१८ नवम्बर के राइख़साण्ट्साइगेर (Reichsanzeiger) में आपकी एक सूचना निकली है जिससे पता चलता है कि आपकी कम्पनी की एक साधारण बैठक ३० तारीख़को होगी। इस बैठकसे ऐसे प्रस्तावोंको

* बर्लिनके सबसे बड़े चार बैंकोंके नाम 'डी' ('D') अक्षर से शुरू होते हैं।

पास करनेकी आशा की जा सकती है, जोकि आपके हाथमें लिये हुये कारबारोंके मामलेमें रद्दबदल पैदा करदें। लेकिन हम इससे सहमत नहीं हैं। हमें सख़्त अफ़सोस है कि, इस वजहसे, आपके लिये जितना भी क़र्ज़ देनेका वादा किया गया है, उसको मजबूरन वापिस करना पड़ता है।.....अगर आपकी साधारण बैठक किसी भी ऐसे प्रस्तावको पास न करेगी जो हमें नामंज़ूर होगा, और अगर आइन्दाके लिये इस मामलेमें उचित विश्वास दिलाया जायगा तो नया क़र्ज़ देनेके सिलसिलेमें बातचीत करनेमें हमें कोई एतराज़ न होगा।

तत्वकी दृष्टिसे यह वही पुरानी शिकायत है कि बड़ी पूँजी छोटी पूँजी पर अत्याचार करती है। लेकिन इस मामलेमें साराका सारा सिण्डिकेट छोटी पूँजीकी श्रेणीमें आगया है। बड़ी पूंजी और छोटी पूंजीका संघर्ष फिरसे शुरू किया जारहा है। नये और बहुत ही ऊँचे तरीक़े इस्तेमाल किये जारहे हैं। विचार करनेसे यह बिल्कुल स्पष्ट होजाता है कि बैंकोंके अरबों पूँजीके कारबार साधन-विधिकी उन्नति इस ढंगसे कर सकते हैं जिसका पुराने ढंगसे कोई मुक़ाबला नहीं हो सकता। हतना ही है कि उनकी खोजोंसे वे कारबार लाभ उठा सकते हैं जिनकी उनसे दोस्ती होती है। जर्मनीमें इलेक्ट्रिक रेल्वे रिसर्च ऐसोसियेशन और सेण्ट्रल ब्योरो ऑव साइण्टिफ़िक ऐण्ड टेक्निकल रिसर्च (Electric Railway Research Association; Central Bureau of Scientific and Technical Research) इत्यादि इसी प्रकारकी संस्थायें हैं। ऐसी हालतमें छोटी पूंजी इन बैंकोंका किसी तरह भी मुक़ाबला नहीं कर सकती है।

बड़े बैंकोंके डायरेक्टर भी खूब अच्छी तरह समझते हैं कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाकी नयी अवस्थायें पैदा होरही हैं। लेकिन वे करही क्या सकते हैं।

जाइडेल्सने लिखा है:—"गत वर्षोंमें बड़े बैंकोंके डायरेक्टर दूसरी ही तरहके लोग होने लगे हैं। इस मामलेमें पिछले वर्षोंमें जो परिवर्त्तन होते रहे हैं, उनको अगर ध्यानसे देखा जाय, तो अवश्य ही समझमें आजायगा, कि किस प्रकार अधिकार धीरे धीरे उन लोगोंके हाथमें जारहा है,जिनका यह ख़याल है कि उद्योगकी चौतरफ़ा तरक्क़ीके लिये बड़े बैंकोंका अमली हिस्सा लेना बिल्कुल लाज़िमी है और इसकी ज़रूरत बराबर बढ़ रही है। अक्सर इन नये लोगों और पुराने डायरेक्टरोंमें मतभेद हो जाता है और कभी कभी आपसी झगड़े खड़े हो जाते हैं। झगड़ोंकी समस्यायें प्रायः ये रहती है कि: बैंक तो कर्ज़ देनेवाली संस्थायें हैं, वे अगर उद्योगमें भाग लेंगे तो उनको नुक़सान होगा या नहीं; क्या वे परखे हुये सिद्धान्तों और निश्चित मुनाफ़ेका खूनकर रहे हैं या नहीं; फिर क्या वे ऐसे काममें नहीं पड़ रहे हैं जिसका उनके कर्ज़ देनेके कामसे कोई सम्बन्ध नहीं है; क्या इस तरह वे ऐसे क्षेत्रमें नहीं चले जारहे हैं जहाँ उनको व्यापारिक उतार-चढ़ाव (fluctuation) की अन्धी शक्तियोंका बुरी तरह गुलाम बन जाना पड़े इत्यादि ? पुराने डायरेक्टरोंमेंसे बहुतोंके यही विचार हैं। लेकिन उधर नये लोग बैंकोंका उद्योगमें पड़ना बिल्कुल आवश्यक समझते हैं। दोनों विचार एक ही बातपर मिलते हैं कि अब तक न तो ठोस सिद्धान्त ही हैं और न बैंकोंकी इस नयी चहल-पहलमें कोई वास्तविक उद्देश्य ही।"

बात तो यह है कि पुराने पूँजीवादका एक ज़माना था वह ख़त्म हो गया और नया पूँजीवाद अभी अस्थायी मंज़िलमेंसे गुज़र रहा है। ऐसी सूरतमें एकाधिकार और मुक्त प्रतियोगिताका समझौता करानेके ख़यालसे 'ठोस सिद्धान्तों और वास्तविक उद्देश्य' को खोजना निश्चय ही निराशाजनक है। शूल्ट्से-गायफ़र्नीट्स और लाइफ़मान जैसे हिमायती और दूसरे सिद्धान्त-प्रवर्त्तक संगठित पूँजीवादकी ख़ूबियोंके

चाहे जैसे गीत गाते हों लेकिन व्यवहारिक लोग दूसरा ही विचार रखते हैं।

बड़े बैंकोंकी नयी चहलपहलकी बुनियाद कब पड़ी?—इस ख़ास सवालका काफ़ी माकूल जवाब जाइडेल्स इस तरह देता है:—

"१८९० से पहले नये ढंगके औद्योगिक कारबार नये उद्देश्यको लेकर, खड़े हो चुके थे। और बड़े बैंक भी केन्द्रित (centralised) और विस्तृत (decentralised—फैले हुए) दोनों ही आधार पर संगठित हो चुके थे। लेकिन उस समय तक इन औद्योगिक कारबारों और बैंकोंका आपसी सम्बन्ध कोई ख़ास वाक़या नहीं था। एक मानीमें ये 'सम्बन्ध' १८९७ में शुरू हुये। यह उस वक़्तकी बात है जब कि बड़े बड़े कारबार दूसरे बड़े कारबारोंमें समागये और इसी वजहसे पहले पहल, बैंकोंकी औद्योगिक नीतिके अनुसार नये ढंगका विस्तृत संगठन शुरू किया गया। शायद यह कहना ज़्यादा सही होगा कि ये 'सम्बन्ध' और बादको यानी १९०० में शुरू हुये। क्योंकि उस साल व्यापारिक संकट (crisis) की वजहसे उद्योग और बैंकिंगकी प्रगतिको ख़ूब उत्तेजना मिली थी। उसी वजहसे केन्द्रीकरणकी प्रगति भी मज़बूत हो पाई। ये संकटने ही सबसे पहले बड़े बैंकोंको उद्योगके 'सम्बन्धों' पर एकाधिकार दिलाया और इन सम्बन्धोंको ज़्यादा गहरा और क्रियाशील बना दिया।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि २० वीं शताब्दीके आरम्भसे पुराने पूँजीवादकी धारा बदल जाती है और वह नये पूँजीवादकी तरफ़ चलने लगता है। अब साधारण पूँजीकी हुकूमतका ख़ात्मा होने लगता है और बंक-पूँजीकी हुकूमत क़ायम होने लगती है।

तीसरा अध्याय

बंक-पूंजी और उसके व्यवस्थापकोंका गुट-तन्त्र*

हिल्फ़र्डिंग (Hilferding) कहता है: "उद्योगपति जितनी भी पूँजी लगाते रहते हैं उसका बहुतसा भाग उनका अपना नहीं होता और यह भाग बराबर बढ़ता रहता है। उनको बैंकसे उसे इस्तेमाल करनेका अधिकार मिल जाता है। और बैंक उनके सामने उस पूँजीके मालिकका प्रतिनिधि होता है। दूसरी तरफ़ बैंकको मजबूरन अपने कोषका एक भाग उद्योगमें छोड़ना पड़ता है, यह भी बराबर बढ़ता जाता है। इसका मतलब यह होता है कि बैंक उत्तरोत्तर औद्योगिक पूँजीपतिका रूप धारण करता जाता है। बैंककी इस पूँजीको, यानी उस रुपये पैसेको जो इस प्रकारसे औद्योगिक पूँजी बन जाता है, मैं 'बंक-पूँजी' (finance capital) कहता हूँ। इसलिये बंक-पूँजी वह पूँजी है जो बैंकके अधिकार में रहती है और उद्योगपति उसका इस्तेमाल करते हैं।"

यह परिभाषा अधूरी है क्योंकि यह एक सबसे ख़ास बातपर कुछ भी नहीं कहती। वह यह कि उत्पादन और पूँजीका केन्द्रीकरण इतना बेतरह बढ़ रहा है कि उसका नतीजा एकाधिकार हो रहा है या हो चुका है। लेकिन इतना अवश्य है कि हिल्फ़र्डिंगके सम्पूर्ण विवेचनमें, और ख़ास

* गुट-तन्त्र (oligarchy)-चन्द व्यक्तियोंके गुटके राज्यको कहते हैं, जिसमें वही सर्वेसर्वा होते हैं।

तौरसे इस परिभाषा वाले अध्यायसे पहिले दो अध्यायोंमें पूँजीवादी एकाधिकारोंके कार्य परही ज़ोर दिया गया है।

उत्पादनका केन्द्रीकरण, एकाधिकारोंका जन्म, बैंकोंका उद्योगोंके साथ रेशारेशा मिल जाना–यही बंक पूँजीके उदय और उसके अर्थका इतिहास है।

अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि किस तरह सामग्री-उत्पादन (commodity production) और वैयक्तिक सम्पत्ति (private property) के ज़मानेमें पूँजीवादी एकाधिकारोंकी हुकूमत अनिवार्य रूपसे बंक-पूँजी-व्यवस्थापकोंके गुट-तन्त्रकी हुकूमत बन जाती है। इतना समझ लेना चाहिये कि रीसेर, शूल्ट्से-गायफ़र्नीट्स, लाइफ़मान आदि जैसे लोग, जोकि न सिर्फ़ जर्मनीके ही बल्कि दुनियां भरके पूँजीजीवी विज्ञानके प्रतिनिधि हैं, सबके सब साम्राज्यवाद और बंक-पूँजीके हिमायती हैं। वे गुट-तन्त्रके संगठनकी गतिविधि, उसके तरीक़े, उसके करोंका परिमाण, उसका पार्लियामेंटके साथ सम्बन्ध, इत्यादि बातोंको खोलते नहीं बल्कि उल्टा उनको छिपाते हैं, और उनकी तारीफ़ करते हैं। वे इन परेशान करने वाले सवालोंसे पीछा छुड़ानेके लिये अस्पष्ट और लच्छेदार शब्दोंका प्रयोग करते हैं। बैंकोंके डायरेक्टरोंकी 'ज़िम्मेदारीकी भावनाकी' दुहाई देते हैं, प्रशियन हाकिमोंकी 'कर्त्तव्य भावना' की प्रशंसा करते हैं, 'निरीक्षण' और 'नियंत्रण' के खोखले क़ानूनी उपायोंकी गम्भीरतासे विवेचना करते हैं। वास्तवमें वे सिद्धान्तोंके साथ खेल खेलते हैं, जिसका उदाहरण प्रोफ़ेसर लाइफ़मानकी 'वैज्ञानिक' परिभाषा है:—"व्यवसाय वह व्यापारिक कार्य है जिसका सम्बन्ध सामानको इकट्ठा करने जमा करने और उसको लोगोंके लिये सुलभ बनानेसे सम्बन्ध होता है।" इस परिभाषासे तो यही सिद्ध होता है कि प्रारम्भिक मनुष्य विनिमय (exchange) को बिना जाने हुये भी, व्यवसाय करता था और समाजवादी समाजमें भी रहता था।

लेकिन बंक-पूँजी-व्यवस्थापकोंके गुट-तंत्रके राक्षसी राज्यकी भयंकर घटनायें इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी आदि सभी पूँजीवादी देशोंमें उनके सम्बन्धमें साहित्यका साहित्य तैयार हो गया है। यद्यपि वह सब पूंजीजीवी (bourgeois) दृष्टिकोणसे लिखा गया है फिर भी वह उस गुट-तन्त्रका काफ़ी अच्छा चित्र देता है, और उसकी माक़ूल आलोचना करता है। यह स्वाभाविक ही है कि यह साहित्य टुटपूंजिया लोगों (petty bourgeois) द्वारा तैयार किया गया है।

लेकिन ख़ास चीज़ समझना चाहिये उस शिरकतके तरीक़े (system of participation) को जिसके सम्बन्धमें हम संक्षेपमें ऊपर कह चुके हैं। शायद जर्मनीके अर्थशास्त्री हेमान (Heymann) का ध्यान सबसे पहले इस ओर गया था। वह इसके तत्त्वको इस प्रकार रखता है :—

"डायरेक्टर 'मां कम्पनी'का नियन्त्रण करता है। 'मां कम्पनी' अपनी 'बेटी कम्पनियों' का नियन्त्रण करती है। और ये 'बेटी कम्पनियाँ 'पोती कम्पनियों'का संचालन करती हैं, इत्यादि। इस तरह थोड़ीसी पूँजीसे उत्पादनके बड़े बड़े क्षेत्रों पर हुकूमतकी जा सकती है। यदि एक कम्पनी के संचालनके लिये ५० फ़ी सैकड़ा पूँजी ज़रूरी होतो डाइरेक्टरको सिर्फ़ १० लाख रखनेकी आवश्यकता होगी और उसका 'पोती कम्पनियों'के ८० लाख पर अधिकार जम जायगा। और यदि इस तरीक़ेको और आगे बढ़ाया जाय तो १० लाखसे ८० लाखके दुगने, तिगुने और उससे भी अधिक पर क़ब्ज़ा किया जा सकता है।"

यह अनुभवसे सिद्ध है कि किसी कम्पनीका अधिकार प्राप्त करनेके लिये ४० फ़ी सैकड़ा हिस्सोंका मालिक होना काफ़ी है, क्योंकि इधर उधर फैले हुए छोटे-छोटे हिस्सेदारोंकी काफ़ी तादाद आम तौरसे साधारण बैठकोंमें नहीं पहुँच पाती है। बुलावा देनेवाले पूंजीजीवी और समय-

साथक होनहार सोश्यल-डिमॉक्रैट (Social-Democrats–समाजवादी जनतन्त्रवादी) यह आशा करते हैं कि हिस्सोंको सार्वजनिक रूप देने (democratisation) से पूंजीका सार्वजनिक रूप होजायगा और छोटे छोटे कारख़ानेदारोंकी शक्ति बढ़ेगी। लेकिन वाक़या यह है कि हिस्सोंको सार्वजनिक बना देना (democratise) भी बंक-पूँजी-व्यवस्थापकोंके गुट-तन्त्रकी शक्तिको बढ़ानेका एक साधन है। ख़ास तौरसे यही वजह है कि अधिकउन्नत या अधिक पुराने और अनुभवी पूंजीवादी देशोंमें क़ानूनके अनुसार छोटे मूल्यके ही हिस्से जारी किये जा सकते हैं। जर्मनीमें एक हज़ार मार्कसे कम प्रत्यक्ष मूल्य (face value) के हिस्से जारी करना ग़ैरक़ानूनी है। लेकिन जर्मनीके बंक-पूँजी-व्यवस्थापक इङ्गलैण्डको ईर्षासे देखते हैं, क्योंकि वहाँ एक पौण्डका हिस्सा जारी करना क़ानूनी है। सीमेन्स (Siemens)का स्थान जर्मनीके सबसे बड़े उद्योगपतियों और बंक-पूँजी-अधिपतियोंमें है। इन महाशयने ७ जून, १९०० ई० को रायख़्स्टाग (Reichstag–जर्मनीकी पार्लियामेण्ट) में कहा था कि "एक पौण्डका हिस्सा ब्रिटिश साम्राज्यवादका आधार है।" उधर एक वह नीच लेखक * है जिसको रूसी 'मार्क्सवाद'का संस्थापक समझा जाता है। वह यह समझता है कि साम्राज्यवाद सिर्फ़ एक ही राष्ट्रका एक दोष-विशेष है। लेकिन हमतो समझते हैं कि वह व्यापारी (सीमेन्स) साम्राज्यवादको 'मार्क्सवाद'के दृष्टिकोणसे, इस लेखकके मुक़ाबलेमें, कहीं अधिक समझता है।

लेकिन 'शिरकतका तरीक़ा' सिर्फ़ एकाधिकारियोंकी ताक़तको ही नहीं बढ़ाता, बल्कि वह उनको सज़ाके भयसे भी मुक्त कर देता है, और वे जनताको बड़ी बड़ी मक्कारियों और चालबाजियोंसे धोखा देने लगते हैं। 'मा कम्पनी'के डायरेक्टर, 'बेटी कम्पनी' के लिये ज़िम्मेदार नहीं होते

* प्लेखानोव (Plekhanov) की तरफ़ इशारा है।

क्योंकि उसको स्वतन्त्र समझा जाता है। इसलिये वे उसके द्वारा कोई भी मतलब सिद्ध कर लेते हैं। नीचे हम एक उदाहरण देते हैं, जो जर्मन पत्रिका डी बांक (Die Bank) के मई, १९१४ के अङ्कसे लिया गया है:—

"कासेलका स्टील स्प्रिङ्ग कॉपोरेशन (The Steel Spring Corporation of Cassel) कुछ वर्ष पहले जर्मनीमें सबसे अधिक मुनाफ़ा उठा रहा था। कुप्रबन्धके कारण मुनाफ़ेका हिस्सा (dividend) १५ फ़ी सैकड़ेसे घटकर शून्य रह गया। ऐसा मालूम हुआ है कि डायरेक्टर-बोर्डने हिस्सेदारोंको बिना बताये ही ६० लाख मार्कका क़र्ज़ एक 'बेटी कम्पनी' दी हासिया कॉरपोरेशन (The Hassiah Corporation) को दे दिया था। इस हासिया कारपोरेशनकी ज़ाहिरा पूंजी (nominal capital) कुछ लाख मार्ककी थी। ६० लाख मार्कका क़र्ज़ स्टील स्प्रिंग कॉरपोरेशनकी अपनी पूंजीका तिगुना होता था। फिर इसको कभी भी चिट्ठा-बक़ाया (balance sheet) में नहीं दिखाया गया। चिट्ठा-बक़ाया (balance sheet) से क़र्ज़को इस तरह उड़ा देना बिल्कुल क़ानूनी था, और इस प्रकार पूरे दो साल तक उड़ाया जा सकता था, क्योंकि उससे किसी व्यवसायिक क़ानूनका उल्लंघन नहीं हो रहा था। डायरेक्टर-बोर्डके चेयरमैनने, बहैसियत मुख्य ज़िम्मेदार व्यक्तिके, झूठे चिट्ठा-बक़ाया पर दस्तख़त किये था। लेकिन वह फिर भी चेयरमैन बना रहा और अब तक है। हिस्सेदारोंको क़र्ज़ेके सम्बन्धकी बहुत सी बातें तब मालूम हुईं जब यह सिद्ध हो गया कि यह एक बड़ी भारी भूल थी। जानकार लोगोंने अपने हिस्सोंको बेचना शुरूकर दिया जिससे कि हिस्सोंका मूल्य बहुत घट गया "……

"…चिट्ठेकी उस्तादीकी यह मिसाल अपने ही ढंगकी है। इस तरहकी चालबाज़ियाँ ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनियोंमें ख़ूब चलती हैं। निजी कारबार करने

वाले तो इतना ख़तरा उठानेके लिये कभी भी तैयार नहीं हो सकते। पर डायरेक्टर बोर्ड तो जोखिमोंके लिये अक्सर तैयार रहते हैं। इसका कारण इसी मिसालसे स्पष्ट हो जाता है। बात यह है कि चिट्ठा बनानेके अर्वाचीन तरीक़े इस ढंगके हैं कि इस तरहके जोखिमके मामले बड़ी आसानीसे साधारण हिस्सेदारोंसे छिपाये जा सकते हैं। इतना ही नहीं बल्कि जिन लोगोंका गहरा तआल्लुक़ रहता है उनको इस बातका पूरा मौक़ा रह जाता है कि अगर नुक़सान होनेवाला हो तो वे अपने हिस्सोंसे छुटकारा करके अपनी ज़िम्मेदारीसे बरी हो सकते हैं। लेकिन निजी कारबार करनेवाले व्यापारीकी हालत दूसरी ही होती है। वह जो कुछ करता है उसका फल उसे भोगना पड़ता है।"

"बहुत सी ज्वाइण्ट-स्टॉक कम्पनियोंके चिट्ठे हमें मध्ययुगके ताम्रपत्रोंकी याद दिला देते हैं। पहले, इनपरसे, जो लिखावट दिखाई देती थी उसे साफ़ करना पड़ता था; तब कहीं नीचे दबे हुए लेखोंको पढ़ा जा सकता था। यही लेख पत्रके असली मतलबको हल करता था।"

"चिट्ठा-बक़ाया बनानेके लिये 'बेटी कम्पनियों' का हिसाब शामिल करके, कुल व्यापारको कई हिस्सोंमें बाँट दिया जाता है। इस तरीक़ेसे चिट्ठा इतना जटिल बन जाता है कि वह समझा ही नहीं जा सकता। यही तरीक़ा सबसे आसान है, और सबसे ज़्यादा प्रचलित भी है। कई क़ानूनी और ग़ैर क़ानूनी उद्देश्योंकी दृष्टिसे इसके बहुतसे फ़ायदे हैं। इसीलिये मुश्किलसे ही कोई अच्छी कम्पनी होगी जो इस तरीक़ेको व्यवहारमें न लाती हो।"

उपरोक्त अवतरणके लेखकने, बहुत बड़ी एकाधिकारी कम्पनीकी मिसालके ख़यालसे, प्रसिद्ध कम्पनी आलगेमाइने एलेक्ट्रीट्सीटेट्स् गेसेलशाफ़्थ (The Allgemeine Elektrizitats Gesellschaft) का नाम दिया है। इसे ए० आई० जी० भी कहते हैं। यह कम्पनी

बैलेन्सशीट बनानेमें उसी तरीक़ेको आम तौरपर बर्तती है। १९१२ में, उस वक़्तके तख़मीनेके मुताबिक़ इस कम्पनीके हिस्से लगभग १७५ या २०० दूसरी कम्पनियोंमें थे। वाक़ईमें वे सबकी सब इसी कम्पनीके नियंत्रणमें थीं और इस प्रकार १ अरब ५ करोड़ मार्ककी पूँजीपर इस कम्पनीका अधिकार था।

नेकनियत प्रोफ़ेसर और अधिकारी लोग, जो पूँजीवादका गुणगान और समर्थन करते हैं, जनताको, नियंत्रण सम्बंधी नियम, चिट्ठेका प्रकाशन, चिट्ठा तैयार करनेका निश्चित तरीक़ा, निरीक्षणकी व्यवस्था, इत्यादि बातोंकी याद दिलाते रहते हैं। पर सच तो यह है कि यह सब ढोंग है। इन बातोंसे कुछ होता जाता नहीं क्योंकि वैयक्तिक संपत्ति तो पवित्र है। फिर हिस्सोंका ख़रीदना बेचना बदलना या गिरवी रखना कोई नहीं रोक सकता।

रूसके बड़े बैंकोंमें 'शिरकतका तरीक़ा' किस हद तक पहुँच चुका है—यह ई० आगाद (E. Aghad) के आँकड़ोंसे अच्छी तरह देखा जा सकता है। यह महाशय रशो-चायनीज़ (Russio-Chinese) बैंकमें १५ वर्ष तक अधिकारी रहे हैं। इन्होंने मई, १९१४ में एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसका नाम 'बड़े बैंक और दुनियाकी बाज़ार' (The Big Banks and The World Market) है। पर यह नाम काफ़ी हद तक ठीक नहीं है।

इस लेखकने रूसी बैंकोंको दो मौलिक श्रेणियोंमें बाँटा है : (अ) जो शिरकतके तरीक़ेसे चलते हैं; (ब) स्वतंत्र बैंक (यहाँ स्वतंत्र शब्दसे मतलब है कि जो विदेशी बैंकोंसे स्वतंत्र हैं)। पहली श्रेणीको फिर तीन समूहोंमें बाँटा गया है:—(१) जर्मन (२) ब्रिटिश (३) फ्रेंच—जो रूसके बड़े बैंकोंका संचालन और उनसे शिरकत करनेका इरादा रखते हैं। साथ ही लेखकने इन बैंकोंकी पूँजीको दो श्रेणियों में विभाजित किया है :—

(१) 'उपजाऊ' पूँजी जो उद्योग और व्यवसायमें लगी हुई है; (२) 'सट्टेकी' पूँजी जो स्टॉक एक्सचेंजके व्यापार और दूसरे लेनदेनके कारबारमें लगी हुई है। पूँजीका इन दो श्रेणियोंमें बटवरा करते समय यह मान लिया गया है कि टुट-पूँजिया सुधारवादियोंके विचारके अनुसार पूँजीवादके अन्दर भी पहली श्रेणीकी पूँजीको दूसरी श्रेणीसे अलग किया जा सकता है और दूसरी श्रेणी ख़त्म की जा सकती है। आँकड़े निम्नलिखित हैं:—

बैंकोंकी मालियत

(अक्टूबर, नवम्बर, १९१३)

	मालियत (लाख रूबलमें*)		
रूसी बैंक	उपजाऊ	सट्टेकी	कुल
(अ) 'शिरकतके तरीक़े' वाले			
(१) जर्मन शिरकत			
चार बैंक—साइबेरियन कमर्श्यल, रशियन, इण्टरनेशनल, डिस्काउण्ट...	४१३७	८५९१	१२७२८
(२) इंग्लिश शिरकत			
दो बैंक—रशियन कमर्श्यल एण्ड इण्डस्ट्रियल, और रशो-ब्रिटिश—	२३९३	१६९१	४०८४
(३) फ्रेंच शिरकत—			
पाँच बैंक—रशो-एशियेटिक, सेण्टपिट-र्सबर्ग प्राइवेट, आज़ब-डॉन, यूनियनमास्को, रशो-फ्रेंच कमर्श्यल—	७११८	६६१२	१३७३०
कुल ११ बैंक...	१३६४८	१६८९४	३०५४२

* आजकलकी विनिमयकी दरसे १ रूबल = १ रु० ६ आ० के लगभग

	मालियत (लाख रूबलमें) उपजाऊ	सट्टेकी	कुल
(ब) स्वतंत्र रूसी बैंक			
आठ बैंक—मास्को मरचेण्ट्स, वालगा-कामा कमर्श्यल, आई० डब्ल्यू० जंकर एण्डको, सेण्ट-पिटर्सबर्ग कमर्श्यल (पहले जिसका नाम था वावेल वर्ग), मास्को बैंक (पुराना नाम रिया वृशिर्स्का), मास्को डिस्काउण्ट, मास्को कमर्श्यल, मास्को प्राइवेट,...	५०४२	३९११	८९५३
कुल जोड़ १९ बैंकें—	१८६६०	२०८०५	३६४६५

इन आँकड़ोंके अनुसार इन बड़े बैंकोंका 'क्रियाशील' कोष लगभग ४ अरब रूबल था। इसमेंसे तीन चौथाईसे अधिक यानी ३ अरबसे ज़्यादा था उन बैंकोंका जो वाक़ईमें विदेशी बैंकोंकी सहायक कम्पनियाँ (subsidiary companies) थे, ख़ास तौरसे पेरिसके बैंकोंकी (त्रिसमूह—बाँक द लूनियों पारीसियन्न, बाँक द पारी ए दे पे—बा, और सोसियेते जेनेराल, Banque de l'Union Parisienne, Banque de Paris et des Pays-Bas, Societe Generale) और बर्लिन के बैंकोंकी (विशेषतः ड्वाइचे और डिस्कॉण्टो-गेसेलशाफ़्थ)। 'रशियन' (Russian Bank for foreign Trade-विदेशी व्यापारका रूसी बैंक) और 'इण्टर नेशनल' (St. Petersberg International Commercial Bank-(सेण्ट पिटर्सबर्ग इण्टरनेशनल कमर्शियल बैंक),

इन दोनोंकी रूसके ख़ास बैंकोंमें गिनती है। १९०६ से १९१२ तक इन दोनोंकी पूँजी ४ करोड़ ४० लाख रूबलसे बढ़कर ९ करोड़ ८० लाख रूबल होगई, और उनका सुरक्षित कोष १ करोड़ ५० लाख रूबलसे ३ करोड़ ९० लाख रूबल होगया। यह सब, तीन चौथाई जर्मनी पूंजी लगानेसे हुआ। पहला बैंक 'रशियन' बर्लिनके ड्वाइचेबांक-समूहसे सम्बन्धित है, और दूसरा 'इण्टरनेशनल' बर्लिनके डिस्कॉण्टो-गेसेलशाफ़्थसे। आगाद (Aghad) इस बातसे बहुतही चिढ़ता था कि अधिकांश हिस्से बर्लिनके बैंकोंके हाथमें थे जिसकी वजहसे रूसी हिस्सेदारोंका कोई अधिकार नहीं रहता था। यह बिल्कुल स्वाभाविक ही है कि जो देश पूंजीको विदेशोंमें भेजता है, सार वह ले लिया करता है। उदाहरणके लिये बर्लिनके ड्वाइचे बांकको देखिये। जब उसने साइबेरियन कमर्शयल बैंक (Siberian Commercial Bank)के हिस्सोंको बर्लिनमें जारी किया तो पहले एक साल तक उन्हें सन्दूकमें रक्खा फिर उनको १९३ (१०० प्रत्यक्ष मूल्यके लिये) की दरसे बेंचा। प्रत्यक्ष मूल्यसे क़रीब क़रीब दुगने मूल्यपर बेंचकर लगभग ६० लाख रूबलका मुनाफ़ा उठा लिया। इसी मुनाफ़ेको हिल्फ़र्डिंग 'संस्थापकोंका मुनाफ़ा'[८] (founder's profits) कहता है।

इस लेखकने (आगाद) सेण्टपिटर्सबर्गके सब बैंकोंकी कुल पूँजीको लगभग ८½ अरब (८२३५० लाख) रूबल कूता है। उसने 'शिरकत'को—या यों कहिये कि विदेशी बैंकोंका जो हिस्सा पूँजीमें था—इस प्रकार विभाजित किया है:—फ्रेंच बैंक ५५ फ़ीसैकड़ा; इङ्गलिश बैंक १० फ़ी सैकड़ा; जर्मन बैंक ३५ फ़ीसैकड़ा। लेखकके हिसाबसे कुल ८ अरब २३ करोड़ ५० लाख रूबलको 'क्रियाशील' पूँजीमेंसे ३ अरब ६८ करोड़ ७० लाख या ४० फ़ीसैकड़ासे ज़्यादा प्रोड्यूगॉल (Produgol)[९] और प्रोडामेट (Prodamet)[१०] सिण्डिकेटों, तेलके सिण्डिकेटों

और धातें साफ़ करने व सीमेण्टके उद्योगोंका था। इस तरह हम देखते हैं कि रूसमें बैंकों और औद्योगिक पूँजीके मिल जानेसे पूँजीवादी एकाधिकारोंके निर्माणमें बड़ी भारी तरक्की होचुकी है।

जब बंक-पूंजी चन्द हाथोंमें केन्द्रित होजाती है और उसका एकाधिकार क़ायम हो जाता है, तब वह नई कम्पनियाँ खोलती है, और स्टॉक व राज्य-ऋण जारी करके ढेरों मुनाफ़ा खींचने लगती हैं। उसका मुनाफ़ा बराबर बढ़ता जाता है। अब वह अपने व्यवस्थापकोंके गुट-तन्त्रके पंजेको खूब मज़बूत बनाती जाती है, और एकाधिकारियोंके फ़ायदेके लिये समस्त समाजसे कर वसूल करने लगती है। इस सम्बन्धमें हिल्फर्डिंगने अमेरिकन ट्रस्टोंके बहुतसे उदाहरण दिये हैं। उनमेंसे एक यहाँ दिया जाता है। १८८७ में हेवमेयर (Havemeyer) ने १५ छोटे छोटे फर्मोंको मिलाकर शुगर ट्रस्ट (Sugar Trust–चीनीका ट्रस्ट) क़ायम किया था। इन छोटे छोटे फर्मोंकी पूंजी कुल ६५००००० डालर थी। अमेरिकन लोगोंके शब्दोंमें, इस पूंजीको अच्छी तरह 'सींचा गया'" (watered) और नये ट्रस्टकी पूंजी ५००००००० डालर निर्धारित की गई। इस प्रकारसे 'अति-पूंजी निर्धारण' (over capitalisation) के कारण एकाधिकारसे जो मुनाफ़ा होता, उसकी दर कम करदी गई। इसी प्रकार अमेरिकन स्टील ट्रस्ट, जितने भी कच्चे लोहेके क्षेत्र हो सकते हैं, सबको ख़रीद डालता है, और मुनाफ़ेकी दर घटा देता है। वाक़या यह है कि शुगर ट्रस्टने एकाधिकारी क़ीमतें लगाईं जिससे खूब मुनाफ़ा हुआ। मुनाफ़ा यहाँ तक हुआ कि 'सींचकर' जो पूंजी सतगुनी करदी गई थी उसपर दस फ़ी सैकड़ा मुनाफ़ेका हिस्सा दिया गया। या यों कहना चाहिये कि ट्रस्ट बनते समय जो असली पूंजी थी उसपर ७० फ़ी सैकड़ा मुनाफ़ेका हिस्सा पड़ा। १९०९ में इस ट्रस्टकी पूंजी ९००००००० डालर होगई। मतलब यह कि २२ सालमें उसकी पंजीकी बढ़ती दसगुनीसे ज़्यादा हुई।

फ्रांसमें बंक-पूंजी-व्यवस्थापकोंके गुट-तन्त्रकी हुकूमतने कुछ भिन्नरूप धारण किया है। सबसे बड़े बैंकोंमें चार ऐसे हैं जो ऋणपत्र जारी करनेके कारबारमें 'एकछत्र एकाधिकार' भोग रहे हैं। इन चारोंका वाकईमें एक ट्रस्ट है। एकाधिकारकी वजहसे ऋण-पत्रोंसे उनका एकाधिकारी मुनाफ़ा पक्का है। अगर कोई देश फ्रांससे क़र्ज़ लेता है तो उसको मुश्किलसे कुल क़र्ज़का ९० फ़ी सैकड़ा मिलता है। बाक़ी दस फ़ी सैकड़ा इन बैंकोंकी या दूसरे दलालोंकी जेबमें चला जाता है। इन बैंकोंने रशो-चाईनीज़ ४० करोड़ फ्रांकके क़र्ज़पर ८ फ़ी सैकड़ा, रूसके (१९०४) ८० करोड़ फ्रांकके क़र्ज़पर १० फ़ी सैकड़ा और मोरक्कोके (१९०४) ६२५ लाख फ्रांकके क़र्ज़पर १८·७५ फ़ी सैकड़ा मुनाफ़ा उठाया था। पूंजीवाद सूदख़ोरीकी मामूली पूंजीसे शुरू हुआ था लेकिन आज वह सूदख़ोरीकी विशाल पूंजी बन गया है। लिसिस (Lysis) का कहना है कि फ्रेंच लोग योरोपके सूद ख़ोर महाजन हैं। पूंजीवादके इस परिवर्तनने आर्थिक जीवनकी सभी अवस्थाओं में गहरा परिवर्तन कर दिया है। यदि किसी देशकी आबादी बिल्कुल न बढ़े, और उद्योग व्यवसाय व जहाज़रानी भी ज्योंकी त्यों पड़ी रहे तो भी वह देश सूदख़ोरीकी बदौलत धनी बन सकता है। यह सीधी सी बात है कि ८० लाख फ्रांक पूँजीके प्रतिनिधि सिर्फ़ ५० आदमी, चार बैंकोंके २ अरबपर हुकूमत कर सकते हैं। 'शिरकतके तरीक़े' का भी यही नतीजा होता है। सोसियते जेनेराल (Societe Generale) ने, जिसका स्थान सबसे बड़े बैंकोंमें है, अपनी सहायक कम्पनी इजिप्शियन शुगर रिफ़ाइनरीज़ (Egyptian Sugar Refineries) के ६४००० ऋणपत्र जारी किये थे। ऋणपत्र १५० की दर पर जारी किए गये और इस तरह बैंकको फ़ी डालर ५० सेण्टका मुनाफ़ा हुआ। इस कम्पनीके मुनाफ़ेके हिस्से (dividend) झूठे पाये गये और जनताको ९,१० करोड़ फ्रांकका नुक़सान हुआ। सोसियते जेनेरालका

एक डाइरेक्टर, इजिप्शियन रिफ़ाइनरीज़के डाइरेक्टर-बोर्डमें था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इन्हीं सब घटनाओंसे मजबूर होकर लिसिस को इस नतीजेपर पहुँचना पड़ा कि फ्रांसका प्रजातन्त्र बंक-पूँजी-व्यवस्थापकोंका गुट-तन्त्र है। सच्ची बात तो यह है कि यह गुट-तन्त्र ही सर्वोपरि सत्ता है और प्रेस व सरकार सभीपर उसकी हुकूमत रहती है।

बंक-पूँजीका एक ख़ास काम यह भी है कि उसके ज़रिये ऋणपत्र जारी करके ग़ैर मामूली ऊँचे दरसे मुनाफ़ा उठाया जाता है। इसी मुनाफ़ेकी वजहसे बंक-पूँजी-व्यवस्थापकोंके गुटतन्त्रकी खूब तरक़्क़ी होती है और उसकी शक्ति प्रबल होती जाती है। "देश भरमें ऐसा एक भी व्यापार नहीं है, जिसका मुनाफ़ा विदेशी ऋणोंके मुनाफ़ेकी ज़रा भी बराबरी कर सके"—ये जर्मन पत्रिका डी बांकके शब्द हैं।

जितना ज़्यादा मुनाफ़ा बैंकोंको ऋणपत्रोंके जारी करनेसे मिलता है उतना किसी दूसरे कामसे नहीं मिलता। ड्वाइचे ओएकॉनोमिस्ट (Deutsche Oekonomist—पत्रिकाका नाम) के अनुसार १८९५ से १९०० तक जर्मनीकी औद्योगिक सिक्यूरिटियोंको जारी करनेसे औसत सालाना मुनाफ़ा इस प्रकार हुआ था:—

१८९५	३८·६ फ़ी सैकड़ा	१८९८	६७·७ फ़ी सै०
१८९६	३६·१ ,,	१८९९	६६·९ ,,
१८९७	६६·७ ,,	१९००	५५·२ ,,

शिटलिख़ (Stillich) का कथन है कि "१८९१ से १९०० तक, १० सालमें जर्मनीकी औद्योगिक सिक्यूरिटियाँ जारी करनेसे एक अरब मार्कसे ज़्यादाका मुनाफ़ा हुआ था।"

एक तरफ़ तो उद्योग चमकनेके ज़मानेमें बंक-पूँजीको बेतहाशा

मुनाफ़ा होता है। दूसरी ओर जब मन्दीके ज़मानेमें छोटे छोटे और कमज़ोर कारबार बरबाद होने लगते हैं तो बड़े बड़े बैंक उनके हिस्सोंको नाम मात्र की क़ीमतमें ख़रीदकर 'शिरकत' कर लेते हैं। या फिर 'पुनरुज्जीवन' (revivification) और 'पुनःसंगठन' (reorganisation) के ज़रिये 'शरीक' बन बैठते और खूब मुनाफ़ा उठाते हैं। जो कारबार नुक़सानपर चलते रहते हैं उनका जब 'पुनरुज्जीवन' होता है तो हिस्सोंकी पूँजी लिख ली जाती है। इसका मतलब यह होता है कि मुनाफ़ेका बटवारा थोड़ी पूँजीपर होता है और आगेके लिए भी इस थोड़ी पूँजीके आधारपर ही हिसाब लगाया जाता है। या अगर कारबारकी आमदनी बिल्कुल ही शून्य हो गई हो तो नयी पूँजीकी आवश्यकता होती है। नयी पूँजीको पुरानी पूँजीसे मिला देते हैं तब फिर काफ़ी मुनाफ़ा होने लगता है। हिल्फ़र्डिंगका कथन है कि "इन सब 'पुनः संगठनों' और 'पुनरुजीवनों'से बैंकोंके लिये दो ख़ास फ़ायदे होते हैं। एक तो मुनाफ़ा और दूसरे जब सब कम्पनियोंपर मुसीबत आती है तो बैंकोंको उन्हें अपने नियन्त्रणमें करनेका अवसर मिल जाता है।

डोर्टमुंडकी नियन माइनिंग कम्पकी (Union Mining Company of Dortmund) की मिसाल सामने है। यह कम्पनी १८७२ में ४ करोड़ मार्ककी पूँजीसे शुरू हुई थी। पहले साल में १२ फ़ी सैकड़ा मुनाफ़ेका हिस्सा दिया गया। हिस्सोंकी क़ीमत चढ़ने लगी और १७० हो गई। फिर क्या था, बंक-पूँजीने खूब मलाई उतारी और सिर्फ़ थोड़ीसी २ करोड़ ८० लाख मार्ककी आमदनी जेब की। इस कम्पनी को स्थापनाके समय इसका ख़ास संरक्षक वही बड़ा जर्मन बैंक था—डिस्कोण्टो-गेसेलशाफ़्थ, जिसने अपनी पूँजी बड़े अच्छे ढंगसे ३० करोड़ मार्क करली थी। बादको माइनिंग कम्पनीका मुनाफ़ेका हिस्सा घटकर शून्य हो गया। इसलिये हिस्सेदार पूँजी 'कम लिखने'के लिये तैयार हो

गये। उनका मतलब यह था कि कुछ छोड़ देनेसे सबका सब न चला जायगा। कई बार 'पुनरुज्जीवन' किया गया और नतीजा यह हुआ कि ३० सालमें, ७ करोड़ ३० लाख मार्कसे ज़्यादा, कम्पनीके बही खातोंमें से साफ़ हो गये। इस वक्त हालत यह है कि शुरू शुरू के हिस्सेदार अपने हिस्सोंके प्रत्यक्ष मान (face value) के ५ फ़ीसैकड़ाके ही मालिक रह गये हैं। लेकिन बैंक प्रत्येक 'पुनरुज्जीवन' से मुनाफ़ा कमाते जा रहे हैं।

बंक पूँजीको एक दूसरे कामसे ख़ास तौरसे मुनाफ़ा होता है। जो शहर तेज़ीसे तरक़्क़ी करते रहते हैं उनके आसपासकी थोककी थोक जायदाद की (speculation) 'सट्टेबाज़ी'से ख़ूब फ़ायदा उठाया जाता है। इस मामलेमें बैंकोंका एकाधिकार, ज़िमीनके किरायेका एकाधिकार, और गमनागमनके साधनों (means of communication) का एकाधिकार, तीनों ही एक साथ मिल जाते हैं। क्योंकि जायदादोंकी क़ीमतको बढ़ाना और उनका टुकड़े टुकड़ेमें मुनाफ़ेके साथ बेंच सकना—यह सबसे अधिक इसी बात पर निर्भर करता है कि शहरके केन्द्रसे गमनागमनके साधन कितने अच्छे हैं। गमनागमनके साधन बड़ी कम्पनियोंके हाथमें रहते हैं। उधर इन कम्पनियोंका बैंकोंसे सम्बन्ध रहता है; बैंकोंकी या तो 'शिरकत' होती है या उनके डाइरेक्टर इन कम्पनियोंके डाइरेक्टर-बोर्डमें रहते हैं। जर्मन लेखक एल० एशवेगेछ (L. Eschwege) ने इसका नाम 'दलदल' (swamp) रक्खा है। 'दलदल' में ये सब चीज़ें होती हैं: शहरोंके आस पासकी जायदादोंकी वहिशियाना 'सट्टेबाज़ी'; मकान बनाने वाले फर्मोंका दिवाला;† उसके बाद छोटे छोटे मालिकों

* इन महाशयने जायदादोंके व्यापार और उनकी रहन वग़ैराका अच्छा अध्ययन किया है।

† जैसा कि बर्लिनकी बोसवाव एण्ड क्नाउयेर (Boswau & knauer)

और मज़दूरोंकी तबाही, क्योंकि मकान बनानेवाले धोखेबाज़ फ़र्मोंसे कुछ नहीं मिलता; बर्लिनकी 'ईमानदार' पुलिस और शहरके अधिकारियोंके साथ गुप्त शर्तनामें, जिससे कि मकान बनानेकी इजाज़त देनेमें नियन्त्रण रहे।

'अमेरिकाके आचार-शास्त्र' की योरपके प्रोफ़ेसर और नेकनियत पूँजीजीवी लोग निन्दा तो कड़े शब्दोंमें करते हैं। लेकिन वाक़या यह है कि यह सब मक्कारी है और आजकल बंक-पूँजीके ज़मानेमें किसी भी देशके बड़े बड़े शहरोंमें वही 'आचार-शास्त्र' बर्ता जा रहा है।

१९१४ के शुरू में बर्लिनमें 'यातयात ट्रस्ट' (transport trust) बनानेकी चर्चा चली थी। मतलब यह कि बर्लिनकी तीन यातायतकी फर्मों—मेट्रोपोलिटन इलेक्ट्रिक रेलवे, ट्राम्बे कम्पनी, और आम्नीबस कम्पनीके 'स्वार्थोंकी एकता' की तैयारी की जारही थी।

इस सिल्सिलेमें डी बांक पत्रिकामें ये विचार ज़ाहिर किये गये थे: "हमें पता चला है, कि जबसे यह भेद खुला कि बस कम्पनीके अधिकांश हिस्से दूसरी दूसरी आमदरफ्तकी कम्पनियोंने ले रखे हैं, तभीसे यह तरीक़ा चल रहा है।...जो लोग इस उद्देश्यके पीछे पड़े हुये हैं, वे कहते हैं कि उन्हें आशा है कि गमनागमनके साधनोंका एक ही नियन्त्रण कर देनेसे ऐसी व्यवस्था हो सकेगी जिसका एक हिस्सा, समय आने पर, जनताके लिये हितकर सिद्ध होगा। हम उनलोगोंका फ़ौरन विश्वास कर सकते हैं। लेकिन समस्या उलझनमें है। उसकी वजह यह है कि इस वक्त जो आमदरफ़्तका ट्रस्ट बन रहा है, उसके पीछे बैंक हैं। और दिक़्त यह है कि इन बैंकोंका गमनागमनके साधनों पर एकाधिकार है,

---

फ़र्मका हुआ था। इस फ़र्मका ख्वाइचे बांककी सहायतासे १० करोड़ मार्कका नुक़सान हुआ था। ख्वाइचे बांक, बड़ी होशियारी के साथ 'शिरकत'के तरीक़ेसे ट्रॉकी ओट शाकार खेलता रहा और उसका सिर्फ़ १ करोड़ २० लाख मार्कका घाटा हुआ।

और अगर वे चाहें तो उनको अपनी जायदादी स्वार्थोंकी सिद्धिके लिये इस्तेमाल कर सकते हैं। यह अनुमान बिल्कुल उचित है। यह विश्वास करनेके लिये मेट्रोपोलिटन इलेक्ट्रिक रेलवे कम्पनकी याद दिला देना आवश्यक है। जबसे वह कम्पनी बनी तभीसे उसका स्वार्थ अपने संरक्षक बैंकके जायदादी स्वार्थोंके साथ मिला हुआ था, और इस हद तक मिला हुआ था कि दोनोंका सम्मिलित स्वार्थ पहलेसे ही कम्पनी बननेकी शर्तोंमें था। इसकी पूर्वी लाइनसे उधरके मैदान तक आमदरफ़्त होनेकी आशा थी। और जब पूर्वी लाइन निकालना निश्चित हो गया तो उन ज़मीनोंको बेचकर कस कस कर मुनाफ़ा लिया गया जिससे शरीकोंकी भी जेब खूब गरम हुई।"

जब एकाधिकार एकबार क़ायम हो जाता है और अरबों पूँजी उसके अधिकारमें आ जाती है तो वह निश्चय ही, सार्वजनिक जीवनके हर एक अंगमें अपना प्रवेश कर लेता है। किसी भी तरहका राजनीतिक संगठन या दूसरे मामले उसके रास्तेमें रुकावट नहीं डाल सकते। जर्मनीके आर्थिक साहित्य में हमको प्रूशियन नौकरशाहीकी ईमान्दारीकी नीचतापूर्ण तारीफें, फ्रांसके पानामासे[12] सम्बन्ध रखनेवाले कलंकपूर्ण क़िस्से, और अमेरिकाके राजनीतिक अधःपतनके उदाहरण अक्सर मिलते हैं। लेकिन सच्ची बात तो यह है कि बैंकिंगपर जो कुछ भी पूँजीजीवी साहित्य है उसकी सभीकी वही हालत है। सभीमें बारबार शुद्ध बैंकिंगके मामलोंसे बाहरकी बड़ी बड़ी बातें मिलती हैं। उदाहरणके लिए जहाँ कहीं भी सरकारी कर्मचारियोंकी, बैंकोंमें स्थान पानेकी बढ़ती हुई रफ़्तारका ज़िक्र आता है वहाँ हमको 'बैंकोंके आकर्षण' की कथायें भी अवश्य ही मिलती हैं। जो सरकारी कर्मचारी बेरेनस्ट्रास्से * (Behrenstrasse)

* बेरेन स्ट्रास्से, बर्लिनकी उस सड़कका नाम है जहाँ पर ड्वाइचे बाँककी प्रधान शाखा है।

की बड़ी बड़ी आमदनीकी जगहोंके लिए छिपे छिपे कोशिश करते रहते हैं उनकी ईमानदारीका ठिकाना ही क्या। १९०९ में, डी बांकके प्रकाशक आल्फ्रेड लांसबर्ग (Alfred Lansburgh) ने एक लेख लिखा था। उसमें दूसरी बातोंके साथ दो बातों पर ख़ास तौरसे प्रकाश डाला गया था। एक द्वितीय विल्हेल्म (Wilhelm II) की पैलेस्टाइन-यात्रा; और दूसरी, इस यात्राका जो परिणाम हुआ यानी बग़दाद रेलवेका निकाला जाना। बग़दाद रेलवे[11] जर्मन-साहसकी वह महा उपज है जिसपर बड़ी बड़ी किस्मतोंका फ़ैसला निर्भर करता है। इतना ही नहीं बल्कि 'घेरेकी नीति'* (Encirclement) के लिए भी वही ज़िम्मेदार है और इस हद तक कि उनकी ज़िम्मेदार हमारी राजनीतिक महाभूलें सब मिलकर भी नहीं हो सकतीं। १९१२ में एशवेगेने (Echwege—जिसका ज़िक्र ऊपर आ चुका है) 'धनिक-तन्त्र और नौकरशाही' (Plutocracy and Bureaucracy) शीर्षक लेख लिखा था। इसमें एक जर्मन अधिकारी, फ़ल्कर (Volker) का भण्डाफोड़ किया गया था। फ़ल्कर कार्टेल कमेटी (Cartels Committee) का बड़ा जोशीला मेम्बर था। बादको उसने सबसे बड़े कार्टेल, स्टील सिण्डिकेट में खूब गहरी आमदनी की जगह ले ली थी। इस तरहकी मिसालोंसे, जिनको किसी तरहसे इत्तफ़ाक़िया नहीं कहा जा सकता, मजबूर होकर पूँजी-जीवी एशवेगेको मानना पड़ा कि जर्मनीके विधानने जितनी भी आर्थिक स्वतन्त्रता दे रखी है वह आर्थिक जीवनके बहुतसे क्षेत्रोंमें बिल्कुल निरर्थक है। उसको यह भी स्वीकार करना पड़ा कि मौजूदा धनिक-तन्त्रके ज़मानेमें 'हमारा राष्ट्र परतन्त्र लोगोंका राष्ट्र

* घेरे की नीति सबसे एडवर्डने चलाई थी। उन्होंने यह प्रयत्न किया था कि जर्मनीके चारों ओर जर्मन विरोधी साम्राज्यवादी मित्र-राज्योंका घेरा बनादें, जिससे कि जर्मनीका दूसरोंसे कोई सम्बन्ध न रहे और वह अकेला पड़ जाय।

बनता जा रहा है और बड़ीसे बड़ी राजनीतिक आज़ादी भी इस रफ़्तारको रोक नहीं सकती'।

रूसके सम्बन्धमें हम सिर्फ़ एक उदाहरण देंगे। कुछ साल पहले सभी समाचारपत्रोंमें यह ख़बर छपी थी कि सरकारी ख़जानेके साख विभागके डाइरेक्टर, डैवीडोव (Director of the Credit Department of the Treasury—Davidov) ने अपने पदसे इस्तीफ़ा दे दिया है, और वह किसी बैंकमें किसी बड़ी जगहपर जानेवाले हैं। इस पदपर उनको बहुत बड़ी तनख़्वाह मिलेगी और बैंकके साथ जो उनकी शर्त हुई है उसके अनुसार, कुछ ही सालमें उनकी तनख़्वाह १० लाख रूबलसे अधिक हो जायगी। साख विभाग (Credit Department) वह संस्था है जो राज्यकी सब साख संस्थाओंके कामोंकी देख भाल रखती है, उनमें परस्पर सहयोगकी व्यवस्था करती है और बड़े बड़े शहरोंके बैंकोंको ८० करोड़से लेकर १ अरब रूबल तककी सहायता देती है।

आम पूँजीवादकी ख़ासियत यह है कि पूँजीका मालिक होना एक बात है और पूँजीको उत्पादनमें लगाना बिल्कुल दूसरी बात है। एक बातका दूसरीसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार रुपये पैसेकी पूँजी, औद्योगिक या उपजाऊ पूँजीसे बिल्कुल भिन्न चीज़ है। और ऐसे ही रुपये पैसेकी पूँजीसे आमदनी करनेवाला 'निठल्ला महाजन' (rentier) होना और उद्योग-व्यवस्थापक (entrepreneur) होना बिल्कुल अलग अलग है। साम्राज्यवाद, या जिसको बंक-पूँजीका राज्य कहना चाहिए, पूँजीवादकी वह सबसे ऊँची मंज़िल है जब कि इन बातोंका अन्तर बहुत ज़्यादा हो जाता है। जब बंक-पूँजीका सब दूसरे प्रकारकी पूँजीपर प्रभुत्व जम जाता है तब उसके मानी यही होते हैं कि 'निठल्ले महाजन' (Rentier) और बंक-पूँजी-व्यवस्थापकोंके गुट-तन्त्रकी हुकूमत क़ायम हो गई। मतलब यह

कि चन्द राज्य जो बंक-पूँजीकी दृष्टिसे मज़बूत होते हैं, बन जाते हैं और दूसरे यों ही पड़े रह जाते हैं। यह रफ़्तार किस हदतक जारही है इसको सिक्यूरिटियोंके आँकड़ोंसे समझा जा सकता है। कब कितनेकी सिक्यूरिटियाँ जारी की गईं यह नीचे दिया जाता है:

इन्टरनेशनल स्टैटिस्टीकल इन्स्टीट्यूटके बुलेटिन (Bulletin of the International Statistical Institute) में ए० नेमार्क (A. Neymark) ने सिक्यूरिटियोंके दुनियाँ भरके सब आँकड़े खूब विस्तारसे और तुलनात्मक दृष्टिसे प्रकाशित किए थे। बादको आर्थिक साहित्यमें बार बार उन्हींको पेश किया जाता रहा है। नीचे चार दशकोंके जोड़ दिये जाते हैं:—

एक-एक दशकमें कुल कितनेकी सिक्यूरिटियाँ निकलीं

१८७१—१८८०	...	...	७६·१ अरब फ्रांक
१८८१—१८९०	...	...	६४·५ „ „
१८९१—१९००	...	...	१००·४ „ „
१९०१—१९१०	...	...	१९७·८ „ „

१८७० और १८८० के बीचके कालमें दुनियाभरमें बहुत ज़्यादाकी सिक्यूरिटियाँ निकाली गई थीं। इसकी ख़ास वजह यह थी कि एक तो फ्रांस-प्रूशियाकी लड़ाईके सम्बन्धमें ऋणपत्र जारी किये गये थे। और दूसरे जर्मनीमें इस लड़ाईके बाद कम्पनियोंको बहुत प्रोत्साहन दिया गया और उसके लिए भी ऋणकी आवश्यकता हुई थी। यदि मुक़ाबला करके देखा जाय, तो १९ वीं शताब्दीके अन्तिम ३० वर्षमें बढ़ती कोई बहुत तेज़ीसे नहीं हुई। लेकिन २० वीं शताब्दीके पहले दस सालमें ख़ासी बढ़ती हुई, क़रीब-क़रीब दुगनी। इस तरह हम देखते हैं कि २०वीं

शताब्दीके आरम्भमें, जैसा कि ऊपर कहा गया है, एकाधिकारों (कार्टेल, सिण्डिकेट, ट्रस्ट) की प्रगतिने पलटा खाया; और उसीके साथ साथ बंक-पूँजीकी धारा भी बदल गई।

नेमार्क का तख़मीना है कि १९१० में दुनियाँ भरमें ८१५ अरब फ्रांककी सिक्यूरिटियाँ जारी की गई थीं। उन रक़मोंको निकालकर जो ग़लतीसे दुबारा जुड़ गई हों, नेमार्कने इस रक़मको ५७५-६०० अरब निर्धारित किया है। ६०० अरबको लेकर उसने विभिन्न देशोंमें इस प्रकार बांटा है:—

१९१० में कुल सिक्यूरिटियाँ

	अरब फ्रांकमें	
ग्रेट ब्रिटेन	१४२	४७९
संयुक्त राष्ट्र-अमेरिका ...	१३२	
फ्रांस	११०	
जर्मनी	९५	
रूस	३१	
अस्ट्रिया-हंगरी	२४	
इटली	१४	
जापान	१२	
हॉलैण्ड	१२·५	
बेल्जियम	७·५	
स्पेन	७·५	
स्विटज़लैण्ड	६·२५	
डेन्मार्क	३·७५	
स्विडेन, नॉर्वे, रुमानियां वग़ैरा ...	२·५	
कुल जोड़	६००	

ऊपरके आंकड़ोंसे यह बिल्कुल साफ़ है कि चार सबसे धनी राज्योंकी हालत ख़ूब मज़ेकी है। इनमेंसे हर एकके पास १०० अरबसे लेकर १५० अरब फ्रांकनककी सिक्यूरिटियां हैं। इनमेंसे दो, इंगलैण्ड और फ्रांस सबसे पुराने पूँजीवादी देश हैं; और इनके पास, जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा, सबसे अधिक सम्पन्न उपनिवेश भी हैं। बाक़ी दो, जर्मनी और संयुक्तराष्ट्र, तरक्कीकी दौड़में सबसे आगे हैं, और उत्पादनके पूंजीवादी एकाधिकारोंमें भी बढ़े हुए हैं। इन चारोंके अधिकारमें, सिक्यूरिटियोंके ज़रिये, ४७९ अरब फ्रांककी पूँजी है। यानी दुनियां भरकी बंक-पूँजीके ८० फ़ी सैकड़ापर तो सिर्फ़ इन चारकाही कब्ज़ा है। इस तरह यह स्पष्ट है कि दुनियांभरके दूसरे सभी देश, किसी न किसी तरीक़ेसे, इन चारों देशों के सामने कर्ज़मन्दकी या करदाताकी हैसियत रखते हैं। सच्ची बात तो यह है कि ये चारो देश अन्तर्राष्ट्रीय बैंक हैं, और दुनियांभरकी बंक-पूँजी के 'स्तम्भ' हैं।

अब ख़ास तौरसे यह देखना ज़रूरी है कि पूँजीको विदेशोंमें भेजकर किस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय रूपसे दुनियांभरमें ग़ुलामीका जाल बिछाया जाता है और देश बंक-पूँजीके अधीन किये जाते हैं।

चौथा अध्याय

पूँजीका निर्यात

पुराने पूँजीवादके ज़मानेमें, जब कि मुक्त प्रतियोगिताका दौरदौरा था सामानका निर्यात (export) एक ख़ास चीज़ थी। लेकिन आजकल नवीनतम पूँजीवादके ज़मानेमें एकाधिकारोंका ज़ोर है, और पूँजीका विदेशोंमें भेजा जाना ख़ास महत्व रखता है।

पूँजीवाद क्या है? सामग्री-उत्पादन जब तरक्क़ीकी सबसे ऊँची मंज़िलपर पहुँच जाता है और श्रमशक्ति स्वयम् एक सामग्री बन जाती है तो उस अवस्थामें वह सामग्री-उत्पादन ही पूँजीवाद हो जाता है। किसी देशकी विनिमयकी तरक्क़ी होजाना, और विशेषतः अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय-की उन्नति यही पूँजीवादकी विशेषता है। पूँजीवादी व्यवस्थामें विभिन्न कारबारों, विभिन्न उद्योगों और विभिन्न देशोंकी कमोबेश तरक्क़ी होती है, यह असमानता अनिवार्य है। इङ्गलैण्ड सबसे पहले पूँजीवादी बना। उसने १९वीं शताब्दीके मध्यमें मुक्त व्यापारकी नीतिको चलाया और 'दुनियाँ भरका कारख़ाना' बन बैठा। वह विदेशोंको तैयार किया हुआ माल भेजने लगा और विदेश बदलेमें उसको कच्चा माल देने लगे। १९वीं शताब्दीके अन्तिम चतुर्थांशमें दूसरे देशोंने अपने यहाँ संरक्षणके लिये आयात कर लगाना शुरू कर दिये, और स्वयं स्वतन्त्र रूपसे पूँजीवादी बन गये। इसलिये इङ्गलैण्डके एकाधिकारकी जड़ कटने लगी। २०वीं शताब्दीके प्रारम्भ होते ही नये प्रकारका एकाधिकार क़ायम होने लगा।

एक तो सभी उन्नत पूँजीवादी देशोंमें पूँजीपतियोंके एकाधिकारी संघ बने और दूसरे, चन्द देशोंने, जिन्होंने बेहद पूँजी इकट्ठी कर ली थी, अपना अपना एकाधिकार क़ायम कर लिया। उन्नत देशोंमें अतिरिक्त पूँजी (surplus capital) का ढेरका ढेर इकट्ठा होने लगा।

हम जानते हैं कि खेती हर जगह उद्योगके मुक़ाबलेमें पिछड़ी हुई है। हम यह भी जानते हैं कि साधन-विधिकी इतनी आश्चर्यजनक उन्नति होने पर भी, अरबों लोग ग़रीबीसे पिसे जारहे हैं और भूखों मर रहे हैं। लेकिन अगर पूँजीवादने खेतीकी तरक्क़ी की होती और लोगोंके जीवनस्तर (standard of living) को ऊँचा बनानेकी कोशिश की होती तो किसी भी देशमें न तो अतिरिक्त पूँजी इकट्ठी ही होती और न उसकी कोई समस्या ही होती। टुटपूँजिया आलोचक (bourgeious critics) सब जगह यही दलील दिया करते हैं। लेकिन सच बात तो यह है कि उस अवस्थामें पूँजीवाद पूँजीवाद न हुआ होता। क्योंकि असमान उन्नति और जनताका भूखों मरना। ये पहली चीज़ें हैं, और असलमें यही पूँजीवादी उत्पादन प्रकारकी लाज़िमी और ज़रूरी शर्तें हैं। जबतक पूँजीवाद पूँजीवाद रहेगा तबतक अतिरिक्त पूँजीको जनताके जीवनस्तरको सुधारनेमें कभी भी नहीं लगाया जासकता, क्योंकि उस तरीक़ेसे पूँजीपतियोंका मुनाफ़ा कम होजायगा। इसके बजाय होगा यह कि उसको बाहर पिछड़े हुए देशोंमें भेजा जायगा और ख़ूब मुनाफ़ा बढ़ाया जायगा।

पिछड़े हुये देशोंमें आमतौरसे ढेरों मुनाफ़ा होनेका कारण यह है कि वहाँ पूँजीकी कमी रहती है, ज़मीनकी क़ीमत मुक़ाबलेमें थोड़ी, मज़दूरी कम और कच्चा माल सस्ता रहता है। पूँजी बाहर भेजनेकी सम्भावना तब पैदा होती है जबकि कुछ पिछड़े हुये देश अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवादी आमदरफ़्तके अन्दर आ जाते हैं; ख़ास ख़ास रेलें या तो बन चुकती हैं या बनने लगतीं हैं, क्योंकि यही औद्योगिक उन्नतिकी पहली चीज़ें हैं।

पूँजीको बाहर भेजनेकी इसलिये ज़रूरत पड़ती है कि कुछ देशोंमें पूँजीवाद बेहद आगे बढ़ चुका है और चूँकि वहाँ खेती पिछड़ी हुई है और जनता दरिद्र है इसलिये पूँजीको मुनाफ़ेके कामोंमें लगानेका मौका नहीं है।

तीन ख़ास देशोंने कितनी कितनी पूँजी विदेशोंमें लगाई, इस सम्बन्धके क़रीब क़रीब आँकड़े हम नीचे देते हैं:—

विदेशोंमें लगी हुई पूँजी

अरब फ्रांकमें

वर्ष	इंग्लैण्ड	फ्रांस	जर्मनी
१८६२	३·६		
१८७२	१५	१० (१८६९)	
१८८२	२२	१५ (१८८०)	
१८९३	४२	२० (१८९०)	
१९०२	६२	२७–३७	१२·५
१९१४	७५–१००	६०	४४

इन आँकड़ोंसे हम देखते हैं कि २० वीं शदाब्दीके शुरूसे पहले पूँजीका निर्यात बेतहाशा नहीं बढ़ा था। लेकिन महायुद्धके पहले, तीनों प्रधान देशोंकी जितनी पूँजी विदेशोंमें लगी हुई थी, वह १०५ या २०० अरब फ्रांकके लगभग थी। अगर बिल्कुल मामूली दर ५ फ़ी सैकड़ा रखी जाय तो इस पूँजीसे कमसे कम ८ या १० अरब फ्रांक सालाना आमदनी होनी चाहिये। साम्राज्यवादी अत्याचारकी कितनी मज़बूत बुनियाद है और मुट्ठी भर धनी देशोंके लिये दुनियाँ भरके देशोंको बुरी तरहसे लूट कर रक्तशोषण करनेका कितना अच्छा तरीका है!

अब हमारे सामने सवाल यह है कि विदेशोंमें इस पूँजीका वितरण किस तरह किया जाता है और वह कहाँ कहाँ लगाई जाती है? इस सवाल का जवाब ठीक नहीं दिया जा सकता। लेकिन जैसा भी सही, वह अर्वाचीन साम्राज्यवादके व्यापक सम्बन्धों और बन्धनों पर प्रकाश डालनेके लिये काफ़ी होगा।

दुनियाँके विभिन्न भागोंमें विदेशी पूँजीका (क़रीब क़रीब) वितरण
(सन् १९१० के लगभग)

अरब मार्कमें

	इंग्लैन्डकी	फ्रांसकी	जर्मनीकी	कुल
योरपमें	४	२३	१८	४५
अमेरिकामें	३७	४	१०	५१
एशिया, एफ्रीका, आस्ट्रेलियामें	२९	८	७	४४
जोड़	७०	३५	३५	१४०

ब्रिटिश पूँजीके ख़ास क्षेत्र ब्रिटेनके उपनिवेश हैं। ये अमेरिकामें (जैसे कैनाडा) और एशियामें, तो वाकईमें, बहुत बड़े हैं। ब्रिटेनके मामलेमें ढेरों पूंजीके निर्यातका और बड़े बड़े उपनिवेशोंका बड़ा गहरा तआल्लुक़ है। इन उपनिवेशोंका साम्राज्यवादके हकमें क्या महत्व है इसपर आगे चलकर विचार किया जायगा। फ्रांसकी स्थिति दूसरी है। फ्रांसकी पूँजी प्रधानतः योरपमें, ख़ास तौरसे रूसमें लगी हुई है (कमसे कम १० अरब फ्राक)। इस पूँजीका बहुत बड़ा हिस्सा सरकारी ऋणमें है और उद्योगोंमें नहींके बराबर है। फ्रेंच साम्राज्यवाद ब्रिटिश सामाज्यवादसे

बिल्कुल भिन्न। ब्रिटिश साम्राज्यवाद औपनिवेशिक साम्राज्यवाद है और फ्रेंच साम्राज्यवादको सूदखोर साम्राज्यवाद कहा जा सकता है। जर्मनीका एक तीसरा ही प्रकार है। जर्मनीके उपनिवेश बड़े नहीं हैं, और उसकी जितनी भी पूँजी विदेशोंमें लगी हुई है वह योरप और अमेरिकामें क़रीब क़रीब बराबर बटी हुई है।

पूँजी जिन देशोंमें लगाई जाती है उनके पूँजीवादके विकासपर उसका प्रभाव पड़ता है। वहाँके पूँजीवादको खूब उत्तेजना मिलती है। लेकिन इस कारणसे दुनियाँ भरके पूँजीवादकी प्रगतिमें कुछ कमी आजाती है क्योंकि जिन देशोंमे पूँजी भेजी जाती है वहाँकी उन्नतिमें किसी हदतक रुकावट पड़ती है।

पूँजी भेजनेवाले देशोंको हमेशा ही ख़ास ख़ास सुविधायें मिलती हैं। बंक-पूँजी और एकाधिकारोंके कालकी ख़ासियतोंपर कुछ प्रकाश डालनेके लिये यह बता देना आवश्यक है कि यह सुविधायें किस प्रकारकी होती हैं। उदाहरणके लिये हम डीवांकके अक्टूबर १९१३ के अंकसे एक अवतरण देते हैं:—

"आजकल रुपये-पैसेके अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ारमें एक बहुत ही मज़ेदार नाटक खेला जारहा है। बीसों देश, किस किसका नाम लिया जाय, एक तरफ़ स्पेन है तो दूसरी तरफ बाल्कन देश है, इधर रूस है तो उधर आर्जेण्टाइन है, वेज़िल है, और चीन है, खुल्लमखुल्ला या छिपे-छिपे क़र्ज़के लिये चले आ रहे हैं। कोई कोई देश तो क़र्जके लिये अड़ भी जाते हैं। रुपये पैसेकी बाज़ारोंकी इस वक्त बहुत अच्छी हालत नहीं है, और राजनीतिक भविष्य भी अभी आशाजनक नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन कोई भी देश क़र्ज़ देनेसे इनकार करनेकी हिम्मत नहीं कर रहा है। डर यह होता है कि कहीं पड़ोसी देश बढ़कर हाथ न मारले और क़र्ज़ देकर बदलेमें कुछ छोटी मोटी सुविधायें प्राप्त न करले। इन अन्तर्राष्ट्रीय सौदोंमें क़र्ज़ देनेवालेके

लिये कोई न कोई फ़ायदा ज़रूर रहता है। कोई व्यवसाय या राजनीति-की सुविधा हो सकती है; कोई बन्दरगाह या बड़ी भारी रियायत मिलती है, और कुछ नहीं तो तोपोंका आर्डर ही हो सकता है।

बंक-पूँजीने एकाधिकारोंके युगको जन्म दिया है। एकाधिकार अपने साथ एकाधिकारी सिद्धान्तोंको लिये चले आ रहे हैं। पहले खुले बाज़ार-प्रतियोगिता चलती थी, अब उसके स्थानपर मुनाफ़ेके लिये सम्बन्धोंका इस्तेमाल किया जाता है। यह बिल्कुल आमबात है कि क़र्ज़की एक शर्त यह रहती है कि उसका एक हिस्सा क़र्ज़ देनेवाले देशसे सामान विशेषतः लड़ाईका या जहाज़ वग़ैरा, खरीदनेमें ख़र्च किया जायगा। पिछले बीस वर्षमें (१८९०–१९१०) फ्रांसका अक्सर यही तरीक़ा रहा है। इस तरहसे पूँजीका निर्यात सामानके निर्यातको बढ़ानेका एक साधन होजाता है। ऐसी सूरतमें ख़ास तौरसे बड़ी बड़ी फ़र्मोंके व्यवहार ऐसी शक्ल इख़्तियार कर लेते हैं जिसको शील्डर (Schilder) के शब्दोंमें 'पतन ही' कहा जासकता है। जर्मनीमें क्रुप (Krupp), फ्रांसमें श्नाइडेर (Schneider) और इङ्गलैण्डमें आर्मस्ट्रांग (Armstrong) इसी तरह की फर्मोंके उदाहरण हैं। इन फर्मोंके बड़े बड़े बैंकों और सरकारसे गहरे तआल्लुक़ात हैं। किसी क़र्ज़के मामलेमें इनसे आसानीसे बचा नहीं जासकता।

फ्रांसने जब रूसको क़र्ज़ दिया तो, १६ सितम्बर, १९०५[1] को व्यवसायिक सन्धिमें रूसको खूब दबाया और १९१७ तकके लिये रियायतें ले लीं। जापानके साथ १९ अगस्त १९११[1] को जो व्यवसायिक सन्धि की गई थी उसमें भी फ्रांसने यही किया था। आस्ट्रिया और सर्वियाका १९०६ से १९११ तक सिर्फ़ सात महीनोंको छोड़कर लगातार तकातोंका झगड़ा चलता रहा। उसका एक कारण यह भी था कि आस्ट्रिया और फ्रांसने इस बातकी बाज़ी लगा रक्खी थी कि सर्वियाको

लड़ाईका सामान कौन दे। जनवरी १९१२में पॉल डिशोनेल (Paul Deschanel) ने प्रतिनिधि-सभा (Chamber of Deputies) में बताया था कि १९०८ से १९११ तक फ्रांसने ४ करोड़ ५० लाख फ्रांकका लड़ाईका सामान सर्वियाको दिया।"

साव पावलो (ब्रेज़िल)में रहनेवाले ऑस्ट्रो-हंगरीके राजदूतकी एक रिपोर्टका यह कथन है:—

"ब्रेज़िलकी रेलोंमें, विशेषतः फ्रांस, बेल्जियम, ब्रिटेन और जर्मनीकी पूँजी लग रही है। इन रेलोंके सम्बन्धमें जो लेनदेन चलता है उसके साथ साथ यह भी शर्त रहती है कि ब्रेज़िलको रेलोंका आवश्यक सामान भी दिया जायगा।"

इस तरहसे हम देखते हैं कि सीधे शब्दोंमें यही कहा जा सकता है कि बैंक-पूँजी दुनियांके तमाम देशोंपर अपना जाल बिछा रही है! उपनिवेशोंमें बैंक और उनकी शाखायें खोली जाती हैं। इनका लेनदेनमें ख़ास हाथ रहता है। जर्मन साम्राज्यवादी ब्रिटेनके उपनिवेशोंको ईर्षासे देखते हैं क्योंकि इस मामलेमें इन उपनिवेशोंसे खूब मुनाफ़ा उठाया जाता है। १९०४ में, ग्रेट ब्रिटेनके ५० औपनिवेशिक बैंक और २२७९ शाखायें,* फ्रांसके २० बैंक और १३६ शाखायें, हॉलैण्डके १६ बैंक और ६८ शाखायें थीं। लेकिन बेचारे जर्मनीके सिर्फ़ १३ ही बैंक थे और कुल ७० शाखायें थीं।

उधर अमेरिकाके पूंजीपति इंगलैण्ड और जर्मनी दोनोंको देखकर अलग ही जलते रहते हैं।

१९१५ में उनकी शिकायत थी कि "दक्षिणी अमेरिकामें जर्मनीके

* १९१० में ब्रिटेनके ७२ औपनिवेशिक बैंक थे और उनकी ५५४९ शाखायें थीं।

५ बैंकों की ४० शाखायें हैं, और इंगलैण्डके ५ बैंकोंकी भी ८० शाखायें हैं। इंगलैण्ड और जर्मनीने आर्जेण्टायन, ब्रेज़िल और युरुगुएमें, पिछले २५ सालमें क़रीब ४ अरब डालर पूँजी लगा दी है। इसका नतीजा यह है कि वे इन देशोंके ४० फ़ी सैकड़ा व्यापारके मज़े उड़ा रहे हैं।"

जो देश पूँजीका निर्यात कर रहे हैं, उन्होंने एक प्रकारसे दुनियाँका बटवारा कर लिया है। लेकिन बंक-पूंजीने दुनियाँका सीधा सीधा बटवारा भी कर रक्खा है।

पाँचवाँ अध्याय

पूँजीवादी संघोंके दर्म्यान दुनियाँका बटवारा

पूँजीपतियोंके एकाधिकारी संघ—कार्टेल, सिण्डिकेट, ट्रस्ट वग़ैरा—सबसे पहले अपने देशकी बाज़ारको आपसमें बांटते हैं और देशके उत्पादन पर बहुत कुछ पूरा पूरा क़ब्ज़ा कर लेते हैं। लेकिन पूँजीवादके ज़मानेमें घरेलू बाज़ार विदेशी बाज़ारके साथ बंधा रहता है। क्योंकि पूंजीवादने बहुत अरसे पहले हीं से दुनियाँ भरका एक बाज़ार बना दिया है। इसलिये जैसे जैसे पूँजीका निर्यात बढ़ता गया, और बड़े बड़े एकाधिकारी संघोंके विदेशी और औपनिवेशिक सम्बन्धों यानी 'प्रभावक्षेत्रों'का विस्तार हुआ, वैसे वैसे परिस्थितियोंने स्वाभाविकरूपसे इन संघोंमें आपसमें अन्तर्राष्ट्रीय समझौते करने और अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेलोंको बनानेकी प्रवृत्तिको उत्तरोत्तर बढ़ाया।

इस समय पूँजी और उत्पादनका संसार-व्यापी केन्द्रीकरण होरहा है। इस नवीन अवस्थाकाका पुरानी किसी भी अवस्थासे कोई मुक़ाबला

नहीं हो सकता। हमें देखना यह है कि इस परम-एकाधिकारका विकास किस प्रकार होता है।

उन्नीसवीं शताब्दीके आख़िर और बीसवींके शुरूमें पूँजीवादने जिन नवीन साधन-विधियोंको खोज निकाला उनमें बिजलीका उद्योग सबसे मार्केका है। इस उद्योगकी सबसे ज़्यादा तरक़ी संयुक्तराष्ट्र-अमेरिका और जर्मनीमें हुई है। ये दोनों ही नये और सबसे आगे बढ़े हुए पूंजीवादी देश हैं। जर्मनीमें, ख़ास तौरसे १९०० के संकटसे बिजलीके उद्योगके केन्द्रीकरणको बड़ी भारी उत्तेजना मिली। इस समय तक बैंक उद्योगसे काफ़ी हद तक घुलमिल चुके थे। उन्होंने इस व्यापारिक संकटके अवसरपर छोटे फर्मोंकी तबाहीकी रफ़्तारको ख़ूब बढ़ाया और उनको हज़म करनेमें बड़े कारबारोंकी अच्छी तरहसे मददकी।

जाइडेल्सने लिखा है:—"बैंक यह करते हैं कि जिन कारबारोंको पूंजी की सबसे ज़्यादा ज़रूरत रहती है बस उन्हींकी सहायतासे हाथ खींच लेते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि पहले व्यापार चमक उठता है, और बड़ी भारी चहल पहल मचजाती है। लेकिन बादको उन कम्पनियोंपर तबाही आजाती है जो बैंकोंसे हमेशा घनिष्ट सम्बन्ध नहीं रखतीं। उनकी इस बुरी तरहसे बरबादी होती है कि फिर उनका उठना असम्भव हो जाता है।"

१९०० के बाद नतीजा यह हुआ कि जर्मनीमें केन्द्रीकरण बेतरह बढ़ा। १९०० से पहले बिजलीके उद्योगमें ७ या ८ 'समूह' थे। एक एक समूहमें कई कई कम्पनियाँ थीं (उस समय कुल २८ कम्पनियाँ थीं)। हर एक समूहके कमसे कम दो और ज़्यादासे ज़्यादा ११ बैंक सहायक थे। १९०८ से १९१२ तक सब समूह मिलमिलाकर एक या दो रह गये। यह क्रम इस प्रकार चला था :—

बिजलीक उद्योगक समूह

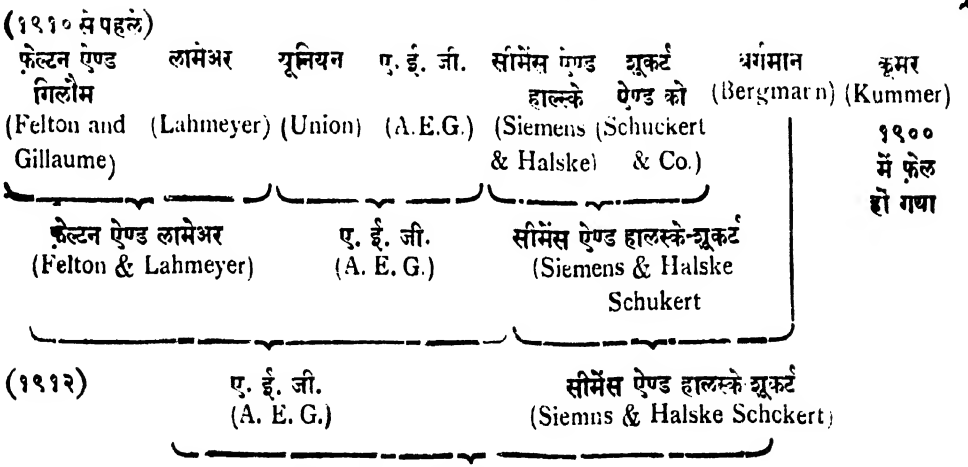

इस प्रकारसे प्रसिद्ध ए० ई० जी० समूह (A. E. G.–General Electric Company–जेनरल इलेक्ट्रिक कंपनी) की तरक्की हुई। इस समय १७५ से २००तक कम्पनियाँ 'शिरकत'के तरीक़ेसे उसके नियन्त्रणमें हैं। उसके अधिकारमें कुल पूँजी १½ अरब मार्क है। दससे ज़्यादा देशोंमें ३४ कम्पनियाँ उसका सीधा प्रतिनिधित्व करती हैं जिनमेंसे १२ ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनियाँ हैं। १९०४ तक ही जर्मनीके बिजलीके कारबारोंने लगभग २३ करोड़ ३०लाख मार्क पूँजी विदेशोंमें लगा रक्खी थी। इसमेंसे ६ करोड़ २० लाख मार्क रूसमें लगी हुई थी। यह स्पष्ट है कि ए० ई० जी० बड़ा ही भारी संयुक्त (combined) कारबार है। इस 'समूह' की सिर्फ़ सामान बनानेवाली कम्पनियोंकी ही संख्या १६ है। ये बीसों तरहका सामान, केबिल, इनस्युलेटरसे लेकर मोटर और हवाई जहाज़ तक बनाती हैं। लेकिन योरपका यह केन्द्रीकरण अमेरिकाके केन्द्रीकरणका अंग था, उससे अलग न था। अमेरिकाके केन्द्रीकरणका विकास क्रम नीचे दिया जाता है:—

जेनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी

संयुक्त राष्ट्र	टॉम्सन-हाउस्टन कम्पनी (Thomson-Houston Co.) (इसने योरपके लिये एक फ़र्म स्थापित किया)	एडिसन कम्पनी (Edison Co.) फ्रेंच एडिसन कम्पनी (French Edison Co.) (इसने अपने पेटण्ट एक जर्मन फ़र्मको दे दिये)
जर्मनी	यूनियन इलेक्ट्रिक कंपनी (Union Electric co.)	ए० ई० जी (A. E. G.)

ए० ई० जी०

इस प्रकार बिजलीके उद्योगमें दो 'महाशक्तियाँ' बन गई थीं। हाइनिग (Heinig) ने अपने लेख 'बिजली ट्रस्टका मार्ग'में लिखा था कि "बिजलीके उद्योगमें दूसरी कोई भी बड़ी शक्तियाँ नहीं हैं जो इन दोनों महाशक्तियों से पूरी पूरी स्वतन्त्र हों।" इन दोनों ट्रस्टोंके कुछ आँकड़े हम नीचे देते हैं जिनसे, इनके लम्बे चौड़े कारबारका कुछ थोड़ासा अनुमान किया जा सकेगा :—

		कितनेका सामान तैयार हुआ (लाख मार्कमें)	काम करनेवालों की संख्या	ख़ालिस मुनाफ़ा (लाख मार्कमें)
अमेरिका : जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी	१९०७	२५२०	२८०००	३५४
	१९१०	२९८०	३२०००	४५६
जर्मनी: ए० ई०जी०	१९०७	२१६०	३०७००	१४५
	१९११	३६२०	६०८००	२१७

१९०७ में जर्मनी और अमेरिकाके इन दोनों ट्रस्टोंने आपसमें दुनियाँके बटवारेके लिये समझौता किया। प्रतियोगिता ख़त्म होगई। जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी (अमेरिका) को संयुक्त राष्ट और कैनाडा मिला; ए. ई. जी. ने (जर्मनी), ऑस्ट्रिया, रूस, हॉलैण्ड, डेन्मार्क, स्विट्ज़र्लैंड, टर्की और बाल्कन राज्य पाये। यह बिल्कुल स्वाभाविक था कि फिर गुप्त रूपसे इन्होंने आपसमें विशेष समझौते किये जिनसे यह तै पाया कि दूसरे दूसरे उद्योगोंमें सहायक कम्पनियोंको डाला जाय, और यह भी निश्चय हुआ कि नये देशोंके लिये भी, जिनका अभी तक बटवारा नहीं हुआ था, सहायक कम्पनियाँ शुरूकी जाँय। यह भी आपसमें तै था कि इन ट्रस्टोंके प्रयोग और आविष्कार एक दूसरेको मिल सकेंगे।

जब हम यह देखते हैं कि इस ट्रस्टका आपसमें मज़बूत एका है, दुनिया भर पर उसका अधिकार है, अरबों पूँजी उसकी मुट्ठीमें है और दुनियाँके कोने कोनेमें उसकी शाखायें, एजंसियाँ, 'प्रतिनिधि', 'सम्बन्ध' वग़ैरा छाये हुये हैं, तो हमारी समझमें आसानीसे आ जाता है कि इसके ख़िलाफ़ प्रतियोगिता करना कितना कठिन काम है। लेकिन एक बात और भी ध्यानमें रखनी चाहिये। दो शक्तिशाली ट्रस्टोंमें दुनियाँका बटवारा हो जानेके मानी यह नहीं होते कि यदि फिर कभी असमान उन्नति, युद्ध, या दिवाला वग़ैरासे स्थिति बदल जाय, और नवीन अवस्थायें पैदा हो जाँय, तो फिर दुबारा बटवारा न हो सके।

मिट्टीके तेलका उद्योग इस सम्बन्धमें अच्छी मिसाल है। इसमें दुबारा बटवारेके लिये मज़ेदार संघर्ष चला था।

जाइडेल्सने १९०५ में लिखा था कि "दुनियाँके तेलके बाज़ारको इस समय भी दो समूहोंने आपसमें बाँट रक्खा है—एक समूह अमेरिकाका रॉकफ़ेलरकी स्टैण्डर्ड ऑयल कम्पनी (Rockfeller's Standard Oil Company); दूसरा समूह–रॉथशील्ड ऐंड नोबेल (Rothschild and Nobel) जो बाकूके रूसी तेल क्षेत्रोंका मालिक है। इन दोनों समूहोंमें गहरी 'दोस्ती' है। लेकिन कई सालसे, पाँच शत्रुओंकी वजहसे इनके एकाधिकारकारके लिये बराबर खतरा रहता है…"

(१) अमेरिकाके तेलके कुओंका बराबर ख़ाली होते जाना (२) बाकूकी मैण्टाशेव फ़र्म (Mantashev) की प्रतियोगिता (३) आस्ट्रियाके तेलके कुयें (४) रूमानियाँके तेलके कुयें (५) समुद्रपारके तेलके कुयें, ख़ास तौरसे हॉलैण्डके उपनिवेशोंके*। यही वे पाँच शत्रु हैं।

* इन कुओं पर सैमुअल और शेल (Samuel, Shell) के फर्मों का अधिकार है। ये फर्में बहुत धनी हैं और इनका ब्रिटिश पूँजी पतियोंसे भी सम्बन्ध है।

अन्तिम तीन कारबार-समूहोंका सम्बन्ध जर्मन बैंकोंसे है, विशेषतः ड्वाइचे बांकसे। इन बैंकोंने तेलके उद्योगकी उन्नति, स्वतन्त्ररूपसे, विधिपूर्वक की है। वह इसलिये कि यह बैंक अपना 'निजी आधार' रखना चाहते हैं। उदाहरणके लिये रूमानियाँका तेलका उद्योग इनका ही खड़ा किया हुआ है। १९०७ में रूमानियाँके तेलके उद्योगमें १८५० लाख फ्रांककी विदेशी पूँजी लगी हुई थी जिसमेंसे ७४० लाख फ्रांक सिर्फ़ जर्मनीकी थी।

इस सिलसिलेमें एक युद्ध चल पड़ा था जिसका कि आर्थिक साहित्यमें बहुत ही उचित नाम 'दुनियांके बटवारे' का युद्ध रक्खा गया है। एक ओर रॉकफ़ेलरका ट्रस्ट सभी पर अपना अधिकार करना चाहता था। उसने इसीलिये एक सहायक कम्पनी (Subsidiary Company) हॉलैण्डमें ही बना दी, और हॉलैण्डके पूर्वी द्वीपोंके कुयें, अपने ख़ास दुश्मन ऐंग्लो-डच शेल ट्रस्ट (Anglo-Dutch Shell Trust) पर वार करनेके ख़याल, से ख़रीद लिये। दूसरी तरफ़ ड्वाइचे बांक व दूसरे जर्मन बैंक रूमानियांको हथियाना चाहते थे, और यह सोचते थे कि रूमानियांके साथ रूसको, रॉकफ़ेलरके ख़िलाफ़, मिलालें। लेकिन रॉकफ़ेलरके पास इनके मुक़ाबलेमें कहीं ज़्याद पूँजी थी, और उसके यहाँ बहुत अच्छे ढंग पर तेलका यातायात और वितरण किया जाता था। इसलिये नतीजा यह हुआ कि १९०७ में युद्ध समाप्त हो गया। ड्वाइचे बांककी करारी हार हुई। अब उसके सामने दो ही रास्ते थेः अपने 'तेलके स्वार्थों (कम्पनियों वग़ैराको) को ख़त्म कर दे और करोड़ोंका नुक़सान उठाये या फिर समर्पण करे। ड्वाइचे बांक समर्पणके लिये तैयार हुआ और उसको ऑयल ट्रस्टके साथ बहुत असुविधापूर्ण समझौता करना पड़ता। ड्वाइचे बांकने इक़रार किया कि वह कोई भी ऐसा व्यापार अपने हाथमें न लेगा जिससे ऑयल ट्रस्टको हानि हो। लेकिन एक शर्त यह भी थी

कि अगर तेलमें जर्मन राज्यका एकाधिकार क़ायम हो जाय तो यह समझौता रद्द हो जायगा।

फिर क्या था तेलका मज़ेदार नाटक शुरू हो गया। ड्वाइचे बांकके डायरेक्टर ग्वीनेर (Gwinner) ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी, स्टाउस (Stauss) के ज़रिये तेलके एकाधिकारके लिये युद्धकी तैयारी शुरू की। ड्वाइचे बांकका विशाल संगठन और सारेके सारे 'सम्बन्ध' इसमें लगा दिये गये। समाचार पत्र, अमेरिकन ट्रस्टकी गुलामीके ख़िलाफ़ देशभक्ति-पूर्ण क्रोध उगलने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि राइख़्स्टाग (जर्मन पार्लियामेण्ट) ने १५ मार्च, १९११ को क़रीब क़रीब सर्व सम्मतिसे एक प्रस्ताव पास किया और सरकारसे प्रार्थनाकी कि तेलका एकाधिकार क़ायम करनेके लिये एक बिल तैयार किया जाय। सरकारने 'सर्व साधारण' के इस विचारको तुरन्त अपनाया और यह मालूम होने लगा कि ड्वाइचे बांककी तिकड़म सफल हो गई। ड्वाइचे बांक तो यही चाहता था कि अमेरिकन 'शरीक' (रॉकफ़ेलरकी कम्पनी) को धोखा देकर राज्य-एकाधिकारके द्वारा अपने व्यापारकी उन्नति करे। जर्मनीके तेल-अधिपति पहले ही से ढ़ेर के ढ़ेर मुनाफ़ेके स्वप्न देख रहे थे। उनका ख़याल था कि रूसी विशाल शुगर कम्पनियोंसे कम मुनाफ़ा न होगा। लेकिन सब बनाबनाया खेल बिगड़ गया। पहले तो जर्मन बैंकोंमें मुनाफ़ेके बटवारेके सम्बन्धमें झगड़ा चला और डिस्कॉण्टो-गेसेलशाफ़्थने ड्वाइचे बांकके स्वार्थों का भण्डाफोड़ कर दिया। दूसरे रॉकफ़ेलरके ख़िलाफ़ युद्ध करनेसे जर्मन सरकारको भी बड़ाभारी डर होने लगा। क्योंकि रूमानियामें ज़्यादा तेल नहीं था और यह भी सन्देह था कि बिना रॉकफ़ेलरकी सहायताके जर्मनी को तेल नहीं मिल सकेगा। तीसरी बात यह हुई कि १९१३ में जर्मनी को युद्धकी तैयारीके लिये १ अरब मार्ककी ज़रूरत आ पड़ी। इन सब कारणोंका नतीजा यह हुआ कि तेलके एकाधिकारकी तैयारी ख़त्म करदी

गई। उस समयके लिये तो रॉकफ़ेलरके ट्रस्टकी जीत हो गई।

डी बाँक पत्रिकाने इस सम्बन्धमें लिखा था कि जर्मनी ऑयल ट्रस्टका मुक़ाबला एकही तरीक़ेसे कर सकता था। वह बिजलीका एकाधिकार क़ायम करता और पानीकी पॉवरसे सस्ती बिजली तैयार करता। आगे चलकर उसमें कहा गया था :—

"लेकिन पॉवरका एकाधिकार उस वक़्त हो सकेगा जबकि सामान बनाने वालोंको पॉवरकी ज़रूरत होगी, यानी उस वक़्त जबकि बिजलीका उद्योग बुरी तरहसे गिरनेवाला होगा। उस वक़्त बड़े बड़े और महंगे पॉवर स्टेशन, जिनको वैयक्तिक बिजली-कारबार जगह जगह क़ायम कर रहे हैं, और जिनको सरकारसे, शहरोंसे, या दूसरी संस्थाओंसे एक हद तक एकाधिकार प्राप्त हो रहे हैं, मुनाफ़ा उठाकर न चल सकेंगे। उस समय पानीकी पॉवरको इस्तेमाल करना होगा। लेकिन सरकार अपने ख़र्चसे पानीकी पॉवरको सस्ता नहीं बना सकती है। किसी 'वैयक्तिक एकाधिकार' को जिस पर सरकारका नियन्त्रण रहे, सुपुर्द करना ही होगा। क्योंकि अगर जर्मन सरकारने पानीकी पॉवरका अपना एकाधिकार क़ायम किया तो उसको मौजूदा बड़े बड़े कारख़ानोंको ढेरों मुआविज़ा और पुरस्कार देना होगा। पुटाशके एकाधिकारके मामलेमें यही हुआ था। तेलके मामलेमें भी यही बात है। और यही पॉवरके एकाधिकारमें भी होगा। हमारे 'राज्य-समाजवादी' (state-socialist)† तो सुन्दर सुन्दर सिद्धान्तोंमें भूल जाते हैं। अब वह वक़्त आ गया है जबकि वे हमेशाके लिये यह समझलें कि जर्मनीमें एकाधिकारोंका उद्देश्य न तो कभी ख़रीदारोंको फ़ायदा पहुँचानेका रहा है और न उन्होंने कभी

† राज्य-समाजवादी—सरकार से सम्बन्ध रखने वाले वे लोग जो यह मानते हैं कि बड़े बड़े वैयक्तिक कारबार सरकार के सुपुर्द होने चाहिये।

पहुँचाया ही है, न एकाधिकारोंने मुनाफ़ेका कोई हिस्सा सरकारको ही दिया है। उनका हमेशा ही यह उद्देश्य रहा है कि जिन वैयक्तिक कारबारोंका दिवाला निकल गया है उनको फिरसे उठाया जाय।"

यह वह सच्ची बातें हैं जिनको जर्मनीके पूंजीजीवी अर्थशास्त्री माननेके लिए मजबूर होजाते हैं। यहाँपर हम बिल्कुल साफ़ देखते हैं कि बंक-पूँजीके ज़मानेमें वैयक्तिक एकाधिकार और राज्यके एकाधिकार किस प्रकार आपस में घुलेमिले और बँधे हुये रहते हैं। हम यह भी देखते हैं कि, एकाधिकार वैयक्तिक हों या राज्यके, उस साम्राज्यवादीयुद्धके अंग हैं, जो कि दुनियाँके बटवारेके लिये महा-एकाधिकारियोंमें चल रहा है।

व्यापारिक जहाज़रानीमें भी केन्द्रीकरण हुआ है और उसने भी दुनियाँका बटवारा कर डाला है। जर्मनीमें दो शक्तिशाली कम्पनियाँ प्रधान हैं—हैमबर्ग-अमेरिकन और नॉर्थ जर्मनलॉयड (Hamburg-American, The North German Lloyd)। हर एकके पास बीस करोड़ मार्ककी पूँजी है जो स्टाकों और ऋण पत्रोंमें लगी हुई है। इसके अलावा हर एकके पास १८ करोड़ ५० लाख मार्कसे १८ करोड़ ९० लाख मार्क तककी क़ीमतके जहाज़ हैं। उधर अमेरिकामें १ जनवरी १९०३ को मॉर्गन ट्रस्ट (Morgan Trust—International Mercantile Marine) का संगठन होचुका है। इसमें उस समय ब्रिटिश और अमेरिकन ९ जहाज़ी कम्पनियाँ सम्मिलित हुई थीं और १२ करोड़ डालरकी पूँजी इसके पास थी। १९०३ में जर्मनीकी दोनों विशाल कम्पनियोंने और ऐंग्लो-अमेरिकन ट्रस्ट (मॉरगन ट्रस्ट)ने आपसमें समझौता किया और दुनियाँका, मुनाफ़ेके बटवारेके अनुसार, बटवारा कर लिया। जर्मन कम्पनियोंने इक़रार किया कि वे अमेरिका और इङ्गलैण्डके बीचकी आमदरफ़्तमें प्रतियोगिता न करेंगी। बन्दरगाहोंके बटवारेके लिये भी बड़ी होशियारीके साथ शर्तें की गईं और नियन्त्रणके

लिये एक संयुक्त कमेटी बना दी गई। यह समझौता बीस सालके लिये किया गया था। एक शर्त बड़ीही दूरदर्शिताकी यह की गई कि अगर युद्ध शुरू होजाय तो समझौता रद्द समझा जायगा।

इसी तरह इण्टरनेशनल रेल कार्टेल (International Rail Cartel) की कहानी भी शिक्षाप्रद है। सबसे पहले १८८४ में ब्रिटेन, बेल्जियम, और जर्मनीके रेलका सामान बनानेवालोंने कार्टेल बनानेका प्रयत्न किया। उस समय उद्योग बहुत मन्दा था। उन्होंने यह समझौता किया कि जो कम्पनियाँ समझौतेमें शरीक हों उनसे उनके देशकी बाज़ारोंमें प्रतियोगिता न की जाय। इसके साथ विदेशी बाज़ारोंको बिक्रीके अनुसार इस प्रकार बाँटा गया था—ग्रेट ब्रिटेन ६६ फ़ी सैकड़ा, जर्मनी २७ फ़ी सैकड़ा, और बेल्जियम ७ फ़ी सैकड़ा। हिन्दुस्तान बिल्कुल ग्रेट ब्रिटेनके लिये सुरक्षित रहा। एक ब्रिटिश फ़र्म इस समझौतेमें शरीक न हुई। इसलिये उसके ख़िलाफ़ इन कम्पनियोंने सम्मिलित युद्ध छेड़ दिया। इस युद्धका ख़र्च सब कम्पनियोंसे बिक्रीके अनुपातसे लिया गया। लेकिन १८८६ में दो ब्रिटिश फ़र्में इस कार्टेलसे अलग होगईं और कार्टेल ख़त्म होगया। यह बड़े मार्केका वाक़या है कि बादको उस ज़मानेमें जब कि उद्योग ख़ूब अच्छा चला, कोई समझौता न हो सका।

१९०४ के शुरूमें जर्मन स्टील (फ़ौलाद) सिण्डिकेट बनाया गया। नवम्बर, १९०४ में इण्टरनेशनल रेल कार्टेल (International Rail Cartel) दुबारा शुरू किया गया। इसबार बटवारा इस प्रकारसे हुआ। इंग्लैण्ड ५३·५ फ़ी सैकड़ा; जर्मनी २८·८३ फ़ी सैकड़ा और बेल्जियम १७·६७ फ़ी सैकड़ा। फ्रांस बादको शरीक हुआ। बिक्रीकी एक सीमा निश्चित कर दी गई थी और उसके ऊपर होनेवाली बिक्रीका हिस्सेदार फ्रांस हुआ। इस प्रकार पहली सालमें ४·८ फ़ी सैकड़ा अधिक बिक्री हुई और यही फ्रांसको मिली। इसी तरह दूसरी सालमें ५·८ और तीसरीमें ६·४

फ़ी सैकड़ा फ़्रांसके हिस्सेमें पड़ा। १९०५ में 'स्टील ट्रस्ट'–युनाइटेड स्टेट्स स्टील कॉरपोरेशन ('Steel Trust'-United States Steel Corporation) इस कार्टेलमें सम्मिलित हुआ। उसके बाद ऑस्ट्रिया और फिर स्पेन भी शरीक हो गया।

फ़ोगेल्स्टाइन (Vogelstine) ने १९१० मे लिखा था: कि "इस वक़्त तो दुनियांका बटवारा पूरा होचुका है। इस बटवारेमें ख़रीदारोंके हितोंका कोई ख़याल नहीं किया गया है। इसलिये बड़े बड़े ख़रीदारोंकी, ख़ास तौरसे राज्योंकी रेलोंके कारबारोंकी बड़ी बुरी हालत है।

इण्टरनेशनल ज़िंक सिण्डिकेट (International Zinc Syndicate) के सम्बन्धमें भी कह देना आवश्यक है। यह १९०९ में बना था। जर्मनी, बेल्जियम, फ़्रांस, स्पेन और ब्रिटेनकी कम्पनियोंके तीन 'समूह' इसमें सम्मिलित हुये। और यह बड़ी होशियारीके साथ तै कर लिया गया कि कितना कितना सामान हरएक 'समूह' तैयार करेगा। अब इण्टरनेशनल पाउडर (International Powder Trust–बारूदका ट्रस्ट) रहा। इसके सम्बन्धमें लाइफ़मानने कहा है कि "वह (जर्मनी) की डिस्फोटककी सब कम्पनियोंका मज़बूत संगठन है, और बिल्कुल अर्वाचीन तरीक़ेपर संगठित किया गया है। इसने और फ़्रांस व अमेरिकाकी कम्पनियोंने दुनियांको आपसमें बांट लिया है। फ़्रांस और अमेरिकन कम्पनियां भी इसीकी तरह आपसमें संगठित हैं।"

१८९७ की लाइफ़मानकी गणनाके अनुसार उस समय लगभग ४० अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल थे। इनमें जर्मनीका अच्छा हिस्सा था। १९१० तक उनकी संख्या १०० होगई।

कुछ पूँजीजीवी लेखकोंने* यह राय ज़ाहिर की है कि अन्तर्राष्ट्रीय

* इनके साथ कौत्सकी भी है, जो अपने व्यवहारसे अपने मार्क्सवादको १९०९ में पोल खोल चुका है।

कार्टेल इस बातका सबसे ख़ासा सबूत कि पूँजीका अन्तर्राष्ट्रीयकरण हो रहा है इसलिये यह आशा है कि जिन देशोंमें पूँजीवाद है, उनमें आपसमें शान्ति स्थापित होजायगी। सिद्धान्तकी दृष्टिसे यह राय बिल्कुल बेहूदा है, और व्यवहारकी दृष्टिसे भुलावा देनेके अलावा कोई मानी नहीं रखती। यह तो बेईमानी और समय साधकताका नीचसे नीच समर्थन है। असलमें तो अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल यह साबित करते हैं कि पूँजीवादी एकाधिकार किस हदतक बढ़ चुके हैं और पूँजीवादी 'समूहों'के संघर्षके कारण क्या होते हैं। कारणोंवाली बात सबसे अधिक महत्व पूर्ण है। क्योंकि सिर्फ़ उसीसे हम समझ सकते हैं कि घटनाओंका इतिहास किस प्रकार आर्थिक परिस्थितियोंके कारण बना करता है। भिन्न भिन्न, न्यूनाधिक वैयक्तिक, और समय समयके कारणोंके अनुसार संघर्षका रूप बदलता रहता है। लेकिन उसका तत्व, उसका वर्गिक अर्थ (वर्गोंके सम्बन्धमें अर्थ–class content) जब तक वर्ग क़ायम है, बदल ही नहीं सकता। यह आसानीसे समझमें आ सकता है कि किसलिये जर्मन पूँजीजीवी मौजूदा आर्थिक संघर्ष (दुनियाका बटवारा) के अर्थ (तत्व) पर पर्दा डालनेकी कोशिश करते हैं और संघर्षके किसी रूप पर ही क्यों ज़ोर देते हैं। उसकी वजह यह है कि उनका स्वार्थ लगा हुआ है। इन लोगोंकी दलीलोंकी ख़ास ख़ास बातोंको कॉट्स्कीने भी अपना लिया है और उसने भी वही ग़लतीकी है। असलमें हमारा मतलब सिर्फ़ जर्मन पूँजीजीवियोंसे ही नहीं है, बल्कि दुनियाँ भरके पूँजीजीवियोंकी यही हालत है। पूँजीपति दुनियाँका बटवारा इसलिये नहीं करते कि उन्हें एक दूसरेसे व्यक्तिगत ईर्षा रहती है। बल्कि बात तो यह है कि केन्द्रीकरण इस हद तक पहुँच चुका है कि मुनाफ़ेका कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है और उनको मजबूरन यह तरीक़ा इख़्तियार करना पड़ता है। वे बटवारा 'पूँजीके अनुपातसे' या 'ताक़तके अनुपातसे' करते हैं। इसका कारण यह है कि सामग्री—

उत्पादन और पूँजीवादकी व्यवस्थाके अन्दर बटवारेका कोई दूसरा तरीक़ा हो ही नहीं सकता। लेकिन ताक़त (Power) तो आर्थिक और राजनीतिक विकासकी कम या ज़्यादह मात्राके अनुसार कमोवेश होती है। घटना क्रमके समझनेके लिये यह समझ लेना आवश्यक है कि ताक़तकी कमी वेशीसे कौन कौनसे सवाल हल हुआ करते हैं। यह प्रश्न, कि यह तबदीलियाँ 'शुद्ध' आर्थिक कारणोंसे होती हैं या दूसरे कारणोंसे भी (जैसे कि फौजी), कोई विशेष महत्व नहीं रखता और उससे पूँजीवादके बिल्कुल नवीन युगके बुनियादी पहलूपर कोई असर नहीं पड़ता। संघर्ष और पूँजीवादी संघोंके समझौतोंके तात्विक अर्थको छोड़ देना और उसके स्थानमें संघर्ष और समझौतोंके रूपोंपर ज़ोर देना भुलावा देनेकी कोशिश करना है।

हमें पूँजीवादके इस नवीन युगसे पता चलता है कि पूँजीवादी संघोंमें कुछ खास सम्बन्ध स्थापित हो रहे हैं। इनका आधार दुनियाँका आर्थिक बटवारा है। उधर इसके साथ साथ और इसीके सिलसिलेमें सरकारोंमें राजनीतिक सम्बन्ध भी स्थापित हो रहे हैं। इनका आधार दुनियाँके भागोंका बटवारा, या 'उपनिवेशोंके लिये संघर्ष है। या यह भी कह सकते हैं कि इन राजनैतिक 'दोस्तियों'का आधार "आर्थिक भूभागोंके लिये संघर्ष" है।

छठा अध्याय

महाशक्तियोंके दर्म्यान दुनियांका बटवारा

भूगोल विशारद ए० स्यूपैन (A. Supan) ने अपनी पुस्तक 'दी टेरिटोरियल डिवल प्मेण्ट ऑव योरोपियन कॉलोनीज़,' (The Territorial Development of European Colonies) में योरप के उपनिवेशोंकी सीमा वृद्धिका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार दिया है :—

योरुपीय राज्यों और संयुक्त राष्ट-अमेरिकाके अधीन
उपनिवेशोंका प्रतिशत क्षेत्रफल

	१८७६	१९००	वृद्धि
एफ्रिकामें	१०·८	९०·४	७९·६
पोलिनेशियामें	५६·८	९८·९	४२·१
एशियामें	५१·५	५६·६	५·१
ऑस्ट्रेलियामें	१००·०	१००·०	
अमेरिकामें	२७·५	२७·२	०·३ कमी

स्यूपैनने अन्तमें लिखा है कि "इसलिये इस कालकी सबसे ख़ास चीज़ एफ्रिका और पोलिनेशियाका बटवारा है"। लेकिन आजकल चूँकि हम देखते हैं कि एशिया और अमेरिकामें कोई भी ऐसा भाग नहीं है जिस पर किसीका भी क़ब्ज़ा न हो, इसलिये हमको स्यूपैनके नतीजेसे आगे

जाना पड़ता है। हमें अब यह कहना चाहिये कि इस कालकी ख़ास चीज़ यह है कि पृथ्वीका आख़िरी बटवारा, हो चुका है। आख़िरी इस अर्थमें नहीं कि अब दुबारा बटवारा होना असम्भव है, बल्कि कहना तो यह चाहिये कि बारबार बटवारा होना सम्भव ही नहीं बल्कि अनिवार्य है। हमने आख़िरी शब्दका प्रयोग इस अर्थमें किया है कि पूँजीवादी देशोंकी औपनिवेशिक नीति अपना काम पूरा पूरा ख़त्म कर चुकी है और हमारी पृथ्वी पर किसी भी भागको उसने बिना क़ब्ज़ा किये नहीं छोड़ा है। इसका मतलब यह है कि भविष्यमें केवल 'पुनर्विभाजन' ही हो सकेगा, यानी कोई भाग एक 'मालिक'से निकल कर दूसरे 'मालिक' के पास जा सकेगा। अब यह नहीं होगा कि कोई भाग जिसका कोई मालिक नहीं है, किसी मालिकके पास जाय। सीधी बात तो यह है कि अब इस तरह का कोई भाग है ही नहीं।

यह काल दुनियाँकी औपनिवेशिक नीतिका एक विशेष काल है। और इसका 'पूँजीवादी विकासकी ताज़ा मंज़िल' यानी बंक पूँजीसे बड़ा गहरा तआल्लुक़ है। इसलिये वाक़यातको हमें विस्तारसे देखना होगा जिससे कि यह ठीक ठीक निश्चय किया जा सके कि पिछले कालोंके मुक़ाबलेमें इस कालमें कौनसी ख़ासियत है और इस वक़्तकी परिस्थिति में कौनसी विशेषता है। पहले ही वाक़यातके सम्बन्धमें हमारे सामने दो प्रश्न आते हैं। पहला प्रश्न यह होता है कि क्या ख़ास तौरसे, इस बंकपूँजीके कालमें ही, यह देखा जाता है कि औपनिवेशिक नीति जितनी गहरी होती जा रही है, उपनिवेशोंके लिये संघर्ष भी उतना ही गहरा हो रहा है? और दूसरा यह कि इस सिलसिलेमें, इस समय दुनियांका बटवारा किस तरह हुआ है?

अमेरिकन लेखक मॉरिस (Morris) ने अपनी पुस्तक 'दी हिस्टरी ऑव कॉलोनाइज़ेशन' (The History of Colonisation), में इस

सम्बन्धमें, कि ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनीके पास १९ वीं शताब्दीके भिन्न भिन्न कालोंमें किस किस विस्तारके उपनिवेश थे, ये आंकड़े दिये हैं।

उपनिवेशोंका विस्तार

	इंगलैंड		फ्रांस		जर्मनी	
	क्षेत्रफल लाखवर्ग मीलमें	आबादी लाखमें	क्षेत्रफल लाखवर्ग मीलमें	आबादी लाखमें	क्षेत्रफल लाखवर्ग मीलमें	आबादी लाखमें
१८१५–१८३०	?	१२६४	·२	५	—	—
१८६०	२५	१४५१	२	३४	—	—
१८८०	७७	२६७९	७	७५	—	—
१८९९	११६	३४५२	३७	५६४	१०	१४७

ब्रिटेनके उपनिवेशोंका विस्तार सबसे अधिक १८६० से १८८० तक हुआ है; और १९ वीं शताब्दीके अन्तिम २० वर्ष भी बड़े महत्वके हैं। फ्रांस और जर्मनीके उपनिवेशोंकी सबसे ज़्यादा बढ़ती अन्तिम २० वर्षमें हुई है। हम पहले देख चुके हैं कि एकाधिकारोंके युगसे पहले मुक्त प्रतियोगिताके ज़मानेमें पूँजीवादकी उन्नतिकी चरमसीमा १८६० से १८८० के कालमें हो चुकी थी। हम जानते हैं कि ठीक इसी कालके बादसे उपनिवेशोंपर क़ब्ज़ा करनेका दौर बेहद तेज़ीसे शुरू हुआ, और साथ ही दुनियाँके भौमिक बटवारेका संघर्ष भी असाधारण रूपसे गहरा हो गया। इसलिये इसमें कोई संदेह नहीं कि पूँजीवादका पुराने ढंगको छोड़कर एकाधिकार व बैंक-पूँजी पर आना, और दुनियांके बटवारेके लिये संघर्षका वेग बढ़ना—इन दोनों घटनाओंका घनिष्ट सम्बन्ध है।

हॉब्सनने साम्राज्यवादपर एक पुस्तक लिखी है। उसमें उसने कहा है कि ख़ास तौरसे १८८४–१९०० के कालमें योरोपीय राज्योंका 'विस्तार' तेज़ीसे हुआ। उसके तख़मीनेके मुताबिक़ इन वर्षोंके 'विस्तार'का ब्यौरा इस प्रकार है :—

	क्षेत्रफल लाख वर्गमीलमें	आबादी लाखमें
इङ्गलैण्ड	३७	५७०
फ्रांस	३६	३३५
जर्मनी	१०	१६७
बेल्जियम	९	३००
पोर्च्युगाल	८	९०

१९वीं शताब्दीके अन्तमें, और ख़ास तौरसे, १८८० के बाद सभी पूँजीवादी देशोंने किस तरहसे उपनिवेशोंकी खोज की और उनपर क़ब्ज़ा किया—यह सब कूटनीति और वैदेशिक नीतिके इतिहासकी एक बहुत प्रसिद्ध घटना है।

१८४० से १८६० तक इङ्गलैण्डमें मुक्त प्रतियोगिताका सबसे तेज़ीका ज़माना था। उस समय प्रमुख पूंजीजीवी राजनीतिज्ञ औपनिवेशिक नीति के ख़िलाफ़ थे। उनका ख़याल था कि उपनिवेशोंका आज़ाद कर देना और इङ्गलैण्डसे बिल्कुल अलग होजाना क़तई लाज़िमी और ज़रूरी है। एम० बीर (M. Beer) का एक लेख, अर्वाचीन ब्रिटिश पूँजीवादपर, १८९८ में प्रकाशित हुआ था। उसने लिखा था कि "राजनीतिज्ञ डिज़रेली (Disraeli) साम्राज्यवादका साधारणतः समर्थक था, लेकिन तौ भी १८५२ में उसने घोषित किया कि 'उपनिवेश हमारे गलेमें चक्कीके पाट हैं,"। लेकिन १९वीं शताब्दीके अन्ततक सेसिल रोड्ज़ (Cecil Rhodes)

और जॉसेफ़ चैम्बर्लेन (Joseph Chamberlain) जैसे वीर मैदानमें आ गये। ये लोग साम्राज्यवादी नीतिके कट्टर पक्षपाती थे और उसका खुल्लमखुल्ला समर्थन करते थे।

यह बड़े मज़ेकी बात है कि उस समय भी प्रमुख ब्रिटिश पूँजीजीवी राजनीतिज्ञ यह ख़ूब अच्छी तरह जानते थे कि अर्वाचीन साम्राज्यवादके शुद्ध आर्थिक और सामाजिक-राजनीतिक आधारमें क्या सम्बन्ध है। चैम्बर्लेन प्रचार करता था कि 'साम्राज्यवाद सच्ची और बुद्धिमत्ता पूर्ण, आर्थिक नीति है' और इस बातपर ख़ास ज़ोर देता कि ग्रेट ब्रिटेनको, दुनियाँकी बाज़ारमें, जर्मनी, अमेरिका और बेल्जियमकी प्रतियोगिताका मुक़ाबला करना है। उधर पूँजीपति कार्टेल, सिण्डिकेट कौर ट्रस्ट बनाते जाते और कहते 'मुक्ति एकाधिकारोंमें हैं'। पूँजीजीवी राजनीतिक नेता भी चीख़ते—'मुक्ति एकाधिकारोंमें है'। उनको हमेशा यह चिन्ता लगी रहती कि भूभागोंपर जल्दीसे जल्दी क़ब्ज़ा किया जाय।

सेसिल रोड्ज़ने अपने घनिष्ठ मित्र स्टेड (Stead) को १८९५ में अपने साम्राज्यवाद सम्बन्धी विचार इस प्रकार ज़ाहिर किये थे:—

"कल मैं लंडनके ईस्ट एण्ड (मज़दूरोंका मुहल्ला) में बेकारोंकी एक मीटिंगमें गया था। मैंने वहाँ बड़े गरमागरम व्याख्यान सुने जिनमें 'रोटी', 'रोटी', 'रोटी' की पुकारके सिवा और कुछ न था। लौटते समय रास्तेमें मैं उस दृश्यपर विचार करने लगा और मुझे साम्राज्यवादके महत्व का पूरा पूरा क़ायल होजाना पड़ा। मैंने जिस विचारको इतने दिनोंसे पाला है वही इस सामाजिक समस्याको हलकर सकता है। अगर ब्रिटेन के ४ करोड़ लोगोंकी ख़ूनी गृहयुद्धसे रक्षा करनी है तो हम औपनिवेशिक-राजनीतिज्ञोंको नये देशोंपर क़ब्ज़ा करना चाहिये। वहाँपर अतिरिक्त (Surplus) आबादी बसाई जा सकेगी और कारख़ानों व खानोंके तैयार किये हुए माल की खपतके लिये बाज़ार भी मिलेगा। मैंने तो हमेशा

ही कहा है कि साम्राज्य पेटका सवाल है। अगर आप गृहयुद्ध नहीं चाहते हैं तो आपको साम्राज्यवादी होना ही पड़ेगा।"

यह १८९५ में करोड़पति, बैंक-अधिपति, सेसिल रोड्ज़ महाशयने फ़रमाया था। यही हज़रत बोअर युद्ध (ऐफ्रिका) के लिये भी, ख़ास तौरसे जिम्मेदार थे। इसने साम्राज्यवादके पक्षमें जो दलील दी है वह बेहूदी और भद्दी है और तत्वकी दृष्टिसे मैस्लव, स्वेडेकम, पोटरेसव, डेविड (Messrs. Maslov, Suedekum, Potresov, David) और रूसी मार्क्सवादके संस्थापक * महोदय और दूसरे लोगोंके सिद्धान्तोंसे ज़रा भी भिन्न नहीं हैं। सेसिलरोड्ज़ कुछ ज़्यादा ही ईमानदार था लेकिन वह अन्ध-देशभक्त-समाजवादी (social-chauvinist) था।

दुनियांके भौमिक बटवारे, और पिछले बीस सालकी तबदीलियोंका ज़्यादासे ज़्यादा सही ख़ाका देनेके ख़यालसे हम स्यूपैनकी उसी पुस्तकसे आंकड़े देंगे। स्यूपैनने १८७६ और १९०० सालोंको लिया है। यह अच्छा ही है कि स्यूपैन ने १८७६ को लिया है क्योंकि ठीक इसी साल, एकाधिकारोंके युगसे पहलेके, योरोपीय पूँजीवादका, विकास पूरा हुआ था। हम भी १८७६ सालको लेंगे। लेकिन १९०० के स्थानपर हम १९१४ लेंगे। और स्यूपैनके आंकड़ोंके बजाय ह्यूब्नेर (Hubner) की "ज्यॉगरेफ़ीकल ऐण्ड स्टैटिस्टीकल टेब्ल्स" (Geographical and Statistical Tables—भूगोल सम्बन्धी और आँकड़ा सम्बन्धी तालिका) से ज़्यादा नये आंकड़े देंगे।

स्यूपैनने सिर्फ़ उपनिवेशोंको लिया है। हम समझते हैं कि दुनियांके बटवारेका पूरा चित्र देनेके विचारसे, पर्शिया, चीन, और टर्की जैसे दूसरे

* प्लेखैनॉव (Plekhanov) से मतलब है।

देशोंके भी संक्षिप्त आंकड़े देना अच्छा होगा। ये देश, उपनिवेश न सही तो अर्ध-उपनिवेश हैं ही या फिर दूसरी तरहसे प्रभावमें हैं। आंकड़े आगे दिये जाते हैं:—

महाशक्तियोंके उपनिवेश

(लाख वर्ग किलोमीटरमें, और लाख आबादीमें)

	उपनिवेश				स्वदेश		कुल	
	१८७६		१९१४		१९१४		१९१४	
	क्षेत्रफल	आबादी	क्षेत्रफल	आबादी	क्षेत्रफल	आबादी	क्षेत्रफल	आबादी
इंगलैंड	२२५	२५१९	३३५	३९३५	३	४६५	३३८	४४००
रूस	१७०	१५९	१७०	३३२	५४	१३६२	२२४	१६९४
फ्रांस	९	६०	१०६	५५५	५	३९६	१११	९५१
जर्मनी	...	...	२९	१२३	५	६४९	३४	७७२
संयुक्त राष्ट्र	...		३	९७	९४	९७०	९७	१०६७
जापान	...	...	३	१९२	४	५३०	७	७२२
६ महा-शक्तियों का जोड़	४०४	२७३८	६४६	५२३४	१६५	४३७२	८११	९६०६
दूसरी शक्तियोंके उपनिवेश (बेल्जियम, हॉलैण्ड वग़ैरा)							९९	४५३
अर्ध-उपनिवेश (पर्शिया, चीन, टर्की)				...			१४५	३६१०
बाक़ी देश	...	...	...	...			२८०	२८९२
पूरी दुनियां	...	...	...	...			१३३५	१६५६१

* १ वर्ग किलोमीटर = $\frac{२५}{६४}$ वर्गमील

इन आंकड़ोंसे बिल्कुल साफ़ है कि १९ वीं शताब्दीके समाप्त होनेपर दुनियाँका पूरा पूरा बटवारा कितनी अच्छी तरह हो चुका था। १८७६ के बाद ६ महाशक्तियोंके उपनिवेशोंका बेहद विस्तार हुआ। क्षेत्रफल ४०० लाख वर्ग किलोमीटरसे बढ़कर ६५० लाख वर्ग किलोमीटर होगया। डेढ़ गुनेसे भी ज़्यादा बढ़ती हुई। यह २५० लाख वर्ग किलोमीटर स्वदेशोंके क्षेत्रफल (१६५ लाख वर्ग किलोमीटर) का डेढ़ गुना हुआ।

१८७६ में तीन शक्तियोंके पास कोई उपनिवेश नहीं था। और चौथी शक्ति फ्रांसके पास भी नहींके बराबर था। १९१४ तक इन चारों शक्तियोंने १४१ लाख वर्ग किलोमीटर उपनिवेशों पर अधिकार कर लिया जिनकी आबादी १० करोड़के लगभग थी। इतना क्षेत्रफल योरपके क्षेत्र फलका ढाई गुना हुआ। उपनिवेशोंके विस्तारकी रफ़्तारमें नबराबरी बिल्कुल साफ़ है। उदाहरणके लिये फ्रांस, जर्मनी और जापानको लीजिये। इनके स्वदेशके क्षेत्रफल और आबादीमें बहुत ज़्यादा फ़र्क नहीं है। अगर इनका मुक़ाबला किया जाय तो हम देखेंगे कि फ्रांसने इतने उपनिवेशों पर अधिकार जमाया कि उनका विस्तार जर्मनी और जापानके सम्मिलित उपनिवेशोंसे तिगुना होता है। बंक-पूँजीके ख़यालसे भी फ्रांस, १८७६ में ही, इन दोनोंसे बहुत आगे बढ़ा हुआ था। शायद वह जर्मनी और जापान मिलाकर दोनोंसे भी कई गुना धनी था। शुद्ध आर्थिक परिस्थियोंके अलावा भौगोलिक और दूसरी परिस्थितियाँ भी औपनिवेशिक विस्तार पर प्रभाव डालती हैं; आर्थिक परिस्थिति भी उनकी सहायता करती है। पिछले बीस तीस वर्षोंमें बिशाल उद्योगोंने दुनियाँको समान बनाने का, विभिन्न देशोंमें आर्थिक परिस्थियों और जीवन-अवस्थाओंको बराबर कर देनेका, कितना ही प्रयत्न क्यों न किया हो लेकिन इस समय भी फ़र्क बना हुआ है। और देशोंकी बात ही क्या इन ६ शक्तियोंमें भी बड़ी बड़ी विभिन्नतायें मौजूद हैं। एक तरफ़ तो हम यह देखते हैं कि नये

पूँजीवादी देश (अमेरिका, जर्मनी, जापान) बड़ी तेज़ीसे उन्नति कर रहे हैं; और दूसरी तरफ़ पुराने पूँजीवादी देशोंकी (फ्रांस, ब्रिटेन) इधर कुछ वर्षोंमें बहुत धीमी रफ़्तार रही है। रूसकी हालत दूसरी ही है। वह आर्थिक दृष्टसे बहुत पिछड़ा हुआ देश है। कहना यों चाहिये कि रूसमें अर्वाचीन पूँजीवादको, पूर्व-पूँजीवादी (pre-capitalistic) सम्बन्धोंने बुरी तरह जालमें जकड़ रखा है और वह आगे नहीं बढ़ रहा है।

हमने ख़ाकेमें महाशक्तियोंके उपनिवेशोंके साथ साथ छोटी शक्तियोंके छोटे उपनिवेश भी दे रखे हैं। यह कहना चाहिये कि अगर औपनिवेशिक 'बटवारा दुबारा' हुआ तो सबसे पहले नज़र इन्हीं पर पड़ेगी। अगर छोटे राज्योंके उपनिवेश क़ायम हैं तो उसकी वजह बहुत कुछ यह है कि महाशक्तियोंके स्वार्थ एक दूसरेके विरोधी पड़ते हैं और उनमें आपसमें तनातनी बनी रहती है जिसकी वजह से वे लूट (नये उपनिवेशों) के बटवारेके बारेमें किसी समझौते पर नहीं पहुँच पातीं। 'अर्ध-औपनिवेशिक' राज्य परिवर्तनके बीचके कालकी अस्थायी शक्लोंके उदाहरण हैं। इस प्रकारकी अस्थायी अवस्थायें सामाजिक या प्राकृतिक सभी क्षेत्रोंमें आया करती हैं। बंक-पूँजीका सभी आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंमें इतना पूरा और गहरा हाथ रहता है कि वह बिल्कुल स्वतन्त्र राज्योंको भी अपने अधीन कर सकती है, और कर ही लेती है। इसकी मिसाले हमें आगे चलकर जल्दी ही मिलेंगी। लेकिन फिर भी यह स्वाभाविक है कि जिन देशोंको अधीन करनेसे उनकी राजनीतिक स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है उन देशोंसे बंक-पूँजीको सबसे ज़्यादा आसानीसे बड़ेसे बड़ा मुनाफ़ा होता है। इस सिलसिलेमें अर्ध-उपनिवेश 'बीचकी अवस्था'के उदाहरण हैं, वे राजनीतिक दृष्टिसे स्वतंत्र होते हुये भी परतंत्र हैं। यह बात समझमें आ सकती है कि, बंक-पूँजीके कालमें, जब कि तमाम बाक़ी दुनियाँका बटवारा हो चुका, इन अर्ध-अधीन देशोंके लिये बड़ी करारी कशमकशका होना लाज़िमी था।

औपनिवेशिक राजनीति काफ़ी पुरानी है, वह पूँजीवादके आरम्भसे भी पहले मौजूद थी। रोमका आधार ग़ुलाम-प्रथा थी, उसने औपनिवेशिक नीतिको भी बर्ता था, और वह भी साम्राज्यवादी राज्य था"। लेकिन अक्सर आम दलीलें देते समय लोग यह भूल जाते हैं, या दबा जाते हैं कि भिन्न भिन्न आर्थिक परिस्थियोंके कारण भिन्न भिन्न सामाजिक रचना हुआ करती है? ये लोग निश्चय ही छिछलेपनका परिचय देते हैं। कभी कभी यह लोग इस तरह भी कहने लगते हैं: "विशाल रोम और विशाल ब्रिटेन"। वे इस बातको नहीं समझते कि पूँजीवादकी आरम्भिक अवस्थाओंमें जो भी औपनिवेशिक नीति थी वह बंक-पूँजीकी औपनिवेशिक नीतिसे तत्वतः बिल्कुल भिन्न थी।

आजकलके बिल्कुल ताज़ा पूँजीवादकी बुनियादी ख़ासियत यह है कि बड़े बड़े उद्योगपतियोंके एकाधिकारी संघोंकी हुकूमत है। ये एकाधिकार बिल्कुल स्थायी तब होते हैं जब कि कच्चे मालके सभी साधनोंपर एक ही समूहका अधिकार हो जाता है। हम यह देख चुके हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवादी संघ कितने जोशके साथ पूरा पूरा प्रयत्न इस बातका करते हैं कि उनके प्रतियोगी उनका मुक़ाबला न कर सकें। इसीलिए वे खानें और तेलके क्षेत्र वग़ैरा सबके सब ख़रीद लेते हैं। उपनिवेश ही एक ऐसे साधन हैं जिनकी वजहसे एकाधिकार बिल्कुल सुरक्षित होजाते हैं; उनको, प्रतियोगियोंके ख़िलाफ़ युद्ध करनेसे जितने भी ख़तरे हो सकते हैं उनका कोई भी भय नहीं रहता। साथ ही उनको इस बातका भी डर नहीं रहता कि शत्रु क़ानून द्वारा राज्यका एकाधिकार क़ायम करके उनको नुक़सान पहुँचा सकता है। ज्यों ज्यों पूँजीवादकी उन्नति होती जाती है त्यों त्यों कच्चे मालकी आवश्यकता बराबर बढ़ती जाती है। और जितनी ही ज़्यादा गहरी प्रतियोगिता होती जाती और दुनियाँ भरमें कच्चे मालके

लिये जितनी ही ज़्यादा दौड़-धूप चलती है, उपनिवेशोंके लिये संघर्ष भी उतना ही भयंकर होता जाता है।

शील्डर (Schilder) लिखता है:—

"यह भी कहा जा सकता है कि यह सम्भव है कि कुछ ही दिनोंमें, शहरोंमें, उद्योगोंमें काम करनेवालोंकी आबादीका बढ़ना रुक जाय। इसकी वजह भोजनकी कमी न होगी बल्कि कच्चे मालकी कमी होगी। यह हो सकता है कि बहुतसे लोगोंको यह बात असंगत मालूम पड़े।"

उदाहरणके लिये, शहतीरोंकी कमी बराबर होती जारही है, और क़ीमत चढ़ रही है। इसी प्रकार चमड़े और कपड़ेके उद्योगके कच्चे मालकी भी कमी हो रही है।

आगे चलकर शील्डर लिखता है:—

"सामान बनानेवालोंके संघ इस बातकी कोशिश कर रहे हैं कि नियमोंमें, उद्योग और खेतीमें साम्य स्थापित होजाय; यानी खेतीकी इतनी उन्नति होजाय कि उद्योगके लिये कच्चा माल बराबर मिल सके। उदाहरणके लिये, इसी उद्देश्यसे १९०४ में मुख्य मुख्य उद्योगी देशोंमें इण्टरनेशनल फ़िडरेशन ऑव कॉटन स्पिनर्स एसोसियेशन (International Federation of Cotton Spinners Association) की स्थापना हुई थी, और १९१० में योरोपियन फ़िडरेशन ऑव फ़्लैक्स स्पिनर्स (European Fedaretion of Flax Spinners) इस तरीक़े पर बना है"।

पूँजीजीवी सुधारवादी, ख़ास तौरसे, कॉट्स्कीके आजकलके अनुयायी इस तरहके वाक़यातके महत्वको कम करनेकी कोशिश किया करते हैं। वे इस प्रकारकी दलीलें दिया करते हैं कि बिना किसी महँगी और ख़तरनाक औपनिवेशिक नीतिके ही खुले बाज़ारमें कच्चा माल मिल सकेगा; खेतीमें 'सिर्फ़' आम सुधार कर देनेसे कच्चे मालकी उपज ख़ूब बढ़ायी जा

सकती है और उसका काफ़ी मात्रामें मिलना सम्भव हो सकेगा। लेकिन इस तरहकी दलीलें देना तो साम्राज्यवादका नीचतापूर्वक समर्थन करना और उसकी तारीफ़ करना है। क्योंकि दलीलें देते वक्त ये लोग आजकलके पूँजीवादकी सबसे ख़ास चीज़, एकाधिकारको बिल्कुल भूल जाया करते हैं। स्वतन्त्र बाज़ार अब पुराने ज़मानेकी बातें होती जा रहीं हैं। एकाधिकारी सिण्डिकेट और ट्रस्ट आये दिन उनमें काटछाँट कर रहे हैं। खेतीका 'सिर्फ़' सुधार हवा होरहा है और उसका स्थान, जनताकी अवस्था सुधारना, मज़दूरी बढ़ाना, मुनाफ़ेमें कमी करना, आदि बड़ी बड़ी बातें ले रहीं हैं। लेकिन सच्ची बात तो यह है कि ऐसे ट्रस्ट कहीं भी नहीं हैं जो उपनिवेशोंको हड़पनेका काम छोड़कर जनताकी अवस्था सुधारनेमें दिलचस्पी लें; अगर वे हैं भी तो सिर्फ़ उबलनेवाले सुधारकोंके दिमाग़में।

इतना ही नहीं कि कच्चे मालके जाने हुये साधनों पर ही क़ब्ज़ा किया जाता हो, बल्कि उन साधनोंको भी नहीं छोड़ा जाता जिनसे सिर्फ़ आशा रहती है। कारण यह कि आजकल साधन-विधिकी उन्नति ख़ूब तेज़ीसे हो रही है। कौन कह सकता है कि आज जो ज़मीन बेकार पड़ी हुई है वह कल, नये नये तरीक़ोंसे, ढेरों पूँजी लगाकर, उपयोगी नहीं बनाई जा सकती? कोई भी बड़ा बैंक इस कामके लिये इंजिनियरों और कृषि-विशारदोंका एक दलका दल भेज सकता है। यही बात खानों और कच्चामाल पैदा करने व उपयोगी बनाने वग़ैराके सम्बन्धमें भी है। इसीलिये बंक-पूँजीके लिये अपने आर्थिक व साधारण भूभागका विस्तार करना ज़रूरी हो जाता है। हम देख चुके हैं कि बैंक अपने आयन्दाके (वर्तमान नहीं) मुनाफ़ेका हिसाब लगाकर, और एकाधिकारसे आयन्दा होनेवाले फायदोंका तख़मीना करके, अपनी सम्पत्तिका दुगना तिगुना दाम लगाकर, ख़ूब बढ़ाकर पूँजी दिखाते हैं। इसी तरहसे बंक पूँजी ज़्यादासे ज़्यादा भूभाग पर क़ब्ज़ा करनेकी कोशिश करती है, चाहे फिर वह भूभाग

किसी भी तरहका क्यों न हो, और किसी भी प्रकारसे क्यों न मिल सके। भूभागसे आयन्दा क्या क्या हो सकता है यही देखना काफ़ी है। डर यह लगा रहता है कि बचे हुये भूभागका यदि कोई भी टुकड़ा मिल सकता हो तो कहीं निकल न जाय, या अगर कहीं दुबारा बटवारा हो रहा है तो कहीं दूसरे ही लोग सब न हड़प लें।

ब्रिटिश पूँजीपति अपने उपनिवेश, इजिप्टमें रूईकी पैदावार बढ़ानेका खूब प्रयत्न कर रहे हैं। (१९०४ में २३ लाख हेक्टार* ज़मीनमें खेती होती थी, इसमेंसे ६ लाख हेक्टार या चौथाईसे अधिक में कपासकी खेती थी)। यही रूस भी अपने उपनिवेश टर्किस्तानमें कर रहा है। हरएक देश इसी फ़िक्रमें है, इसलिये, कि वह समझता है कि वह इस प्रकारसे विदेशी प्रतियोगियों को आसानी से परास्त कर सकेगा, और कच्चे मालपर एकाधिकार क़ायम कर सकेगा। सभी यह समझते हैं कि इस तरीक़ेसे कपड़े के उद्योग का ऐसा ट्रस्ट बनाया जा सकता है, जिसमें किफ़ायत ज़्यादा और मुनाफ़ा खूब हो, क्योंकि उस हालतमें उत्पादन 'सम्मिलित' (combined) होगा और उत्पादनकी सभी मंज़िलोंका केन्द्रीकरण कर दिया जायगा।

पूँजी बाहर भेजनेकी आवश्यकता भी उपनिवेशों पर क़ब्ज़ा करने की प्रगति को बढ़ाती है, क्योंकि उपनिवेशोंके बाज़ारसे एकाधिकारके तरीक़ोंसे, प्रतियोगीको निकाल बाहर करना, आर्डरों को सुरक्षित कर लेना और आवश्यक सम्बन्धोंको मज़बूत बनाये रखना यह सब ज़्यादा आसानीसे हो सकता है।

बैंक-पूँजीके आधार पर, राजनीति, विचार शास्त्र (ideology) इत्यादि बहुतसी ऐसी संस्थायें खड़ी हो जाती हैं जिनका आर्थिक पहलूसे कोई सम्बन्ध

* एक हेक्टार २½ = एकड़के लगभग।

नहीं होता। लेकिन वे सब भी उपनिवेशोंके विस्तारको उत्तेजना ही देती हैं। हिल्फ़र्डिंगने बिल्कुल ठीक कहा है कि "बंक-पूँजी आज़ादी नहीं चाहती, वह हुकूमत चाहती है"। एक फ्रेंच पूँजीजीवी लेखक वॉल (Wahl) ने सेसिल रोड्ज़के विचारोंको कुछ परिष्कृत किया है। वह लिखता है कि आधुनिक औपनिवेशिक नीतिके जो आर्थिक कारण हैं उनके साथ सामाजिक कारणोंको भी मिला देना चाहिये। वह कहता है :—

"जीवनकी कठिनाइयाँ बढ़ रही हैं। मुसीबतें मज़दूरों पर ही नहीं बल्कि मध्य श्रेणीके लोगों पर भी बढ़ती जा रही हैं। इसीलिये पुरानी सभ्यताके सभी देशोंमें घृणा, असंतोष, और क्रोध ख़ूब फैल रहे हैं। सार्वजनिक व्यवस्थाके लिये ख़तरा बढ़ रहा है। जो शक्ति वर्गिक धाराओं (class channels) में बह रही है उसको किसी काममें लगाना होगा। अगर हम चाहते हैं कि हमारे घरमें धड़ाका न फूटे तो उसके लिये विदेशों में रास्ता खोजना होगा।'

हम पूँजीवादी साम्राज्यवादके कालकी औपनिवेशिक नीतिका ज़िक्र कर रहे हैं। इसलिये यह समझ लेना आवश्यक है कि बंकपूँजी और उसके साथ चलनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय नीतियां, राज्योंकी पराधीनताकी कई तरहकी बीच शक्लोंको जन्म देती हैं (उपनिवेशों या अर्ध-उपनिवेशों की अधीनताके, बीचके कालमें तरह-तरह रूप होते हैं)। और उन्हीं (बंकपूंजी और अन्तराष्ट्रीय नीतियों) के कारण महाशक्तियोंमें दुनियांके आर्थिक व राजनीतिक बटवारेके लिये संघर्ष चला करता है। इस कालकी ख़ास बात यह नहीं है कि देशोंका सिर्फ़ दो प्रधान वर्गोंमें विभाजन होगया हो—उपनिवेश और उनके मालिक। बल्कि उनके अलावा कई प्रकारके पराधीन देश भी होगये हैं, जो देखनेमें तो राजनीतिक दृष्टिसे स्वतन्त्र मालूम पड़ते हैं लेकिन बंक-पूंजी और कूटनीतिके जालमें जकड़े हुये हैं। हमने एक शक्ल—

अर्ध-उपनिवेश—का ज़िक्र किया भी है। एक दूसरी तरहकी शक्लका उदाहरण आर्जेण्टिना है।

शूल्ट्से-गायफ़नीट्सने अपनी ब्रिटिश साम्राज्यवाद सम्बन्धी पुस्तकमें लिखा है कि "दक्षिणी अमेरिका, विशेषतः आर्जेण्टिना, बंक-पूंजीकी दृष्टिसे लंडनपर इतना आश्रित है कि उसे ब्रिटिश व्यवसायिक उपनिवेश कहना चाहिये।" ब्यूनॉस एरीज़ (Buenos Aiers) में रहनेवाले ऑस्ट्रो-हंगैरियन राजदूतकी एक रिपोर्टके आधारपर, शील्डरने तख़मीना लगाया है कि १९०९ में, आर्जेण्टिनामें, ८½ अरब फ्रांककी ब्रिटिश पूंजी लगी हुई थी। यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि ब्रिटेनकी बंक-पूंजी (और उसकी सच्ची 'सहचरी' कूटनीति), आर्जेण्टिनाके पूंजीजीवियों और उसके सम्पूर्ण आर्थिक व राजनीतिक जीवनके प्रमुख विभागोंके साथ कैसे कैसे मज़बूत बन्धनोंसे बंधी होगी।

पोर्च्युगालका उदाहरण इससे थोड़ा भिन्न है। वहाँ राजनीतिक स्वतन्त्रता तो है लेकिन बंक-पूंजी और कूटनीतिकी पराधीनता भी है। पोर्च्युगाल स्वतन्त्र राज्य है। लेकिन वाक़या यह है कि स्पेनके उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध (War of the Spanish Succession, १७००–१७१४,) के ज़मानेसे वह ब्रिटेनके अधीन 'रक्षित राज्य' (protectorate) रहा है। ब्रिटेन उसकी और उसके उपनिवेशोंकी रक्षा इसलिये कर रहा है कि अगर उसके (ब्रिटेनके) विरोधी स्पेन और फ्रांससे युद्ध हो तो वह अपने (ब्रिटेनके) स्थानोंको सुरक्षित रख सके। बदलेमें ब्रिटेनको व्यवसायिक सुविधायें, और सामान-निर्यातकी ज़्यादा अच्छी शर्तें हासिल हैं। और सबसे बड़ी बात यह कि ब्रिटेनके लिये पोर्च्युगाल और उसके उपनिवेशोंमें पूंजी भेजनेकी सहूलियतें हैं और साथ ही वह उसके बन्दरगाहों, टापुओं और तार वग़ैराका उचित इस्तेमाल भी कर सकता है।

इस प्रकारके सम्बन्ध बड़े और छोटे राज्योंमें हमेशा ही रहे हैं।

लेकिन पूंजीवादी साम्राज्यवादके कालमें वे आम होगये हैं, और 'दुनियां के बटवारे'के चक्रके अंग बनगये हैं। बंक-पूंजीके कारबारमें इन सम्बन्धों की ख़ासी सहायता रहती है।

दुनियाँके बटवारेकी समस्याकी पूरी पूरी छानबीन करनेके ख़यालसे हमें निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना होगा: यह समस्या साधारण नहीं है। स्पनिश-अमेरिकन युद्धके बाद अमेरिकन साहित्यमें खुले और निश्चित ढंग पर इस प्रश्नको उठाया गया था। इंग्लिश साहित्यमें १९ वीं शताब्दीके अन्त और २० वींके शुरूमें, बोअर युद्धकी समाप्ति पर, इस पर काफ़ी प्रकाश डाला गया था। जर्मन साहित्य भी, जो हमेशा ही ब्रिटिश साम्राज्यवादसे ईर्ष्या करता है, उससे अछूता न बचा बल्कि उसमें तो इस समस्याको विधिपूर्वक समझनेका प्रयत्न किया गया है। इतना ही नहीं बल्कि फ्रांसके पूँजीजीवी साहित्यमें भी, पूँजीजीवियोंके लिये जिस हद तक सम्भव था, उतने उदार और निश्चित तरीक़ेसे इस प्रश्न पर विचार किया गया है। इस सिलसिलेमें हम इतिहास वेत्ता ड्रिऔलकी "पोलिटिकल ऐण्ड सोश्यल प्रॉब्लेम्स" (Political and Social Problems–Driault—राजनीतिक और सामाजिक समस्यायें) नामक पुस्तकसे अवतरण देते हैं। 'महाशक्तियाँ और दुनियाका बटवारा' शीर्षक अध्यायमें उसने लिखा है:—

"पिछले कुछ वर्षोंमें, पृथ्वी पर जितने भी स्वतन्त्र भूभाग थे, उनमेंसे चीनको छोड़कर, बाक़ी सभी पर योरप और उत्तरी अमेरिकाकी शक्तियोंने क़ब्ज़ा कर लिया है। इस सिलसिलेमें बहुतसे झगड़े हुये हैं और कई भूभाग कभी इसके और कभी उसके अधिकारमें जाते रहे हैं। निकट भविष्यमें और भी भयानक झगड़ोंका ख़तरा है। अगली शताब्दीकी (२० वीं) सबसे ख़ास बात यह होनेवाली है कि दुनियाँकी खूब लूट होगी। जल्दबाज़ी लाज़िमी है, क्योंकि जिन राष्ट्रोंने लापरवाहीकी है,

उनको यह ख़तरा है कि उनका हिस्सा हमेशाके लिये मारा न जाय और वे पृथ्वीकी लूटमें शरीक न हो सकें। यही कारण है कि योरप और अमेरिकाको कुछ दिनोंसे औपनिवेशिक विस्तारका बुख़ार चढ़ा हुआ है और उनके सर पर 'साम्राज्यवाद'की गर्मी सवार है। १९ वीं शताब्दीके अन्तकी यही सबसे ख़ास और मार्केकी ख़ासियत है।"

इसके बाद वह फिर लिखता है:—

"दुनियांके बटवारे, और दुनियाँके बड़े बड़े बाज़ारों व ख़ज़ानोंके लिये सरगर्मी और दौड़ धूपकी बदौलत इस १९ वीं शताब्दीमें योरपके कुछ राज्योंके साम्राज्य स्थापित होगये हैं और उनकी शक्ति बहुत बढ़ गयी है। लेकिन इन साम्राज्योंकी शक्तिका, उनके योरपके राज्योंकी शक्तिके साथ, कोई अनुपात नहीं बैठता। योरपकी बड़ी बड़ी शक्तियाँ, जो उसके भाग्यका निपटारा करती हैं, बाक़ी दुनियाँ पर उतना ही प्रभाव नहीं रखतीं। औपनिवेशिक शक्ति—जिसके अर्थ होते हैं अगणित धनराशिकी आशा—योरपकी शक्तियों पर प्रभाव डालेगी और उनकी ताक़तको कमोवेश कर देगी। इसलिये औपनिवेशिक समस्या—जिसे आप साम्राज्यवाद कह सकते हैं—योरपकी शक्तियोंमें बराबर परिवर्तन करती रहेगी। वैसे भी उसने योरपकी राजनैतिक अवस्थाको तो अभी भी बदल डाला है।"

सातवाँ अध्याय

साम्राज्यवाद : पूँजीवादकी एक ख़ास मंज़िल

अब हमें यह देखना होगा कि साम्राज्यवादपर अब तक जितना विचार किया जा चुका है, उससे हम किन नतीज़ों पर पहुँचते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि साम्राज्यवादका जन्म, आम पूँजीवादकी बुनियादी ख़ासियतोंसे, उनके सीधे सिलसिलेमें ही हुआ है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि साधारण पूँजीवादकी बुनियादी ख़ासियतोंका विकास होते होते साम्राज्यवादका प्रादुर्भाव हो गया। लेकिन पूँजीवाद, अपनी तरक्क़ीकी एक ख़ास और बहुत ऊँची मंज़िल पर ही पहुँचकर पूँजीवादी साम्राज्यवाद बना; यह उस वक्त जब कि उसकी कुछ बुनियादी ख़ासियतोंने मुख़ालिफ़ ख़ासियतोंकी शक्ल इख़्तियार करना शुरू कर दिया और ऐसी सूरतें पैदा होने लगीं जो कि इस बातको ज़ाहिर करती थीं कि पूंजीवादमें परिवर्त्तन हो रहा है और वह एक ज़्यादा ऊँची सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था (socio-economic system) की ओर जारहा है। इस सिलसिलेमें, मुक्त प्रतियोगिताके स्थानपर पूंजीवादी एकाधिकारोंका आजाना, आर्थिक दृष्टिसे, बुनियादी हैसियत रखता है। एकाधिकार मुक्त प्रतियोगिताका बिल्कुल मुख़ालिफ़ है। लेकिन हम देख चुके हैं कि ख़ुद मुक्त प्रतियोगिता हमारे सामने ही एकाधिकारकी शक्लमें तबदील

होगई है; पहले उसने छोटे पैमानेके उत्पादनका ख़ात्मा करके बड़े पैमानेके उत्पादनको पैदा किया, फिर बड़े पैमानेके उत्पादनकी जगहपर ज़्यादा बड़े पैमानेके उत्पादनको रायज किया, और अन्तमें उत्पादन और पूंजीका वह केन्द्रीकरण किया कि उसका नतीजा, एकाधिकार मौजूद है। इसवक्त एक तरफ़ कार्टेल, सिण्डिकेट और ट्रस्ट हैं, और दूसरी तरफ अरबों पूंजीके दर्जन डेढ़ दर्जन बड़े बड़े बैंक हैं, जो उनसे बराबर मिलते जारहे हैं। लेकिन मुक्त प्रतियोगिता बिल्कुल ख़त्म नहीं हुई है बल्कि एकाधिकारोंके साथ साथ उसका भी अस्तित्व है। और यही वजह है कि गहरे गहरे विद्वेष, बड़े बड़े संघर्ष और झगड़े चलते रहते हैं। पूंजीवाद तरक्की कर रहा है, वह एक उन्नत व्यवस्थाकी ओर जारहा है। एकाधिकार बस उसकी एक बीचकी मंज़िल है।

अगर साम्राज्यवादकी छोटीसे छोटी परिभाषा देनी हो तो हम यह कहेंगे कि साम्राज्यवाद, पूँजीवादकी एकाधिकारवाली मंज़िल है। इस परिभाषाकी ख़ूबी यह है कि इसमें साम्राज्यवादके तत्वका समावेश हो जाता है। क्योंकि एक तरफ़ तो बंक पूँजी है, जोकि चन्द सबसे बड़े बंकोंकी पूँजी, और उद्योगपतियोंके एकाधिकारी संघोंकी पूँजीके एक हो जानेका फल है। और दूसरी तरफ़ दुनियाँका बटवारा भी क्या है—यही कि शुरू की साधारण औपनिवेशिक नीति भूभागोंपर अपना विस्तार बे रोकटोक करते करते, ऐसी औपनिवेशिक नीति बन गई है जिसने कि दुनियांके भागों पर एकाधिकारी कब्ज़ा कर रखा है और फल यह है कि दुनियांका पूरा पूरा बटवारा हो चुका है।

यह तो सही, कि बहुत संक्षिप्त परिभाषामें सहूलियत रहती है, इसलिये कि उसमें मुख्य तत्वोंका समावेश हो जाता है। लेकिन फिर भी वह नाकाफ़ी होती है क्योंकि उसमेंसे, जिस वस्तुकी वह परिभाषा होती है, उसकी बुनियादी खासियतोंको खोजकर निकालना पड़ता है।

इसलिये, यह ख़याल रखते हुये कि सभी परिभाषायें ख़ास शर्तोंके साथ कमोबेश उपयोगी होती हैं और उनमें किसी प्रौढ़ वस्तुके सभी पहलुओंका समावेश नहीं हो सकता, हमको साम्राज्यवादकी एक ऐसी परिभाषा देनी होगी जिसमें निम्नलिखित पांच ख़ासियतें मौजूद हों :

१. उत्पादन और पूंजीके केन्द्रीकरणकी इस ऊँचे दर्जे तक तरक़्क़ी कि ऐसे एकाधिकार क़ायम होजाँय जिनका आर्थिक जीवनमें पूरा पूरा हाथ हो।

२. बैंकोंकी पूंजी और औद्योगिक पूँजीका मिल जाना, और 'बंक-पूंजी' (finance capital) का प्रादुर्भाव, जिसके आधारपर 'बंक-पूंजी' के व्यवस्थापकोंका गुटतन्त्र क़ायम होजाना।

३. पूंजीके निर्यातका विशेषरूपसे बहुत अधिक महत्व बढ़ जाना।

४. पूंजीपतियोंके अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकारी संघोंका संगठन और उनके दर्म्यान दुनियांका बटवारा।

५. पूंजीवादी महाशक्तियोंके दर्म्यान भूभागोंका पूरा-पूरा बटवारा।

इसलिये हमें यह कहना चाहिये कि :—साम्राज्यवाद, पूँजीवादकी तरक़्क़ीकी वह मंज़िल है, जहाँ पर कि पहुँच कर, बंक-पूँजी और एकाधिकारोंकी हुकूमत क़ायम होगई है; जिसमें कि पूँजीके निर्यातने ख़ास महत्व प्राप्त कर लिया है; जिसमें कि अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्टोंके दर्म्यान दुनियाँका बटवारा शुरू होगया है; और जिसमें कि पूँजीवादी महाशक्तियोंके (Great Powers) दर्म्यान समस्त भूभागोंका पूरा पूरा बटवारा खत्म हो चुका है।

इस परिभाषामें हमने बुनियादी यानी शुद्ध आर्थिक पहलुओंका ही ख़याल किया है, और वह उन्हीं तक सीमित है। पर इन पहलुओंके साथ, जब हम यह भी सामने रखेंगे, कि ऐतिहासिक दृष्टिसे आम पूँजीवादके मुक़ाबलेमें, पूँजीवादकी इस मंज़िल (साम्राज्यवाद) का

कौनसा स्थान है, या जब हम साम्राज्यवाद और मज़दूर आन्दोलनकी दो मौलिक धाराओंके सम्बन्धोंका ख़्याल करेंगे, तो हमको साम्राज्यवाद-की दूसरी परिभाषा करनी होगी। लेकिन इस वक़्त समझनेकी बात यह है कि साम्राज्यवाद, जब कि हम उसे इस अर्थमें लेते हैं, पूँजीवादकी तरक़्क़ीकी एक ख़ास मंज़िल है। ताज़ासे ताज़ा पूँजीवादी व्यवस्थाकी घटनायें इतनी निर्विवाद और पक्की हैं कि पूँजीवादी अर्थशास्त्री भी उन्हें माननेके लिये मजबूर हो जाते हैं। इसीलिये, पाठकोंको साम्राज्यवादका अच्छासे अच्छा ज्ञान करानेके ख़यालसे हमने उन्हीं लोगोंके ज़्यादासे ज़्यादा अवतरण देनेकी, ख़ास तौरसे कोशिश की है। और इसी ख़यालसे हमने विस्तृत आंकड़े भी दिये हैं, जिनसे हमें पता चलता है कि बैंकों की पूँजी किस हद तक अपना विस्तार और तरक़्क़ी कर चुकी है। इसके साथ हम यह भी देखते हैं कि मात्रा या परिमाण (Quantity) में परिवर्तन होते होते गुणों (Quality) में भी परिवर्तन हो गया है। मतलब यह कि पूंजीवाद अपनी मात्रामें तबदीली करते करते यानी अपने विस्तार के सिलसिलेमें साम्राज्यवाद बन गया है, जो दूसरे ही गुण, दूसरी ही ख़ासियतें रखता है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि प्रकृति अथवा समाजकी सभी सीमायें परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं। और बराबर बदलती रहती हैं। इसलिये ऐसी बातोंकी बहस करना, कि किस वर्ष या किस दशकमें साम्राज्यवाद निश्चित रूपसे क़ायम हुआ, बिल्कुल बेहूदा होगा।

लेकिन जब हम साम्राज्यवादकी परिभाषा करने लगते हैं तो हमें पहले ही कॉट्स्कीके साथ बहस-मुबाहिसे में पड़ना पड़ता है। क्योंकि वही द्वितीय इण्टरनेशनलके युग (१८८९–१९१४) का प्रधान मार्क्सवादी सिद्धान्त प्रवर्तक है।

१९१५ में, और नवम्बर १९१४ में भी, कॉस्टकीने हमारी परिभाषा

के मौलिक विचारों पर ज़ोरदार हमला किया था। वह घोषित करता था कि: साम्राज्यवादको एक 'अवस्था' ('phase') या आर्थिक मंज़िल नहीं समझना चाहिये, बल्कि वह तो एक नीति है; वह एक निश्चित नीति है, जिसे बंक पूँजीने 'आगे बढ़ाया' (preferred); साम्राज्यवादको और 'मौजूदा पूँजीवाद' ('contemporary capitalism') को एक नहीं कहा जा सकता; अगर साम्राज्यवादका मतलब, कार्टेल, संरक्षणवाद (protectionism), बंक पूँजीके व्यवस्थापकोंका राज्य और औपनिवेशिक नीति इत्यादि मौजूदा पूँजीवादके सब अंगोंसे हो, तो यह सवाल, कि क्या साम्राज्यवाद पूँजीवादके लिये आवश्यक है, बेहूदा पिष्टपेषण (rankest tautology) हो जाता है, क्योंकि उस हालतमें साम्राज्यवाद स्वभावतः ही पूँजीवादके लिये अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन कॉटस्कीके विचारोंको ज़ाहिर करनेके लिये उसीकी परिभाषा देना बिल्कुल सही होगा। यह तै है कि उसकी परिभाषा हमारे ही विचारों पर सीधा आक्रमण करती है। (क्योंकि जर्मन मार्क्सवादी इस प्रकारके विचारोंका प्रतिपादन करते रहे हैं, और वह बहुत दिनोंसे जानता है कि उन लोगोंके एतराज़, मार्क्सवादकी एक ख़ास प्रवृत्तिके ख़िलाफ है)

काट्स्की यह परिभाषा देता है:—

"साम्राज्यवाद, समुन्नत औद्योगिक पूँजीवादसे पैदा हुआ है। औद्योगिक पूंजीवादी राष्ट्रोंका, ज़्यादा ज़्यादा बड़े, कृषिप्रधान भूभागोंको, जिनमें कोई भी जाति क्यों न बसी हो, अपने राज्यके अधीन करनेका प्रयत्न—यही साम्राज्यवाद है।"

लेकिन यह परिभाषा बिलकुल बेकार है, क्योंकि वह एकतरफ़ा है यानी ऊटपटांग तरीक़ेसे सिर्फ़ राष्ट्रीय सवालको ही सामने रखती है (हालां कि हम यह मानते हैं कि राष्ट्रीय सवाल स्वयम् बड़े महत्वका है

और साम्राज्यवादके सम्बन्धमें भी उसकी उपयोगिता है)। साम्राज्यवादके सवालको, दूसरे देशोंको अधीन करनेवाले देशोंकी औद्योगिक पूँजीसे ही सिर्फ़ जोड़ना वाक़ईमें ऊटपटांग और बिल्कुल ग़लत है। साथ ही कृषि-प्रधान भूभागोंपर ज़ोर देना भी उतना ही बेहूदा है।

साम्राज्यवाद दूसरे देशोंको अधीन करनेका प्रयत्न है—यह कॉट्स्कीकी परिभाषाका राजनीतिक अंश है। यह है तो ठीक लेकिन बिल्कुल अपूर्ण है क्योंकि राजनीतिक दृष्टिसे साम्राज्यवाद, आमतौरसे, हिंसा और प्रतिक्रियाकी ओर बढ़ता है। लेकिन इस सिलसिलेमें हमें दिलचस्पी तो इस सवालके आर्थिक पहलूसे है जिसे कॉटस्कीने ख़ुद ही अपनी परिभाषा में जगह दी है। कॉट्स्कीकी परिभाषाकी ग़लतियाँ तो बिलकुल साफ़ हैं। साम्राज्यवादकी ख़ासियत औद्योगिक पूँजी नहीं है, बल्कि बंक-पूँजी है। हम जानते हैं कि फ्रांसमें १८८० के बाद औद्योगिक पूँजीका ह्रास हुआ और बंक-पूंजीकी बेतहाशा तेज़ीसे तरक्क़ी हुई जिसकी वजहसे उसकी औपनिवेशिक नीति गहरी होती चली गई। संयोग तो इसे नहीं कहा जा सकता। सच्ची बात तो यह है कि साम्राज्यवादकी ख़ासियत, सिर्फ़ कृषिप्रधान देशोंपर ही नहीं बल्कि उद्योगप्रधान देशोंपर भी कब्ज़ा करनेके लिये प्रयत्न करना है। (हमारे सामने बेल्जियमको हड़पनेकी जर्मनीकी लिप्सा, और लॉरेनको हथियानेकी फ्रांसकी तीव्र इच्छाके उदाहरण मौजूद हैं)। तो कहना यह चाहिये कि साम्राज्यवाद किसी भी प्रकारके दूसरे देशको हड़पनेकी प्रवृत्ति है। इसका कारण एक तो यह है कि इस समय दुनियाँका बटवारा हो चुका है, इसलिए पुनर्विभाजनका अवसर आनेपर, किसी तरहके भी भूभागको हथियाना आवश्यक होजाता है। दूसरा कारण यह है कि राज्यविस्तार और भूभागोंपर क़ब्ज़ा करनेके लिये महाशक्तियोंके दर्म्यान तनातनीका होना साम्राज्यवादका आवश्यक अंग है, इसलिए दूसरे देशोंपर क़ब्ज़ा करनेमें अपने सीधे फ़ायदेका

इतना ख़याल नहीं किया जाता है जितना कि प्रतिपक्षीको कमज़ोर करने और उसकी सत्ताकी जड़ खोदनेका ख़याल रहता है। उदाहरणके लिये, जर्मनी इङ्गलैण्डके मुक़ाबलेके लिये फ़ौजी अड्डा बनानेके ख़यालसे, बेल्जियमको चाहता है और इङ्गलैण्ड जर्मनीके मुक़ाबलेके लिये बग़दादको हथियाना चाहता है।"[१८]

कॉट्स्की बारबार, इस बातपर ज़ोर देता है कि 'साम्राज्यवाद शब्दके मेरे शुद्ध राजनीतिक अर्थको अंग्रेज़ोंने पुष्ट कर दिया है।' इसीलिये हम हॉब्सन (अंग्रेज) की १९०२ में प्रकाशित पुस्तक 'साम्राज्यवाद' (Imperialism) को लेते हैं। उसमें वह लिखता है:—

नवीन साम्राज्यवाद पुराने साम्राज्यवादसे भिन्न है। एक भेद यह है कि पुराने साम्राज्यवादसे मतलब किसी एक उन्नतशील साम्राज्यकी महत्वाकांक्षासे होता था, और आजकल उसके स्थानमें, राज्यविस्तार और व्यवसायिक मुनाफ़ेकी लिप्सासे प्रेरित परस्पर प्रतियोगी साम्राज्योंकी नीति और व्यवहार है। दूसरा भेद यह है कि आजकल व्यापारिक कार-बारोंपर बंकपूँजीका आधिपत्य है।"

हॉब्सनने यह ठीक ही किया कि अर्वाचीन पूँजीवादकी दो, 'ऐतिहासिक दृष्टिसे ठोस' ख़ासियतोंको ख़यालमें रखा है: (१) कई साम्राज्योंकी पर-स्पर प्रतियोगिता, (२) व्यापारीपर बंक पूँजीके व्यवस्थापकका आधिपत्य। यदि साम्राज्यवादके अन्दर, औद्योगिक देशका, कृषि-प्रधान देशपर क़ब्ज़ा करनेका प्रश्न, मुख्य होता तो उस हालतमें व्यापारीका आधिपत्य होना चाहिये था। कॉट्स्की तो अपनी परिभाषासे, ऐतिहासिक सच्चाईको भी मज़ाककी चीज़ बना देता है। हम तो यह देखते हैं कि वह आम अंग्रेज़ों की दुहाई देनेमें सरासर भूल करता है। हाँ अगर उसका मतलब उन अंग्रेजोंसे हो जो बेहूदा साम्राज्यवादी हैं या जिन्होंने साम्राज्यवादकी

हिमायत की क़सम खा रखी है, तो हमें कोई एतराज़ नहीं है। यह बिल्कुल साफ़ है कि कॉट्स्की मार्क्सवादके समर्थनका दावा तो करता है, लेकिन वाक़या यह है कि वह उदार–समाजवादी (social-liberal) हॉब्सनसे भी पीछे जाता है।

लेकिन इतना ही नहीं है कि कॉट्स्कीकी परिभाषा सिर्फ ग़लत और मार्क्सवादके ख़िलाफ़ हो। बल्कि वह उस सम्पूर्ण विचार पद्धतिका आधार है, जो कि मार्क्सवादके सिद्धान्त और व्यवहारके ख़िलाफ़ चल रही हैं। कॉट्स्की दलील देता है कि: पूँजीवादकी ताज़ा मंज़िलको साम्राज्यवाद कहना चाहिये या कि बंक-पूँजीकी मंज़िल। लेकिन यह तो शब्दोंकी बहस है और इसमें कोई सार नहीं रखा है। कुछ भी कह लीजिये उससे कोई फ़र्क नहीं होता जाता। ख़ास बात तो यह है कि कॉट्स्की साम्राज्यवादकी नीतिको उसके आर्थिक क्षेत्रसे अलग कर देता है, कहता है कि उपनिवेश हथियानेकी नीतिको बंक पूँजीने "आगे बढ़ाया" है।और उसके (साम्राज्यवादकी नीति) स्थानमें दूसरी नीति (उपनिवेशों पर कब्ज़ा करनेको) को रख देता है; जिसके लिये वह यह दलील देता है कि वह बंक-पूँजीके आधार पर सम्भव हो सकती है। इससे तो यह सिद्ध होता है कि आर्थिक एकाधिकार ऐसे तरीकोंके साथ चल सकते हैं जो राजनीतिक क्षेत्र सम्बन्धी एकाधिकार, हिंसा, या दूसरे देशोंको अधीन करनेकी नीतिसे सम्बन्ध न रखते हों। सिद्ध यह होता है कि दुनियाँके भूभागोंका बटवारा (महाशक्तियोंके उपनिवेश)—जो कि ठीक बंक-पूँजीके कालमें ही पूरा हुआ था, और जो कि सबसे बड़े पूँजीवादी राज्योंकी परस्पर प्रतियोगिताकी मौजूदा अज़ीबो ग़रीब शक्लोंकी ख़ास विशेषताको ज़ाहिर करता है–ऐसी नीतिके साथ भी हो सकता है जिसका साम्राज्यवादसे कोई सम्बन्ध नहीं। नतीजा यह है कि कॉट्स्की पूँजीवाद-की ताज़ा मंज़िलकी भारीसे भारी असंगतियों पर लीपापोती करके उनकी

गम्भीरताको कम कर रहा है जब कि होना यह चाहिये था कि उनकी गहराईको लोगोंके सामने रखा जाता। कहना यह चाहिये कि मार्क्सवादका स्थान पूँजीजीवी सुधारवादने ले लिया है।

कॉट्स्की, जर्मनीके क्यूनॉव (Cunow) नामक साम्राज्यवाद और उपनिवेश-विस्तारके हिमायतीके साथ बहस मुबाहिसेमें आता है। क्यूनॉव बेहूदा और ख़ब्ती तरीक़ेसे इस तरहकी दलीलें देता है, 'साम्राज्यवाद अर्वाचीन पूंजीवाद है; पूँजीवादका विकास अनिवार्य है और प्रगतिशील है; इसलिये साम्राज्यवाद प्रगतिशील है; इसलिये हमको साम्राज्यवादको आगे सर झुकाना चाहिये और उसका गुणगान करना चाहिये।' यह दलीलें कुछ कुछ वैसी ही हैं जैसी कि नैरोडनीक (Narodniks) लोग १८९४–१८९५ में रूसी मार्क्सवादियोंकी मज़ाक़ उड़ानेके लिये दिया करते थे। वे कहते थे कि 'अगर मार्क्सवादी, पूँजीवादको रूसमें अनिवार्य और प्रगतिशील समझते हैं, तो उन्हें बाज़ारू अड्डे खोलकर पूँजीवादकी नस्लको बढ़ाना चाहिये।' कॉट्स्की क्यूनॉवको इस तरह जवाब देता है, साम्राज्यवाद अर्वाचीन पूँजीवाद नही है, बल्कि वह अर्वाचीन पूँजीवादकी नीतिकी एक शक्ल है। हम इस नीतिका मुक़ाबला कर सकते हैं, हमें उससे लड़ना चाहिये; हमें साम्राज्यवाद और उपनिवेशविस्तारके ख़िलाफ़ युद्ध करना चाहिये।

बहुत ही खूबसूरत जवाब है। लेकिन यह दलील कहीं ज़्यादा ख़तरनाक है और उसके नतीजेके ख़यालसे कहना यह चाहिये कि कॉट्स्की गहरी चालबाज़ीके साथ छिपे छिपे साम्राज्यवादके साथ समझौता करनेका प्रचार करता है। ट्रस्टों और बैंकोंकी नीतिके ख़िलाफ़ 'युद्ध' करनेसे होता ही क्या है? अगर युद्ध उनके आर्थिक आधारपर आघात नहीं करता है तो वह पूँजीजीवी सुधारवाद, शान्तिवाद और भगवद्भक्तोंकी भोलीभाली मंगल कामना

के अतिरिक्त कुछ भी दूसरी हैसियत नहीं रखता। कॉट्स्कीके सिद्धान्तमें मार्क्सवाद की कोई भी बात नहीं है। वर्तमान असंगतियोंकी गहराईका परदा खोलना तो दूर रहा वह तो उनका नाम लेनेसे भी कतराता है और उनमेंसे बड़ीसे बड़ीको भी टाल देता है। यह स्वाभाविक ही है कि ऐसा सिद्धान्त क्यूनॉवके सिद्धान्तोंके साथ मेल करनेका समर्थन करनेके अलावा किसी कामका नहीं है।

कॉट्स्की कहता है कि शुद्ध आर्थिक दृष्टिसे देखा जाय तो पूँजीवादका एक दूसरी नयी अवस्थामेंसे गुज़रना असम्भव नहीं है। वह अवस्था यह होगी जब कि कार्टेलोंकी नीति अपना विस्तार करके वैदेशिक नीति बन जायगी यानी परम-साम्राज्यवादकी अवस्था आ जायगी। उस वक़्त दुनियांके सब साम्राज्यवाद एक हो जायँगे और उनके दर्म्यान कोई संघर्ष न रहेगा। यह वह अवस्था होगी जब कि पूँजीवादके अन्दर युद्ध बंद हो जायँगे और बंक-पूंजीका अन्तर्राष्ट्रीय संगठन हो जायगा जो दुनियांको संयुक्तरूपसे लूटेगा।

हम 'परम-साम्राज्यवादके इस सिद्धान्त' पर आगे चलकर विचार करेंगे और तब विस्तारसे दिखायेंगे कि यह मार्क्सवादके बिल्कुल और निश्चितरूपसे, ख़िलाफ़ हैं। इस समय इस पुस्तकके ख़ाकेके मुताबिक़, इस सवालसे सम्बन्ध रखनेवाले सही सही आर्थिक प्रमाणोंकी छानबीन करना ज़रूरी है। क्या 'परम-साम्राज्यवाद' शुद्ध आर्थिक दृष्टिसे सम्भव है, या कि वह 'परम मूर्खता' है?

यदि शुद्ध आर्थिक दृष्टिका मतलब, किसी विशेष काल, विशेष देशकी विशेष वास्तविक परिस्थितियोंके सम्बन्धमें न लेकर एक शुद्ध भावात्मक अर्थ (Abstraction—जिसका वस्तुस्थितिमें कोई मूर्तरूप न हो केवल विचारमें ही उसका अस्तित्व हो) में लिया जाय, तब जो कुछ भी कहा

जायगा वह इस प्रकार रखा जा सकता है:—एकाधिकारकी दिशामें विकास चल रहा है, दुनियांभरका एक ही एकाधिकार या एक ट्रस्ट बनानेकी ओर प्रवृत्ति चल रही है। यह है तो बिल्कुल निर्विवाद लेकिन साथ ही इतना ही निरर्थक है जितना कि यह कथन होगा कि प्रयोगशालाओंमें खाद्य पदार्थ बनानेकी दिशामें 'विकास चल रहा है'। (इसलिये जिस प्रकारसे परम-साम्राज्यवादकी अवस्था आएगी उसी प्रकार परम-खेतीकी भी अवस्थाका आना ज़रूरी है)। इस अर्थमें 'परम-साम्राज्यवादका सिद्धान्त', 'परम-खेतीके सिद्धान्त' से ज़रा भी कम बेहूदा नहीं है।

लेकिन अगर हम बंक-पूंजीके युग—२० वीं शताब्दीका आरम्भ जो कि इतिहासमें एक वास्तविक युग है—की 'शुद्ध आर्थिक' परिस्थितियोंपर विचार करें तो 'परम साम्राज्यवाद' के निर्जीव भावात्मक अर्थों (जो कि सिर्फ़ प्रतिगामी उद्देश्यको सिद्ध करते हैं यानी वर्तमान असंगतियोंसे ध्यान हटा देते हैं) का सबसे अच्छा उत्तर देनेका तरीका यह होगा कि उनका (भावात्मक अर्थों) दुनियाँकी वर्तमान व्यवस्थाके ठोस आर्थिक तथ्योंसे मुक़ाबला किया जाय। कॉट्स्कीके ही निरर्थक विचार, और बातोंके साथ साथ, बिल्कुल असत्य धारणाओंको प्रोत्साहन देते हैं जिसके कारणसे साम्राज्यवादके हिमायतियोंको ख़याली पुलाव ख़ूब मिला करता है। वे कहते हैं कि बंकपूँजीका आधिपत्य दुनियाँकी अर्थ व्यवस्थाकी विषमता और असंगतियोंको कमज़ोर बनाता है। और उनको ठीक करनेका प्रयत्न करता है। लेकिन असलियत यह है कि वे और भी मज़बूत हो जाती हैं।

रिचार्ड काल्वेर (Richard Calwer) ने अपनी पुस्तक, ऐन इण्ट्रोडक्शन टू वर्ल्ड इकॉनोमी (An Introduction to World

Economy—दुनियाँकी अर्थ व्यवस्थाका परिचय) में, १९ वीं शताब्दीके अन्तिम कालकी दुनियांकी अर्थव्यवस्थाके विभिन्न अंगोंके परस्पर-सम्बन्धोंको, ठोस तरीक़ेसे समझनेके लिये, ज़रूरी और मुख्य मुख्य शुद्ध आर्थिक आंकड़े इकट्ठे करनेका प्रयत्न किया है। उसने दुनियांको पांच 'मुख्य आर्थिक भागों' में बांटा हैं : (१) मध्य योरप (रूस और ग्रेट ब्रिटेनके अलावा सारा योरप); (२) ग्रेट ब्रिटेन; (३) रूस; (४) पूर्वी एशिया (५) अमेरिका। उसने उपनिवेशोंको उन्हीं 'भागों' में शामिल कर लिया है जिनके वे अधीन हैं; और कुछ देशों, जैसे पर्शिया, अफ़गानिस्तान, अरेबिया, मरोक्को, अबीसीनियां इत्यादि, को छोड़ दिया है क्योंकि ये इनमेंसे किसी 'भाग' में नहीं हैं (अगला ख़ाका देखिये)।

हम सेण्ट्रल योरप, ब्रिटेन, और अमेरिका इन तीन भागोंको, पूँजीवादमें ख़ूब बढ़ा चढ़ा पाते हैं। इनमें गमनागमनके साधन, व्यापार और उद्योग ख़ूब उन्नत हो चुके हैं। इन तीन 'भागों' में जर्मनी, ब्रिटेन, अमेरिका, ये तीन राज्य हैं जिनका सारी दुनियां पर आधिपत्य है। इन तीनों देशोंके दर्म्यान प्रतियोगिता और तनातनी बहुत बढ़ चुकी है क्योंकि जर्मनीके अधिकारमें बिल्कुल थोड़ा क्षेत्रफल है और उपनिवेश भी कम हैं। उधर 'मध्य योरप' का निर्माण अभी भविष्यकी बात है, बड़े भयानक संघर्ष चल रहे हैं। उनका फल जो कुछ भी हो। इस समय सारे योरपकी विशेषता राजनीतिक छिन्नभिन्नता है। एक ख़ास बात यह है कि ब्रिटिश और अमेरिकन 'भागों'में राजनीतिक केन्द्रीकरण ख़ूब तरक्की कर चुका है। लेकिन ब्रिटेनके उपनिवेश बहुत बड़े बड़े हैं और अमेरिकाके बहुत ही साधारण। यह इन दोनोंमें बड़ा भारी अन्तर है। उपनिवेशोंमें पूँजीवाद अभी सिर्फ़ शुरू हो रहा है। उधर दक्षिणी अमेरिकाके लिये तनातनी बढ़ रही है।

रिचार्ड कालवेरके आर्थिक आँकड़ेका संक्षिप्त ब्यौरा

दुनियांके मुख्य आर्थिक भाग	क्षेत्रफल लाख वर्ग किलोमीटरोंमें	आबादी लाखमें	गमनागमन		व्यापार, आयत-निर्यात, अरब मार्कोंमें	उद्योग		
			रेलें हज़ार किलोमीटरमें	जहाज़ी बेड़ा लाख टनमें		कोयलेकी वार्षिक उत्पत्ति लाख टनमें	लोहेकी धीड़की उत्पत्ति लाखटनमें	कताईके तकुओंकी संख्या लाखमें
१. मध्य योरप	२७६ (२३६)*	३८८० (१४६०)	२०४	८०	४१	२५१०	१५०	२६०
२. ब्रिटेन	२८९ (२८६)	३९८० (३५५०)	१४०	११०	२५	२४९०	९०	५१०
३. रूस	२२०	१३१०	६३	१०	३	१६०	३०	७०
४. पूर्वी एशिया	१२०	३८९०	८	१०	२	८०	·२	२०
५. अमेरिका	३००	१४८०	३७९	६०	१४	२४५	१४०	१९०

* कोष्ठकोंके अन्दरके अंक उपनिवेशोंसे सम्बन्ध रखते हैं।

हम देखते हैं कि रूस और पूर्वी एशिया, इन दो भागोंमें पूँजीवादका बहुत मामूली विकास हुआ है। रूसकी आबादी बहुत छितरी है लेकिन उसका राजनीतिक केन्द्रीकरण खूब हो चुका है। उधर पूर्वी एशियाकी आबादी बहुत घनी है और राजनीतिक केन्द्रीकरण है ही नहीं।

इस, वस्तुस्थिति, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियोंकी बड़ी भारी विषमता, विभिन्न देशोंकी तरक्कीकी रफ़्तारकी बेहद कमीवेशी, और साम्राज्यवादी राज्योंकी गरमागरम तनातनीका, कॉट्स्कीकी 'शान्तिपूर्ण परम-साम्राज्यवादकी मूर्खतापूर्ण मनगढ़न्तसे मुक़ाबला कीजिये। क्या यह एक डरपोक टुटपूँजियाका ठोस वस्तुस्थितिसे छिपनेका प्रतिगामी प्रयत्न नहीं है? जिन कार्टेलोंको कॉट्स्की 'परम-साम्राज्यवाद' (ultra-imperilism) का आरम्भ समझता है, (जैसे कि प्रयोग-शालामें टिकियोंका बनना 'परम-खेती' ultra-agriculture—का आरम्भ हो सकता है) क्या वे दुनियाँके विभाजन, पुन-र्विभाजन, (कभी शान्तिपूर्ण विभाजन कभी अशान्ति पूर्ण) का नमूनाका नहीं हैं। अमेरिका और दूसरे देशोंकी बंक-पूँजीने, सारी दुनियाँको शान्तिके साथ पहले ही बाँट लिया था। लेकिन इस समय बिल्कुल अशान्तिपूर्ण तरीकों-से परिस्थितियोंमें परिवर्तन किया जा रहा है और इनके आधारपर क्या, जर्मनीकी 'शिरकत' के साथ, दुनियाँका पुनर्विभाजन नहीं होरहा है? (उदाहरण, अन्तर्राष्ट्रीय रेल सिण्डिकेट, और व्यापारिक जहाज़ रानीका अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्ट)।

सच्ची बात यह है कि बंक पूँजीके कारण दुनियाँके भिन्न भिन्न देशोंकी आर्थिक तरक्कीकी रफ़्तारका फ़र्क कम नहीं हो रहा है, बल्कि बढ़ता जाता है। जब परिस्थितियोंके सिलसिलेमें परिवर्तन हो जायगा, तो पूँजी वादके अन्दर, असंगतियोंको हल करनेका सेना आदि बल प्रयोगके अति रिक्त दूसरा कौनसा रास्ता हो सकता है?

दुनियाँके भिन्न भिन्न देशोंकी बंकपूँजी और उनके पूँजीवादकी तरक्की की कमोवेश रफ़्तारके सुबूतमें रेलोंके सम्बन्धके आँकड़े देना अच्छा होगा। साम्राज्यवादी विकासके पिछले दस वर्षोंमें रेलोंके विस्तारमें इस प्रकार परिवर्तन हुआ है:—

रेलवे लाइन

हज़ार कीलोमीटरमें

	१८९०		१९१३		बढ़ती	
योरप	२२४		३४६		१२२	
संयुक्त राष्ट्र	२६८		४११		१४३	
उपनिवेश (जोड़)	८२		२१०		१२८	
एशिया और अमेरिकामें स्वतन्त्र		१२५		३४७		२२२
अथवा अर्ध स्वतन्त्र राज्य	४३		१३७		९४	
जोड़	६१०		११०४		४८७	

एशिया और अमेरिकाके स्वतन्त्र और अर्ध-स्वतन्त्र राज्योंमें रेलोंका विस्तार सबसे तेज़ीसे हुआ है। यह प्रसिद्ध बात है कि इन राज्योंमें चार या पाँच सबसे बड़े पूँजीवादी देशोंकी बंकपूँजीका पूरा पूरा आधिपत्य है। उपनिवेशों और अमेरिका व एशियाके राज्योंमें, जो दो सौ हज़ार किलोमीटर नयी रेलवे लाइन बनी हैं उसमें ४० अरब मार्ककी पूँजी, ख़ास ख़ास सुविधापूर्ण शर्तों पर अभी लगाई गई है। उसके लिये अच्छे मुनाफ़ेके लिये ख़ास गारण्टियाँ दीगई हैं और फ़ौलादकी मिलोंके लिये बड़े बड़े आर्डरोंके वायदे किये गये हैं, इत्यादि।

पूँजीवाद उपनिवेशों और समुद्रपारके देशोंमें बेहद तेज़ीसे तरक्की

कर रहा है। समुद्रपारके देशोंमें नयी साम्राज्यवादी शक्तियाँ (जापान) खड़ी हो रही हैं। संघर्ष तेज़ी पकड़ रहा है। बंक-पूँजी उपनिवेशोंके और समुद्रपारके बड़े बड़े फ़ायदेके कारबारोंसे जो मुनाफ़ा खींच रही है वह भी बढ़ता चला जा रहा है। इस 'लूटके ख़ज़ाने'का एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसे देशोंको मिलता है, जो उत्पादन साधनोंकी तरक़्क़ीके ख़यालसे हमेशा ही अव्वल नहीं रहते। महाशक्तियोंकी रेलवे लाइन (मय उनके उपनिवेशोंके) का विस्तार इस प्रकार था:—

(हज़ार किलोमीटरमें*)

	१८९०	१९१३	बढ़ती
संयुक्त राष्ट	२६८	४१३	१४५
ब्रिटिश साम्राज्य	१०७	२०८	१०१
रूस	३२	७८	४६
जर्मनी	४३	६८	२५
फ्रांस	४१	६३	२२
जोड़	४९१	८३०	३३९

हम देखते हैं कि इस प्रकार दुनियाँकी रेलोंका ८० फ़ी सैकड़ेका केन्द्रीकरण इन पाँच महाशक्तियोंकी मुट्ठीमें हुआ है। लेकिन रेलोंकी मिल्कियत (ownership) का बंकपूँजीके हाथोंमें केन्द्रीकरण, इससे भी अधिक महत्व रखता है उदाहरणके लिये अमेरिका, रूस और दूसरे देशोंकी रेलोंके स्टाकों और ऋण पत्रोंके एक बड़े ज़बर्दस्त हिस्सेके मालिक इंग्लिश और फ्रेंच करोड़पति हैं।

ग्रेट ब्रिटेनने अपने उपनिवेशोंकी बदौलत अपनी रेलोंके जालका १००००० किलोमीटर अधिक विस्तार कर लिया। यह जर्मनीके नये

* १ किलोमीटर = ⅝ मील।

विस्तारका चौगुना होता है। इसके साथ यह भी प्रसिद्ध बात है कि इस कालमें (१८९०–१९१३) जर्मनीमें उत्पादन-साधनोंकी तरक़्क़ी ख़ास तौरसे कोयले और लोहेके उद्योगोंकी, इतनी ज़्यादा तेज़ीसे हुई है कि रूस और फ़्रांसकी तो बात ही क्या, इंग्लैंडसे भी उसका कोई मुक़ाबला नहीं हो सकता। १८९२ में जर्मनीमें ४९ लाख टन और ग्रेट ब्रिटेनमें ६८ लाख टन, लोहेका बीड़ (pig-iron) तैयार हुआ था। लेकिन १९१२में जर्मनीने १७६ लाख टन तैयार किया और ग्रेट ब्रिटेनने सिर्फ़ ९० लाख टन ही। जर्मनी कितना ज़्यादा आगे बढ़ गया! सवाल यह उठता है कि क्या पूँजीवादके अन्दर, युद्धके अलावा, कोई दूसरा तरीक़ा भी हो सकता है कि जिससे एक तरफ़ तो भिन्न भिन्न देशोंके उत्पादन-साधनोंकी उन्नतिकी विषमता, और उनकी पूँजी-राशिकी बेहद कमीबेशी ख़तम की जा सके; और दूसरी तरफ़, उपनिवेशोंके या बंकपूँजीके 'प्रभाव क्षेत्रों' के बटवारेके आकाश पातालके अन्तरको कम किया जा सके?

आठवाँ अध्याय

रक्तशोषण और पूँजीवादका ह्रास

अब हमें साम्राज्यवादके एक बहुत ही ज़रूरी पहलूकी छानबीन करनी है जिसपर आम तौरसे, इस विषयका विचार करते समय बिल्कुल ही कम ध्यान दिया जाता है। मार्क्सवादी हिल्फर्डिंगकी एक कमी यह है कि वह इस पहलूके मामलेमें हॉब्सनके मुक़ाबिलेमें भी एक क़दम पीछे चला गया है। यह भी नहीं कि हॉब्सन मार्क्सवादी हो। हमारा मतलब है रक्तशोषण (parasitism) से जो कि साम्राज्यवादके अन्दर स्वाभाविक रूपसे रहता है।

हम देख चुके हैं कि साम्राज्यवादकी सबसे गहरी आर्थिक बुनियाद एकाधिकार है। यह एकाधिकार पूँजीवादी होता है। मतलब यह कि उसकी पैदायश पूँजीवादसे हुई है। इसके अलावा वह सामग्री-उत्पादन और प्रतियोगिताके आम पूँजीवादी वातावरणमें हमेशा मौजूद रहता है। लेकिन विशेषता यह है कि वह इस आम वातावरणमें मामूली शक्लमें नहीं रहता बल्कि स्थायी रूपसे बहैसियत एक ऐसी असंगतिके रहता है जो कभी हल ही नहीं की जा सकती। फिर वह, जैसा कि हर एक एकाधिकारका तरीक़ा है, गति-अवरोध (stagnation), और ह्रासकी प्रवृत्तिको पैदाकर देता है। जैसे जैसे एकाधिकारी क़ीमतें नियत होती जाती हैं, चाहे फिर अस्थायी ही रूपसे सही, वैसे वैसे साधन-विधिकी उन्नतिका

प्रोत्साहन घटने लगता है और उसके फलस्वरूप सभी प्रकारकी दूसरी प्रगतियोंकी उत्तेजना भी ठण्डी होने लगती है। साथ ही साधन-विधिकी उन्नतिको तिकड़मों द्वारा रोक दिये जानेकी भी कुछ कम सम्भावना नहीं रहती। उदाहरणके लिए, अमेरिकाके ओवन (Owen) नामक किसी व्यक्तिने एक ऐसी मशीन बनाई थी जिसने बोतलोंके काममें क्रान्ति मचा दी थी। जर्मनीके बोतल बनानेवाले कार्टेलने ओवन (Owen) के पेटण्टोंको ख़रीद लिया और फिर उनको बिना किसी काममें लाये हुए योंही डाल रखा। नतीजा यह हुआ कि ओवनकी मशीनकी आगे कोई तरक्की ही न हो सकी। यह बात बिल्कुल ठीक है कि एकाधिकार, पूँजीवादके रहते हुए प्रतियोगिताको दुनियाँके बाज़ारसे कभी भी, थोड़े समयके लिए भी पूर्णरूपसे नहीं मिटा सकता। (एक कारण यह भी है जिसकी वजहसे 'परम-साम्राज्यवाद'का सिद्धान्त बिल्कुल रद्दी हो जाता है।) हम यह मानते हैं कि साधन-विधिकी तरक्कीके ज़रिये उत्पादनकी लागत घटाना और मुनाफ़ा बढ़ाना बिल्कुल आसान है और यह बातें अवश्यही (गति-अवरोधके ख़िलाफ़) परिवर्तन करनेका काम करती हैं। लेकिन फिर भी एकाधिकारके अन्दर गति-अवरोध और ह्रासकी जो स्वाभाविक प्रवृत्ति मौजूद है वह उद्योगकी अकेली अकेली शाखाओंमें बारी बारीसे काम करती रहती है और किसी किसी देशमें किसी किसी कालके लिए तो प्रबल भी हो जाती है।

जो एकाधिकार लम्बे चौड़े, धनी और मौक़ेके उपनिवेशोंकी मिल्कियत पर क़ायम हो जाता है वह भी यही करता है।

इसके अतिरिक्त चन्द देशोंमें सिर्फ़ रुपये पैसेकी पूँजीका जमघट हो जाना भी साम्राज्यवाद है। जैसा कि हम देख चुके हैं कि किसी किसी देशमें १००, १५० अरब फ्रांक सिक्यूरिटियोंका ही हो जाता है। यही कारण है कि 'निठल्ले महाजनों' (rentiers) का एक वर्ग पैदा हो जाता है। ये लोग 'पुर्जे काट काटकर' (clipping coupons) मौज़ें मारा

करते हैं। इनको किसी कारबारसे कोई सरोकार नहीं रहता और हरामख़ोरी ही इनका पेशा होता है। उधर साम्राज्यवादका एक मुख्य आर्थिक आधार पूँजीका निर्यात है ही। वह 'निठल्ले महाजनों'के वर्गको उत्पादनसे और भी अलग कर देता है। फल यह होता है कि रक्त-शोषणका अधिकार देश भरको मिल जाता है और वह समुद्रपारके कई देशों और उपनिवेशोंके मज़दूरोंको लूटकर मज़े उड़ाने लगता है।

हॉब्सनने लिखा है कि "१८९३ में जितनी ब्रिटिश पूँजी विदेशोंमें लगी हुई थी वह युनाइटेड किंगडम (इङ्गलैण्ड, स्कॉटलैण्ड, आयर्लैण्ड) के कुल धन (wealth) का १५ प्रतिशत थी।"

हमें यह भी ख़याल रखना चाहिए कि १९१५ तक यह विदेशोंमें लगी हुई पूँजी ढाई गुना होगई थी।

हॉब्सन आगे चलकर लिखता है कि "अत्याचारी साम्राज्यवाद, कर दाता को बहुत महँगा पड़ता है और सामान बनानेवाले या व्यापारीको भी उससे कुछ फ़ायदा नहीं पहुँचता। वह तो पूँजी लगानेवालेके लिए ही बड़े मुनाफ़ेका साधन बन जाता है। सर आर गिफ़ेन (Sir R. Giffen) ने हिसाब लगाया है कि ग्रेट ब्रिटेनकी सरकारको १८९९ में, विदेशी और औपनिवेशिक आयात और निर्यातके, ८००००००० पौण्डके कुल व्यापार पर २½ फ़ी सैकड़ाकी कमीशनकी दरसे १८००००० पौण्डकी सालाना आमदनी हुई थी।"

यह रक़म बहुत बड़ी है लेकिन फिर भी हमें इससे ग्रेट ब्रिटेनके अत्याचारी साम्राज्यवादका पूरा पूरा अन्दाज़ा नहीं हो सकता। अन्दाज़ा तो हमें हो सकता है ९ या १० करोड़ पौण्डकी रक़मसे जो कि वहाँके 'निठल्ले महाजन' लोग विदेशोंमें लगी हुई पूँजीके ज़रिये मुनाफ़े या करके रूप में वसूल करते हैं।

ग्रेट ब्रिटेनके 'निठल्ले महाजनों' की आमदनी, दुनियाँके बड़े से बड़े

व्यापारी देशको विदेशी व्यापारसे जितना भी कर मिलता है, उसकी पाँच-गुनी है। यह है साम्राज्यवाद और साम्राज्यवादी रक्तशोषणका तत्व !

यही वजह है कि अब साम्राज्यवाद सम्बन्धी आर्थिक साहित्यमें 'निठल्ले महाजनोंका राज्य' (rentier state—Rentnerstaat) या 'सूदखोर राज्य' (usurer state) शब्दका आमतौरसे प्रयोग होने लगा है।

शूल्टसे-गायफ़नीट्स कहता है कि "विदेशोंमें लगी हुई पूँजीमेंसे अव्वलदर्जा उस पूँजीका है जो कि अधीन देशों या घनिष्ठ मित्र-राज्योंमें लगी हुई है। इङ्गलैण्ड इजिप्ट, चाइना, जापान और दक्षिणी अमेरिका को क़र्ज़ दिया करता है। ज़रूरत पड़नेपर उसका अपना जङ्गी जहाज़ी बेड़ा पुलिस जज या न्यायाधीशका काम करता है। और उसकी राज्यशक्ति ही उसके देनदारोंके क्रोधसे उसकी रक्षा करती है।"

सार्टोरीऊस फ़ॉन वाल्टेर्शाउसेन (Sartorius von Waltershausen) ने अपनी पुस्तक, दी नेशनल इकॉनामिक सिस्टेम ऑव फ़ॉरेन कैपिटल इन्वेस्टमेण्ट्स (The National Economic System of Foreign Capital Investments-विदेशोमें पूँजी लगानेकी राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था)में कहा है कि हॉलैण्ड 'निठल्ले महाजनोंके राज्य' का नमूना है और इङ्गलैण्ड व फ़्रांस भी वैसे ही होते जारहे हैं। शील्डर (Schilder) का ख़याल है कि इंगलैण्ड, फ़्रान्स, जर्मनी, बेल्जियम और स्विटज़रलैण्ड–ये पाँच औद्योगिक राष्ट्र "निश्चित रूपसे पेशेवर महाजन" हैं। उसने हॉलैण्डका नाम इसलिये छोड़ दिया है कि वह उद्योगोंमें इतना बढ़ा चढ़ा नहीं है। और संयुक्तराष्ट्र केवल अमेरिकाके दूसरे देशोंको ही क़र्ज़ा दिया करता है।

शूल्टसे गायफ़नीट्सने लिखा है कि "इङ्गलैण्ड धीरे धीरे औद्योगिक राज्यसे महाजन राज्य (क़र्ज़ देनेवाला राज्य) बनता जारहा है। यह तो है

ही कि औद्योगिक उत्पादन और निर्यातमें बेहद बढ़ती हुई है। लेकिन साथ ही अगर देश भरकी अर्थ-व्यवस्थाका ख़याल किया जाय, तो सूद व मुनाफ़ेके हिस्सों, सिक्यूरिटियों, ऋणपत्रों व कम्पनियोंके हिस्सोंको जारी करनेसे और कमीशन व सट्टेसे जो आमदनी होती है उसका महत्व उद्योग व निर्यातकी आमदनीके मुक़ाबलेमें बढ़ता जारहा है। मेरे बिचारसे तो यही साम्राज्यके विस्तारका आर्थिक आधार है। महाजन (क़र्ज़ देनेवाला) देश क़र्ज़मन्द देशसे, जितना बेचनेवाला देश ख़रीदनेवाले देशसे नत्थी रहता है, उससे भी कहीं ज़्यादा मज़बूतीके साथ बँधा रहता है।"

जर्मनीके सम्बन्धमें विचार करते हुए डी बांक पत्रिकाके सम्पादक आ० लान्सवर्ग (A. Lansburgh) ने १९११ में अपने 'जर्मनी निठल्ले महाजनोंका राज्य' शीर्षक लेखमें लिखा था कि "जर्मनीके लोग फ्रांसवालोंकी 'निठल्ला महाजन' बननेकी प्रवृत्तिको देखकर नाक भौं सिकोड़ा करते हैं। लेकिन वे भूल जाते हैं कि जहाँतक जर्मनीके मध्यम श्रेणीके लोगोंका सम्बन्ध है जर्मनीकी स्थिति भी बराबर फ्रांसकी सी होती जारही है।"

'निठल्ले महाजनोंका राज्य' वह राज्य होता है जहाँ रक्तशोषक पूंजीवादका ह्रास होने लगता है। अगर उन देशोंकी सम्पूर्ण सामाजिक और राजनीतिक हालतोंको आमतौरसे देखा जाय, जिनमें 'निठल्ला महाजन' बननेका रोग लग चुका है, और ख़ासतौरसे मज़दूर आन्दोलनकी दो मौलिक धाराओंको देखा जाय तो ज़रूर ही यह विश्वास होजायगा कि इन देशोंमें पूँजीवाद सूख रहा है। इसका बढ़ियासे बढ़िया सुबूत देनेके ख़यालसे हम हॉब्सनके ही विचार दे देना आवश्यक समझते हैं; वह इसलिये कि हॉब्सन सबसे ज़्यादा 'विश्वासपात्र' गवाह हो सकता है क्योंकि उसपर 'कट्टर मार्क्सवाद'के पक्षपातका सन्देह नहीं किया जासकता; इसके अलावा वह अंग्रेज़ भी है और उपनिवेशोंके सबसे बड़े मालिक, बैंकपूँजीके

सबसे धनी और साम्राज्यवादमें सबसे अधिक अनुभवी देश इंगलैंडकी स्थितिकी, खूब अच्छी जानकारी रखता है।

हॉब्सनके आगे बोअर युद्धका जीता जागता चित्र है। वह इसी सिलसिलेमें साम्राज्यवादका, बंक पूँजीके व्यवस्थापकोंके स्वार्थ—इनके गोला बारूद और दूसरे सामानके ढेरों मुनाफ़े—के साथ क्या सम्बन्ध होता, इस प्रश्नपर विचार करते हुए लिखता है:—

"इस निश्चितरूपसे रक्तशोषक नीतिके व्यवस्थापक पूँजीपति हैं और यही भाव मज़दूरोंके एक ख़ास वर्गको भी प्रेरितकर रहे हैं। बहुतसे शहरोंके बड़े बड़े व्यापार सरकारी काम और सरकारी ठेकोंके ही बल पर चल रहे हैं। धातोंके और जहाज़ बनानेके उद्योगोंके केन्द्रोंका साम्राज्यवाद भी बहुत कुछ इसी आधार पर बढ़ रहा है।"

हॉब्सनके विचारसे पुराने साम्राज्योंकी ताक़त कमज़ोर होनेके दो कारण हैं: (१) 'आर्थिक रक्तशोषण', (२) अधीन देशोंके लोगोंको भरती करके फ़ौजें बनाना। पहलेके सम्बन्धमें वह इस तरह लिखता है:—

"पहली प्रवृत्ति है आर्थिक शोषणकी जिसकी वजहसे शासक राज्य अपने प्रान्तों, उपनिवेशों और अधीन राज्योंका, अपने शासक वर्ग (जिनके हाथमें राज्यकी शक्ति है) को धनी बनानेके लिए इस्तेमाल करता है और इसी ज़रियेसे निम्न श्रेणीके लोगोंको भी रिश्वत देकर राज़ी और खुश रखा जाता है।"

इसके साथ हम यह भी जोड़ देना चाहते हैं कि यह भ्रष्टता, चाहे जिस तरह की भी क्यों न हो, आर्थिक रूपसे तब सम्भव हो सकती है जब कि ऊँचे ऊँचे मुनाफ़े एकाधिकारके तरीक़े पर हासिल हो सकें।

दूसरे कारणके सम्बन्धमें हॉब्सन यह कहता है:—

"साम्राज्यवादके अन्धेपनका सबसे विचित्र लक्षण यह है कि ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और दूसरे साम्राज्यवादी राज्य बिना सोचे समझे लापर-

वाहीसे इस ख़तरनाक निर्भरता (अधीन राज्योंके लोगोंकी फ़ौजों पर निर्भर होना) में पड़ते चले जा रहे हैं। ग्रेट ब्रिटेन तो सबसे आगे चला गया है। जिन लड़ाइयोंके द्वारा हमने भारतका साम्राज्य जीता है उनमें बहुत सी, हिन्दुस्तानी सिपाहियोंने ही लड़ी थी। हिन्दुस्तानमें, जैसा कि अभी इजिप्टमें भी हुआ है, बड़ी बड़ी स्थायी फ़ौजे ब्रिटिश अफ़सरोंके नीचे हैं। इसी प्रकार ऐफ्रिकामें भी, दक्षिण भागको छोड़कर, हमारी सभी लड़ाइयोंमें वहींके देशी सिपाहियोंने काम किया था।"

चायनाके अंग विच्छेदकी संभावनाका विचार करते हुए हॉब्सन निम्न-लिखित आर्थिक परिणामों पर पहुँचता है:—

"उस वक्त पश्चिमी योरपके अधिकांश भागकी वैसीही हालत हो जायगी जैसीकि इस समय दक्षिणी इंग्लैण्डके बहुतसे प्रदेशोंकी, रिवीरा का, और इटली व स्विटज़रलैण्डके उन स्थानोंकी है जहाँ पर बाहरी लोग सैरके लिये आकर ठहरा करते हैं। होगा यह कि जगह जगह पर धनियों के छोटे छोटे समूह जिनको सुदूर पूर्वसे मुनाफ़ा और पेंशनें मिलती होंगी, अपने पेशेवर दरबारी और मुसाहिबोंके दलों, और नौकरों चाकरोंकी एक भीड़के साथ रहने लगेंगे। इनके अलावा व्यापारी, और यातायात (रेले, कार, ट्रैमकार वग़ैरा) व कम टिकाऊ सामान बनानेके आख़ीर कामोंमें लगे हुए मज़दूरों, का होना भी आवश्यक है। जितने भी, रेलोंका सामान, जहाज़ व दूसरे गमनागमनके साधनोंका सामान बनाने वाले उद्योग हैं, वे सब ख़त्म हो जायंगे। इनकी ज़रूरत ही क्या होगी जब कि खाद्य पदार्थ और बना हुआ सामान एशिया और ऐफ्रिकासे कर और भेंटकी शक्ल में धड़ाधड़ आया करेंगे ?"

"हमने कहा है यह सम्भव है कि पश्चिमी राज्योंका एक ज़्यादा बड़ा संगठन यानी योरपीय महाशक्तियोंका संघ बन जाय। इस संघसे यह आशा करना तो बहुत दूरकी बात है कि वह दुनियामें सभ्यताका विस्तार

करेगा बल्कि वह पाश्चात्य रक्तशोषणका एक भारी ख़तरा खड़ा कर सकता है। यह ख़तरा उद्योगोंमें बड़े चढ़े देशोंसे होगा जिनके उच्चवर्गके लोगोंको एशिया और ऐफ्रिकासे लम्बेचौड़े कर मिला करेंगे। ये लोग इस मुनाफ़ेसे झुण्डके झुण्ड पालतू मुसाहिबोंको पालें पोसेंगे जिनको कि अब खेती या सामान बनानेके आवश्यक उद्योगोंके करनेकी कोई ज़रूरत न होगी। अलबत्ता ये लोग नये पूंजी-व्यवस्थापकोंके अधीन सेवा सुश्रूषा या छोटे मोटे उद्योगोंका काम किया करेंगे। जो लोग हमारे विचारको व्यर्थ समझकर मज़ाक उड़ाना पसन्द करते हों उनसे तो हम यही कहेंगे कि वे दक्षिणी इङ्गलैण्डके ज़िलोंके सामाजिक और आर्थिक जीवनकी छानबीन करें। वे वहाँपर यही अवस्था पायेंगे। वे ग़ौर करें कि क्या इस तरीक़े का विस्तार नहीं किया जासकता। चायनाका आर्थिक नियन्त्रण इसी प्रकारके बंक-पूंजीके संचालकों, उद्योगमें पूँजी लगानेवालों और राजनीतिक वा व्यापारिक कर्मचारियोंके हाथमें आजायगा। उसवक्त इन लोगोंके हाथमें इतना बड़ा ख़ज़ाना होगा जिसका कोई, वारापार नहीं। फिर क्या? ख़ूब मुनाफ़ा खींचेंगे और उसे योरपमें फूँकेंगे। दुनियाकी स्थिति इतनी जटिल है और इतनी बीहड़ परिस्थितियाँ काम कर रही हैं कि यह कहना मुश्किल है कि भविष्यके सम्बन्धका यह या कोई दूसरा अनुमान सही ही होगा। लेकिन इस वक्त पश्चिमी योरपके साम्राज्यवादके संचालनमें जो प्रवृत्तियाँ काम कर रही हैं वे इसी ओर जारही हैं और अगर उनका मुक़ाबला न किया गया या उनको किसी दूसरी तरफ़ नहीं मोड़ा गया तो वे इसी तरहका कोई न कोई पहाड़ खड़ा कर देंगी।"

हॉब्सनका ख़याल बिल्कुल सही है। अगर साम्राज्यवादकी प्रवृत्तियोंका मुक़ाबला नहीं किया गया तो वाक़ईमें उनका नतीजा यही होगा। मौजूदा साम्राज्यवादी मंज़िलपर, 'योरपके संयुक्तराष्ट्र'के क्या मानी हो सकते हैं, इसे वह बिल्कुल ठीक समझता है लेकिन इसके साथही यह भी ख़याल

रखना चाहिये कि ख़ुद मज़दूर आन्दोलनके अन्दर भी समयसाधक लोग क़दम ब क़दम एक जमे हुए तरीक़ेसे बिल्कुल सीधे इसी तरफ़ चले जा रहे हैं। साम्राज्यवाद—जिसके कि मानी होते हैं दुनियाँका बटवारा और न सिर्फ़ चायनाकीही लूट बल्कि संसारभरकी संपत्तिको हड़पना; साम्राज्यवाद—जिसके कि मानी होते हैं चंद बड़े बड़े धनी देशोंके लिये एकाधिकारी तरीक़ोंसे बेतहाशा मुनाफ़ा खींचना—वही साम्राज्यवाद श्रमजीवियोंकी उच्चश्रणीको भ्रष्ट करनेके आर्थिक साधन पैदा कर रहा है और इस तरहसे समय साधकताको प्रोत्साहन ही नहीं देता बल्कि उसको खड़ा करता और पालपोसकर मज़बूत बनाता रहता है। लेकिन साथही हमको उन प्रवृत्तियोंको भी न भूल जाना चाहिये जो कि आम तौरसे साम्राज्यवादके और ख़ास तौरसे समय साधकताके ख़िलाफ़ चल रही हैं। हॉब्सनकी बात दूसरी है, वह उदार-समाजवादी है। उसके लिये उनका भूलजाना बिल्कुल स्वाभाविक है।

जर्मनीका समय साधक गेर्हार्ड हिल्डेब्रांण्ड (Gerhard Hilderbrand) हॉब्सनकी कमी ख़ूब ही पूरी करता है। यह हज़रत साम्राज्यवादका समर्थन करनेकी वजहसे अपने दलसे निकाल दिये गये थे। लेकिन आजकल जर्मनीके उस दलके लायक़ नेता बननेके क़ाबिल होगये हैं जिसको लोग सोश्यल डिमॉक्रैट पार्टी (Social Democrat Party—जनतन्त्रवादी समाजवादी दल) के नामसे पुकारते हैं। तो हिल्डेब्रांण्ड 'पश्चिमी योरपके संयुक्त राष्ट्र' (रूसको छोड़कर) का समर्थन करता है, कहता है कि यह,...ऐफ़्रिकाके नीग्रो लोगों और 'मुसलमानोंके बड़े आन्दोलन' के ख़िलाफ़ 'सम्मिलित कार्रवाई करनेके लिए बिल्कुल ज़रूरी है; और 'चायना-जापानके एका' के मुक़ाबलेके ख़यालसे शक्तिशाली सेना और बेड़ोंको स्थायीरूपसे रखनेके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

शूल्ट्से-शायफ़नीटसने ब्रिटिश साम्राज्यवादका, जो वर्णन किया है उससे भी हमें इसी तरहके रक्तशोषणके सुबूत मिलते हैं। ग्रेट ब्रिटेन की सरकारकी आमदनी १८६५ के मुक़ाबलेमें १८९८ तक क़रीब दुगुनी हो गई थी लेकिन इसी कालमें विदेशी आमदनी नौगुनी तक पहुँच गई थी। गायफ़नीट्स कहता है कि साम्राज्यवादकी ख़ूबी यह है कि वह नीग्रोको (बिना किसी दबावके, ठीक ही है) काम करनेकी शिक्षा देता है, और उसका ख़तरा यह है कि योरपके 'शारीरिक परिश्रम का—पहले खेती, फिर खान और बादको भारी उद्योगोंका—भार रंगीन लोगोंके सुपुर्द कर देगा, और ख़ुद 'निठल्ले महाजन' के कामसे संतोष कर लेगा। इस तरह वह रंगीन जातियोंकी पहले आर्थिक और फिर राजनीतिक आज़ादीका रास्ता तैयार कर देगा।"

ग्रेट ब्रिटेनमें खेतीसे, ज़्यादा ज़्यादा ज़मीन निकाली जाकर अमीरोंके खेल और मनोरंजनके के लिये इस्तेमालकी जारही है। स्कॉटलैण्ड शिकार और दूसरे खेलोंके लिये बड़ी शानदार जगह है। उसके लिये यह कहा जाता है कि 'स्काटलैण्ड अपने भूतकाल और कार्नेगी (अमेरिकाका अरब पति) की बदौलत ज़िन्दा है।' ब्रिटेन सिर्फ़ घुड़दौड़ और लोमड़ीकी शिकारपर ही १४०००००० पौण्ड सालाना ख़र्च किया करता है। ग्रेट ब्रिटेनके 'निठल्ले महाजनों' की संख्या लगभग १० लाख है। और उधर उत्पादन करनेवालोंकी आबादी बराबर घट रही है।

	इंग्लैण्ड और वेल्स की आबादी लाखमें	मूल उद्योगोंमें लगे हुये मजदूरोंकी संख्या लाखमें	आबादीका फ़ीसैकड़ा
१८५१	१७९	४१	२३
१९०१	३२५	५०	१५

यदि कोई '२०वीं शताब्दीके शुरूके ब्रिटिश साम्राज्यवादका' विद्यार्थी ब्रिटेनके मज़दूरोंके सम्बन्धमें छानबीन करता है तो उसे वहाँके मज़दूरोंकी दो श्रेणियोंको ठीक तरीक़ेसे अलग अलग करना ही पड़ता है। एक उच्च श्रेणीके मज़दूरोंकी, दूसरी निम्न श्रेणीके मज़दूरोंकी। उच्च श्रेणीमें, सहयोगी संस्थाओं (co-oprative societies) में काम करनेवाले, व्यवसायसंघी (trade unionists) और खेल क्लबोंके व बहुतसे मज़हबी तबक़ोंके मेम्बर शामिल हैं। इसके अलावा ग्रेट ब्रिटेनमें वोट देनेके अधिकारके लिये ऐसे संकुचित नियम बने हुए हैं कि निम्न श्रेणीके श्रमजीवी वोटका अधिकार नहीं रखते। लेकिन उच्च-श्रेणीके श्रमजीवी वोट दे सकते हैं। ब्रिटिश मज़दूरोंकी हालत अच्छी दिखानेके ख़यालसे आम तौरसे इन्हीं उच्चश्रेणीके मज़दूरोंका नाम लिया जाता है। लेकिन इनकी तादाद बहुत ही थोड़ी है। मिसाल सामने है; गायफ़र्नीटर्स कहता है कि "बेकारीकी समस्या ख़ास तौरसे लण्डनमें है और वह भी निम्नश्रेणीके मज़दूरोंसे सम्बन्ध रखती है जिनकी राजनीतिज्ञ ज़रा भी चिन्ता नहीं करते हैं।" लेकिन यह कहना ज़्यादा ठीक होगा कि जिनकी पूँजीजीवी राजनीतिज्ञ और समाजवादी समयसाधक भी कुछ भी परवाह नहीं करते हैं।

साम्राज्यवादकी एक विशेषता यह भी है कि साम्राज्यवादी देशोंसे लोगोंका दूसरे देशोंमें जाना कम होरहा है, और उसके स्थानपर पिछड़े हुये देशोंसे जहाँ मज़दूरी सस्ती है, मज़दूर लोग साम्राज्यवादी देशोंमें बसनेके लिये बराबर आरहे हैं। हॉब्सनने लिखा है कि १८८४ से ब्रिटेनसे विदेशोंमें जाकर बसनेवालोंकी तादाद घट रही है। १८८४ में २४२००० लोग बाहर गये थे। लेकिन १९०० में यह संख्या घटकर १६९००० रह गई। जर्मनीसे बाहर जानेवालोंकी संख्या सबसे अधिक १८८१–१८९० में बड़ी थी। इन सालोंमें बाहर जानेवालोंकी कुल तादाद

१४५३००० थी। बादको १८९१–१९०० और १९०१–१९१० इन दो कालोंमें यह तादाद घटकर ५४४००० और ३४१००० ही रह गई। दूसरी तरफ़ ऐफ्रिका, इटली और रुससे आकर बसनेवाले लोंगोंकी संख्या बढ़ने लगी। १९०७ की मर्दुमशुमारीके मुताबिक़ जर्मनीमें उस वक्त १३४२२९४ विदेशी थे जिनमें से ४४०८०० उद्योगोंमें और २५७३२९ खेती का काम करनेवाले मज़दूर थे। फ्रांसकी खानोंमें काम करनेवाले मज़दूर ज़्यादातर पोलैण्ड, इटली और स्पेनके रहनेवाले हैं। एक बात और भी है; संयुक्त राष्ट्र-अमेरिकामें दक्षिणी और पूर्वी योरपसे आये हुए मज़दूर बड़ी कम मज़दूरीके कामोंमें लगे हुये हैं और उधर अमेरिकन लोग ज़्यादा से ज़्यादा तादादमें अच्छी मज़दूरीकी जगहोंपर काम करते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि साम्राज्यवाद मज़दूरोंमें भी एक अच्छे मजदूरोंकी श्रेणी बना देता है और उनको श्रमजीवियोंके प्रधान समुदायसे अलग लर देता है।

यह भी बता देना आवश्यक है कि ग्रेट ब्रिटेनमें, मज़दूरोंमें फूट डालने, समय साधकताको प्रोत्साहन देने और मज़दूर आन्दोलनको कमज़ोर बनानेकी साम्राज्यवादकी प्रवृति १९वीं शताब्दीके अन्तसे बहुत पहले ही ज़ाहिर होचुकी थी। उसका कारण यह है कि १९ वीं शताब्दीके मध्यमें ही ग्रेट ब्रिटेनमें दो साम्राज्यवादी खासियतें आचुकी थी, उसके अधीन एक तरफ़ बड़े बड़े उपनिवेश होचुके थे और दूसरी तरफ़ दुनियाँकी बाज़ारमें उसका एकाधिकार भी क़ायम होगया था। मार्क्स और एंगेल्स ने दर्सियों वर्षतक, ब्रिटेनकी इन साम्राज्यवादी ख़ासियतों, और मज़दूर आन्दोलनकी समय साधकताके सम्बन्धका, सिलसिलेवार तरीक़ेसे, पता लगाया था। ७ अक्टूबर, १८५८ को, एंगेल्सने मार्क्सको लिखा था :—

".....ब्रिटिश मज़दूरदल वाक़ईमें बराबर पूँजीजीवी बनता जारहा है; और ऐसा मालूम होता है कि यह सबसे बड़ा पूँजीजीवी राज्य

ऐसी सूरत पैदा कर देना चाहता है जिससे कि पूँजीजीवी वर्गके साथ साथ धनी भी पूँजीजीवी हों और मज़दूरभी पूँजीजीवी ही हों। किसी हद तक यह ऐसे देशके लिये उचित ही कहा जासकता है जो कि दुनियाँ को लूट रहा है।"

लगभग २५ वर्ष बाद, ११ अगस्त, १८८१ के एक दूसरे पत्रमें, एंगेल्स, अंग्रेज़ मज़दूरोंके सम्बन्धमें लिखता है—"बिल्कुल रद्दी अंग्रेज़* जो कि अपना नेता उन लोगोंको बनाते हैं जो मध्य श्रेणीके लोगोंके हाथ बिके हुये हैं या उनसे तनख़्वाह पाते हैं।" उसने इसी तरहके विचार, कॉटस्कीसे, अपने १२ सितम्बर, १८८२ के पत्रमें ज़ाहिर किये थे। वह लिखता है:—

"आप मुझसे जानना चाहते हैं कि अंग्रेज़ मज़दूर औपनिवेशिक नीतिके सम्बन्धमें क्या सोचते हैं? वही, जो कुछ वे आम राजनीतिके सम्बन्धमें सोचा करते हैं। यहाँपर कोई भी मज़दूर दल नहीं है सिर्फ़ शुद्ध सनातनी (conservatives), और उग्र उदार (liberal radicals) लोग हैं; साथही मज़दूर लोग भी इन लोगोंके साथ, दुनियाँके बाज़ार और उपनिवेशोंके एकाधिकारके मेवे ख़ूब उड़ाते हैं।"

एंगेल्सने अपनी पुस्तक 'दी कंडीशन ऑव दी वर्किङ्ग क्लैस इन इङ्गलैण्ड' (The Condition of the Working Class in England—इङ्गलैंडके मज़दूरोंकी हालत) के द्वितीय संस्करण (१८९२) की प्रस्तावनामें भी यही बातें लिखी थीं।

हम देखते हैं कि इस सम्बन्धमें कारण और कार्य साफ़ साफ़ हैं। कारण: (१) इस देशके द्वारा दुनियाँकी लूट (२) दुनियाँकी बाज़ारमें इसका एकाधिकार (३) उपनिवेशोंमें इसका एकाधिकार। कार्य:

*व्यवसाय संघवालोंकी तरफ़ इशारा है।

(१) ब्रिटिश श्रमजीवियोंके एक भागको पूँजीजीवी बनाना (२) ब्रिटिश श्रमजीवी वर्गके एक भागने अपना नेता उन लोगोंको बना रखा है जिनको पूँजीजीवियोंने ख़रीद लिया है या वे लोग उनको तनख़्वाह देते हैं। दूसरे देशोंकी भी कुछ कुछ यही हालत है २० वीं शताब्दीके शुरूके साम्राज्यवादने दुनियाँका पूरा पूरा बटवारा चन्द राज्योंके दर्म्यान करा दिया है। इनमेंसे हरएक राज्य दुनियाँके एक हिस्सेको (अतिरिक्त लाभकी शकल में) लूट रहा है। लेकिन फ़र्क इतना है कि वह जितने भी औपनिवेशिक भागको लूटता है वह, इङ्गलैंड जितने भागको १८५८ में लूट रहा था उससे कुछ कम ही होता है। आजकल इनमेंसे हर एक राज्य, ट्रस्ट, कार्टेल, बंक-पूँजी, और महाजन व कर्ज़मन्दके सम्बन्धोंके ज़रिये, दुनियाँकी बाज़ारमें अपना एकाधिकार क़ायम किये हुये है। हर एकके हाथमें किसी न किसी हद तक औपनिवेशिक एकाधिकार है। (हम देख चुके हैं कि उपनिवेशोंका कुल क्षेत्रफल ७५० लाख वर्ग किलोमीटर है, इसमेंसे ६५० लाख वर्ग किलोमीटर, या ८६ फ़ीसैकड़ा ६ महाशक्तियोंके हाथमें है; और ६१० लाखवर्ग किलोमीटर यानी ८१ फ़ी सैकड़ा उनमेंसे सिर्फ तीन महाशक्तियोंकी मुट्ठीमें है)—

इस समयकी स्थितिकी विशेषता यह है कि ऐसी आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियाँ ज़ोर पकड़े हुये हैं जो कि समय साधकताका मज़दूर आन्दोलनके आम बुनियादी हितोंके साथ समझौता कभी नहीं होने दे सकतीं बल्कि उनके मतभेदको और बढ़ाती रहेंगी। साम्राज्यवादका आरम्भ अंकुर से हुआ था लेकिन आज उसके चक्रका आधिपत्य है; राष्ट्रीय अर्थशास्त्र और राजनीतिमें पूँजीवादी एकाधिकारोंको अव्वल दर्जा मिला हुआ है; और दुनियाँका बटवारा पूरा होचुका है। दूसरी तरफ़ हम यह देखते हैं कि एक ज़माना वह था जब कि ब्रिटेनका ही एकाधिकार था। लेकिन इस समय चन्द साम्राज्यवादी शक्तियाँ, आपसमें इस एकाधिकारके अपने

अपने हक़के लिये लड़ रही हैं; और यह संघर्ष २०वीं शताब्दीके शुरूसे अबतक बराबर एक ख़ास चीज़ बनी हुई है।

इसवक्तकी हालत यह है कि किसी भी देशके मज़दूर आन्दोलनमें अब समय साधकताके लिये बीसों वर्ष तक, पूरी सफलता प्राप्त करनेका कोई मौक़ा नहीं है। अब वह जिस प्रकार इङ्गलैण्ड में १९वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें सफल हुई, कहीं भी सफल नहीं हो सकती। बहुतसे देशोंमें तो वह पक चुकी है, पकते पकते सड़ भी गई है और पूँजीजीवी नीतिसे समाजवादी अंधदेशप्रेमके* रूपमें पूरी पूरी घुलमिल चुकी है।

---

* समाजवादी-अन्धदेशप्रेम (Social Chauvinism)। प्लेखानोव, च्खेन्केली, मैसलव इत्यादिका रूसी साम्राज्यवादी अन्ध-देश प्रेम अपने व्यक्त और अव्यक्त (च्खेरङ्ग, स्कोबेलेव, आक्सेलराड, मार्टव इत्यादिका) दोनों ही रूपमें रूसकी समय साधकताके विभिन्न रूपोंसे पैदा हुआ था।

नवाँ अध्याय

साम्राज्यवादकी मीमांसा

'साम्राज्यवादकी मीमांसा' को हमने विस्तृत अर्थ में लिया है, और उससे समाजके विभिन्न वर्ग अपने अपने विचार शास्त्र (Ideology) को अपने सामने रखते हुये साम्राज्यवादकी नीतिके लिये कैसा रुख़ रखते हैं—यही हमारा मतलब है।

पहले हम उन लोगोंके वर्गको लेते हैं जो सम्पत्तिके मालिक हैं। हम देखते हैं कि चन्द हाथोंमें बेतहाशा बंक-पूंजीका केन्द्रीकरण होगया है, और उसने 'बन्धनों' और 'सम्बन्धों'का एक बहुत ही घना लम्बा चौड़ा जाल बिछा रखा है। इस बंक पूंजीने एक तरफ़ तो छोटेसेछोटेसे लेकर बड़े-से-बड़े पूंजीवादी मालिकको भी अपने अधीन कर लिया है, और दूसरी तरफ़, उसने, दुनियांके बटवारे और देशोंको अधीन करनेके इरादे से, विभिन्न देशोंकी सरकारोंसे सम्बन्ध रखनेवाले बंक-पूंजी व्यवस्थापकों के खिलाफ़ गहरा संग्राम छेड़ रखा है। यही दो कारण हैं जिनकी वजहसे सम्पत्तिके मालिकोंका वर्ग साम्राज्यवादके पक्षमें होगया है। इस वक्तकी सूरत यह है कि साम्राज्यवादके भविष्यके सम्बन्धमें आम जोश फैला हुआ है। लोग बड़ी बड़ी आशायें करते हैं और उसके समर्थनमें ज़मीन आसमान एक कर डालते हैं। उसकी वास्तविक प्रकृतिपर हर तरहसे लीपापोती करनेकी कोशिशकी जाती है। साम्राज्यवादकी विचार-पद्धति

मज़दूरोंमें भी फैल रही है और उनमें घर करती जारही है। इसमें कोई आश्चर्यकी बात भी नहीं, क्योंकि कोई ऐसी बड़ी दीवार तो है नहीं जो मज़दूर वर्गको दूसरे वर्गोंसे अलग रख सके। यही कारण है कि जर्मनी के सोश्यल-डिमॉक्रैट (Social-Demorcrat—समाजवादी जनतन्त्रवादी) दलके नेता लोगोंको समाजवादी-साम्राज्यवादी (Social-imperialists) कहा जाता है। यह नाम उचित भी है। क्योंकि समाजवादी-साम्राज्यवादीका मतलब उस व्यक्तिसे होता है जो बातोंमें समाजवादी हो और अमलमें साम्राज्यवादी। इसी प्रकार, हॉब्सनका ख़याल, १९०२ में ही, इंग्लैण्डके 'फ़ैबियन-साम्राज्यवादियों' (Fabian-Imperialists)* पर गया था। ये लोग समयसाधक 'फ़ैबियन सोसाइटी' (Fabian Society) से सम्बन्ध रखते थे।

पूँजीवादी विद्वान और वर्त्तमान राजनीतिज्ञ आम तौरसे साम्राज्यवादका समर्थन पर्देकी आड़में करते हैं। वे इस वाक़येको छिपानेकी कोशिश करते हैं कि उसका पूरा-पूरा आधिपत्य है। वे उसकी गहरी बुनियादोंका कभी ज़िक्र नहीं करते और उसकी साधारण विशेषता और दूसरे दर्जे कुछ पहलुओं पर लोगोंका ध्यान आकर्षित करनेकी कोशिश करते रहते हैं। वे ट्रस्टों या बैंकोंका पुलिस द्वारा निरीक्षण इत्यादि, सुधारके बिल्कुल भद्दे-भद्दे उपायोंकी याद दिलाकर ख़ास समस्यासे लोगोंका ध्यान हटा देनेका भी भरसक प्रयत्न करते हैं। कभी कभी ख़ब्ती साम्राज्यवादी जोशमें आकर खुल्लमखुल्ला यह भी कह डालते हैं कि साम्राज्यवादकी बुनियादी ख़ासियतोंके सुधारका नाम लेना बेहूदा है, और उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

* फैबियनके अर्थ होते हैं, जो युद्धको टालनेकी नीति रखता है और उससे बचता है। फैबियन सोसाइटी अब भी इङ्गलैण्डमें है।

मिसाल हमारे सामने है। जर्मनीके साम्राज्यवादियोंने आर्काइव्ज़ ऑव वर्ल्ड इकॉनोमी (Archives of world economy—दुनियांकी अर्थ-व्यवस्थाका विवरण—पत्रिकाका नाम है) में, उपनिवेशोंके राष्ट्रीय आन्दोलनके इतिहासका पता लगानेका प्रयत्न किया है। यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि उन्होंने जर्मन उपनिवेशोंको छोड़कर दूसरे उपनिवेशोंको ही ख़ास तौरसे लिया है। उन्होंने हिन्दुस्तानकी उथल-पुथल और नैटाल (दक्षिणी ऐफ्रिका) व हॉलैण्डके पूर्वी द्वीपोंके आन्दोलनोंका विचार किया है। २८–३० जून, १९१० में अधीन जातियोंकी एक कान्फ़रेंस हुई थी जिसमें ऐफ्रिका, एशिया और योरपके सभी अधीन देशोंके प्रतिनिधि शामिल हुये थे। इस कान्फ़रेंसकी एक अंग्रेज़ी रिपोर्टकी आलोचना करते हुये एक महाशयने लिखा है:—

"लोग कहते हैं कि साम्राज्यवादके ख़िलाफ़ युद्ध करना चाहिये, और शासक राज्योंको अधीन जातियोंके स्वायत्त शासन (Self-government) के अधिकारको स्वीकार कर लेना चाहिये। यह भी कहा जाता है कि एक अन्तर्राष्ट्रीय पञ्चायत क़ायम होनी चाहिये और वह इसकी देखभाल रखे कि महाशक्तियाँ कमज़ोर देशोंके साथ अपनी सन्धियोंकी शर्तोंका पूरा पालन करती हैं। कान्फ़रेंस इन पवित्र आशाओं-के आगे नहीं जाती है। लेकिन हमारे पास कोई सुबूत नहीं है कि साम्राज्यवाद पूँजीवादकी मौजूदा शक्लसे अविच्छिन्नरूपसे बंधा हुआ है। इस लिये सीधे साम्राज्यवादके ख़िलाफ़ युद्ध करना बिल्कुल निराशाजनक है। अगर युद्ध किया भी जासकता है तो शायद साम्राज्यवादकी कुछ बातोंसे जो अतिको पहुँच चुकी हैं।"

चूँकि इन महाशयके दिमाग़से, साम्राज्यवादकी बुनियादोंको सुधारना भ्रम है, इसलिये 'पवित्र आशायें' कह सकते हैं। और चूँकि पीड़ित देशों-

के पूँजीजीवी प्रतिनिधि इन 'पवित्र आशाओंके' 'आगे नहीं जाते' इसलिये यह हज़रत ज़रूर 'आगे' जाते हैं। लेकिन किस तरफ़? 'विज्ञान' और 'तर्क-शास्त्र' का ढोंग करते हुये साम्राज्यवादकी नीचता-पूर्ण ग़ुलामीकी तरफ़।

साम्राज्यवादकी मीमांसाके बुनियादी सवाल तो ये हैं कि क्या सुधारोंके ज़रिये साम्राज्यवादके आधारोंमें तबदीली की जासकती है; क्या उसकी असंगतियोंकी रफ़्तारको और भी उत्तेजना देकर बढ़ाना चाहिये; या कि उनको कम करनेकी कोशिश करनी चाहिये? उधर हम देखते हैं कि २०वीं शताब्दीके शुरूसे सभी साम्राज्यवादी देशोंमें टुटपूँजिया जनतन्त्रवादी लोग साम्राज्यवादका विरोध कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि साम्राज्यवादकी राजनीतिक ख़ासियतें शुरूसे आख़ीरतक प्रतिगामी हैं, और बंक-पूंजीके संचालकोंके अत्याचार और मुक्त प्रतियोगिताका अन्त हो जानेकी वजहसे जनतापर अधिक अत्याचार होने लगा है। इन टुटपूँजिया सुधारवादियोंके विरोधका आर्थिक आधार भी बिल्कुल प्रतिगामी है। और हम जो यह देखते हैं कि काँटस्की मार्क्सवादसे अलग हो गया है और अन्तर्राष्ट्रीय पैमानेपर कॉट्स्कीवादकी प्रवृत्ति चल पड़ी है, उसका कारण यही है कि कॉटस्की इन टुटपूँजिया सुधारवादियोंके विचारोंकी मुख़ालिफ़त-का कोई तरीक़ा ही न सोच सका। उसने सोचनेकी तक़लीफ़ भी न की बल्कि व्यवहारमें वह उनसे ही मिल गया है।

१८९८ में, स्पेनके ख़िलाफ़ जब साम्राज्यवादी युद्ध चला तो संयुक्त राष्ट्रमें पूँजीजीवी जनतन्त्रवादके बहादुर हिमायतियोंने साम्राज्यवादके ख़िलाफ़ शोर ग़ुल किया था। वे घोषित करते थे कि यह युद्ध आततायीपन है। वे विदेशोंके अधीन करनेका विरोध करते और कहते थे कि यह विधान (constitution) को तोड़ना है। इसी प्रकार वे स्वार्थी अन्ध देशभक्तोंके उस विश्वासघातकी कड़ी निन्दा करते जिसके द्वारा

फ़िलिपिनों* लोगोंके नेता ऐग्विनैल्डो Aguinaldo) को धोखा दिया गया था†। वे लिंकन (Lincoln) ‡ के इन शब्दोंको दुहराते थेः—

"जब गौराङ्ग (गोरा या सफ़ेद आदमी) अपने ऊपर हुकूमत करता है तब तो वह स्वायत्त शासन है। लेकिन जब वह अपने ऊपर हुकूमत करता है और साथ ही दूसरे पर भी तो वह स्वायत्त-शासनके परेकी चीज़ है—वह है निरंकुश शासन।"

लेकिन जबतक इस प्रकारकी सारी आलोचना साम्राज्यवाद और ट्रस्टोंके अविच्छिन्न सम्बन्धकी हस्तीको स्वीकार करनेसे झिझकती है यानी जब तक वह साम्राज्यवाद और पूँजीवादकी बुनियादोंके गहरे तआल्लुक़को माननेके लिये तैयार नहीं; और जबतक यह आलोचना, बड़े पैमानेके पूँजीवाद और उसकी तरक्कीसे पैदा हुई परिस्थितियोंके खिलाफ़ मोरचा नहीं लेती, तबतक सबकी सब 'भगवद्भक्तोंकी कोरी आशा' ही है।

इसी तरह जब हॉब्सन साम्राज्यवादकी आलोचना करता है तो उसकी भी वही हालत रहती है। हॉब्सनने कॉट्स्कीसे पहले ही 'साम्राज्यवादके अनिवार्य लक्षण' का विरोध किया था और इस बात पर ज़ोर दिया था कि (पूँजीवादके ज़मानेमें) "जनताकी सामानको ख़र्च करनेकी शक्तिको बढ़ानेकी आवश्यकता है, उधर दूसरे लेखकोंने, जैसे आगाद, लांसबर्ग, एल. एशेंगे जिनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है, साम्राज्यवाद, यानी बैंकोंका प्रभुत्व, बंक-पूँजीके व्यवस्थापकोंका गुटतन्त्र वग़ैराकी

* फ़िलिपिनों—फ़िलिपाइन द्वीपके निवासी।

† ऐग्विनैल्डोसे वादा किया गया था कि उसका देश स्वतन्त्र रहेगा लेकिन बादको फ़िलिपाइनमें अमेरिकन फ़ौजें उतारी गईं और उसे अधीन कर लिया गया।

‡ लिंकन—ऐब्राहम लिंकन—संयुक्त राष्ट्र-अमेरिकाका पहला राष्ट्रपति।

जितनी भी आलोचना की है सभीका टुटपूँजिया, दृष्टि कोण रहा है। १९०० में प्रकाशित, इंग्लैण्ड ऐण्ड इम्पीरियलिज़्म (England & Imperialism) पुस्तकके फ्रेंच लेखक विक्तोर बेरार (Victor Berard) की भी वही हालत है। यह हम मानते हैं कि इनमेंसे कोई भी किसी तरहका मार्क्सवादी होनेका दावा नहीं करता। ये लोग सभी साम्राज्यवादका मुक्त प्रतियोगिता और जनतन्त्रवादसे मुक़ाबला करते हैं। एक तरफ़ तो बग़दाद रेलवेकी निन्दा करते हैं और कहते हैं उसकी वजहसे झगड़े और युद्ध होंगे, और दूसरी तरफ़ शान्तिकी पवित्र आशायें करते हैं। इन्हीं लोगोंके साथ नेमार्क भी है जिसने स्टार्कोंके अन्तर्राष्ट्रीय आंकड़े इकट्ठे किये हैं। नेमार्ककी यह हालत है कि अन्तर्राष्ट्रीय सिक्यूरिटियोंके सैकड़ों अरब फ्रांकका तख़मीना लगानेके बाद, १९१२ में इस तरह कहने लगा कि:—

"क्या यह विश्वास किया जा सकता है कि शान्ति भंग हो सकती है?... इन लम्बे चौड़े आंकड़ोंके होते हुये भी लड़ाई छेड़नेका ख़तरा कोई भी मोल ले सकता है?"

पूँजीजीवी अर्थशास्त्रियोंका इस तरहका भोलापन कोई आश्चर्यकी चीज़ नहीं है। इसके अलावा, इस तरह सीधासादा भोलापन दिखाना और साम्राज्यवादके अन्दर शान्तिकी गम्भीरता पूर्वक बातें करना यही उनके हक़में अच्छा भी है। लेकिन कॉट्स्कीके लिये क्या कहा जाय। उसका मार्क्सवाद कहाँ चला जाता है जब वह १९१४–१९१५–१९१६ में इसी पूँजीजीवी-सुधारवादके दृष्टिकोणको अपना लेता है और कहता है कि शान्तिके सम्बन्धमें "हम सब लोगोंका एक ही विचार है" (यानी साम्राज्यवादी, ढोंगी समाजवादी और शान्ति चाहने वाले समाजवादी लोगोंका)। होना तो यह चाहिये था कि वह साम्राज्यवादका विश्लेषण

करता और उसकी गहरी असंगतियोंका परदा फ़ाश करता। लेकिन यह कहाँ, बल्कि वह तो सुधारवादी 'मंगल कामनायें' करके असंगतियोंसे कतराकर निकल भागता है।

हम यहाँ पर कॉट्स्कीकी साम्राज्यवादकी आर्थिक आलोचनाका एक नमूना पेश करते हैं। वह ब्रिटेनके इजिप्टके साथके व्यापारके निर्यात और आयातके आँकड़े लेता है। इन आंकड़ोंसे यह ज़ाहिर होता है कि इजिप्टके सम्बन्धका निर्यात और आयात, ब्रिटेनके कुल निर्यात और आयातके मुक़ाबलेमें धीरे धीरे बढ़ा है। लेकिन देखिये कॉट्स्की क्या नतीजा निकालता है :—

"ब्रिटेनके इजिप्टके साथके व्यापारकी कम तरक़्क़ी हुई है। लेकिन हमारे पास कोई वजह नहीं जिससे कि हम यह विश्वास करें कि यह तरक़्क़ीकी कमी आर्थिक कारणोंसे हुई है और उसमें इजिप्टका फ़ौज़ी कब्ज़ा जो कर रखा है, उसका कोई हाथ नहीं है·····राज्योंके आजकलके प्रयत्न साम्राज्यवादके हिंसक उपायोंसे पूरे पूरे सफल नहीं हो सकते। पूरी सफलता तो शान्ति पूर्ण जनतन्त्रवादसे ही मिल सकती है।

कॉट्स्कीकी इस दलीलका तो आधार वही दलील है जिसे उसका रूसी सिपाही स्पेक्टेटर ((spectator–जो अंध-देशभक्त समाजवादियों का धर्म-पिता भी है) हर तानमें अलापा करता है।

इसलिये हमें उसकी विस्तारसे छानबीन करनी होगी। कॉट्स्की कई मौक़े पर, और अप्रैल १९१५ में भी, कह चुका है कि हिलफर्डिंगके नतीजोंको सभी साम्राज्यवादी सिद्धान्तप्रवर्त्तकोंने एक स्वरसे मान लिया है। इसी वजहसे हम पहले हिलफर्डिंगका एक अवतरण देते हैं। हिलफर्डिंग लिखता है :—

"श्रमजीवी वर्गका यह काम नहीं है कि वह ज़्यादा प्रगतिशील

पूँजीवादी नीतिकी तुलना, मुक्त व्यापार और राज्य-विरोधके ज़मानेकी नीतिसे करे। बंक-पूँजीकी आर्थिक नीतिका, या साम्राज्यवादका उत्तर मुक्त व्यापार नहीं हो सकता, बल्कि सिर्फ़ समाजवाद ही हो सकता है। अब श्रमजीवी नीतिका उद्देश्य मुक्तप्रतियोगिताकी पुनर्स्थापनाका विचार नहीं हो सकता, अब तो यह प्रतिगामी आदर्श हो चुका है। श्रमजीवी नीतिका उद्देश्य यही हो सकता है कि पूँजीवादका अन्त करके प्रतियोगिताको पूरा पूरा ख़त्म कर दिया जाय।"

कॉट्स्की मार्क्सवादसे इसी तरह निकल भागा कि उसने बंक-पूँजीके इस कालमें 'एक प्रतिगामी आदर्श,' 'शान्तिपूर्ण जनतन्त्रवाद' और 'आर्थिक कारणोंका प्रभाव' इत्यादि बातोंका दम भरा। क्योंकि यह आदर्श अमलमें आने पर हमें पीछे घसीटकर एकाधिकारसे एकाधिकार-रहित पूँजीवाद पर ले जाता है और वह सुधारवादी धोखा है।

हजिप्ट (या किसी भी दूसरे उपनिवेश या अर्ध उपनिवेश) के साथ व्यापार, फौज़ी कब्ज़े, साम्राज्यवाद या बंक-पूँजीके बिना ही "ज़्यादा तरक्की करता" इसके मानी क्या होते हैं ? यही न कि पूँजीवादकी तरक्की ज़्यादा तेज़ीसे होती अगर मुक्त प्रतियोगिताके रास्तेमें एकाधिकारोंने बंक-पूँजीके 'बन्धनों या उसकी गुलामी'ने और उपनिवेशोंके एकाधिकारी कब्ज़ेने कोई रुकावट न डाली होती ?

कॉट्स्कीकी दलीलोंका कोई दूसरा मतलब हो नहीं सकता। और यह बेसिर पैरका और ख़फ्त मतलब है। लेकिन मान भी लिया जाय कि यह ठीक है कि मुक्त प्रतियोगितासे, बिना किसी तरहके एकाधिकारके ही, पूँजीवाद और व्यापारकी ज़्यादा तेज़ीसे तरक्की हो सकती, तो क्या यह सही नहीं है कि पूँजीवाद और व्यापारकी जितनी ही तेज़ीसे तरक्की होती है उतना ही ज़्यादा उत्पादन और पूँजीका केन्द्रीकरण

होता है जिसके कारण एकाधिकार क़ायम होने लगता है। वास्तविक घटना भी यही है कि मुक्त प्रतियोगितामेंसे ही एकाधिकार पैदा होगये हैं। अगर यह भी मान लिया जाय कि एकाधिकारोंसे तरक़्क़ीमें रुकावट पड़ रही है तो भी यह दलील मुक्त प्रतियोगिताके पक्षमें नहीं है। मुक्त प्रतियोगिता तो एकाधिकारोंको पैदा कर देनेके बाद असम्भव हो चुकी।

कॉट्स्कीकी दलीलको कोई कितना भी तोड़ मरोड़के इधर उधर करनेकी कोशिश करे लेकिन उसमेंसे प्रतिक्रिया और पूँजीजीवी सुधारवादके अलावा कुछ नहीं निकल सकता। अगर हम इस दलीलको दुरुस्त भी करलें और स्पेक्टेटरकी तरह कहने लगे कि इस वक़्त ब्रिटिश उपनिवेशोंका ब्रिटेनके साथ व्यापार, उनके दूसरे देशोंके साथके व्यापारके मुक़ाबिलेमें ज़्यादा धीमी रफ़्तारसे तरक़्क़ी कर रहा है, तो भी तो कॉट्स्कीकी रक्षा नहीं होती। क्योंकि ब्रिटेन पर (अमेरिका, जर्मनी) दूसरे देशोंके भी एकाधिकार और साम्राज्यवादका हमला हो रहा है। यह प्रसिद्ध है कि कार्टेलोंने संरक्षणके लिये एक नये और बुनियादी तरीक़ेकी ज़कातोंको शुरू किया है—वह यह कि निर्यातके लायक़ सामानका संरक्षण किया जाता है (एंगेल्सने 'कैपिटल'के तीसरे भागमें इसका ज़िक्र किया है)। हम यह भी ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं कि कार्टेलों और बंक-पूँजीका एक अपना ख़ास तरीक़ा यह है कि वे सामानको 'गिरी क़ीमतों' (dumping prices) पर बाहर भेजते हैं। कार्टेल अपने देशमें तो अपने सामानको एकाधिकारकी वजहसे ख़ूब ऊँची क़ीमत पर बेचते हैं; लेकिन दूसरे देशमें वे उसे, अपने प्रतियोगीकी जड़ खोदने और अपना उत्पादन पूरा पूरा बढ़ानेके ख़यालसे, बहुत कम क़ीमत पर फ़रोख़्त करते हैं। अगर जर्मनीका व्यापार ब्रिटिश उपनिवेशोंके साथ, ब्रिटेनके उनके साथके व्यापारकी अपेक्षा, ज़्यादा तेज़ीसे बढ़ रहा है, तो इससे तो यही सिद्ध

होता है कि जर्मनीका साम्राज्यवाद, ब्रिटिश साम्राज्यवादके मुक़ाबिलेमें, ज़्यादा नया, ज़्यादा ताक़तवर, ज़्यादा अच्छी तरह संगठित, और ज़्यादा बढ़ा चढ़ा है। इससे मुक्त व्यापारकी अच्छाई तो किसी तरह भी साबित नहीं होती। क्योंकि इस मामलेमें मुक्त व्यापारका संरक्षण और औपनिवेशिक आधिपत्यसे युद्ध नहीं है। बल्कि यह कहना चाहिये कि यह युद्ध है एक साम्राज्यवादका दूसरे साम्राज्यवादसे, एक एकाधिकारका दूसरे एकाधिकारसे और एक बंक-पूँजीका दूसरी बंक-पूँजीसे। जर्मन साम्राज्यवाद, ब्रिटिश साम्राज्यवादसे ज़्यादा बढ़ा चढ़ा और ताक़तवर है। और वह उपनिवेशोंमें लगाई गई रुकावटों या संरक्षणकी ज़कातोंका सामना करनेके लिये कहीं ज़्यादा मज़बूत है। इस बातसे मुक्त व्यापार और 'शान्तिपूर्ण जनतन्त्रवाद'के समर्थनके लिये कोई दलील निकालना अक़्ल के कुटुलपनका परिचय देना है। यह तो बेहूदे तरीक़ेसे साम्राज्यवादकी ख़ासियतोंका महत्व घटानेका प्रयत्न, और मार्क्सवादके बजाय पूँजीजीवी सुधारवादका प्रतिपादन करना है।

यह मज़ेकी बात है कि पूँजीजीवी अर्थशास्त्री, लान्सबर्ग तकने व्यापारिक आंकड़ोंको, कॉट्स्कीके मुक़ाबलेमें अधिक वैज्ञानिक ढंगपर समझा है, हालांकि उसकी साम्राज्यवादकी आलोचना कॉट्स्कीकी ही तरह पूँजीजीवी है। उसने अंधाधुंध तरीक़ेसे किसी एक ही देश या एक ही उपनिवेशको लेकर, बाक़ी दूसरे देशोंसे मुक़ाबला नहीं किया है। उसने किया यह है कि एक साम्राज्यवादकी देशके निर्यात-व्यापारका पहले तो उन देशोंसे मुक़ाबिला किया है जो उस साम्राज्यवादी देशपर बंक-पूँजीके मामलेमें आश्रित हैं या उससे क़र्ज़ा लेते हैं। और फिर उन देशोंसे मिलान किया है जो बंक-पूँजीके ख़यालसे स्वतन्त्र हैं। वह इन नतीजों पर पहुँचता है:—

जर्मनीसे निर्यात

लाख मार्कमें

उन देशोंको जो बंक-पूँजीके ख़यालसे जर्मनीके अधीन हैं।

	१८८९	१९०८	फी सैकड़ा बढ़ती
रूमानिया	४८२	७०८	४७
पोर्च्युगाल	१९०	३२८	७३
आर्जेण्टिना	६०७	१४७०	१४३
ब्रेज़िल	४८७	८४५	७३
चाइल	२८३	५२४	८५
टर्की	२९९	६४०	११४
जोड़—	२३४८	४५१५	९२

उन देशोंको जो बंक-पूँजीके ख़यालसे जर्मनीके अधीन नहीं हैं।

	१८८९	१९०८	फी सैकड़ा बढ़ती
ग्रेट ब्रिटेन	६५१८	९९७४	५३
फ्रांस	२१०२	४३७९	१०८
बेल्जियम	१३७२	३२२८	१३५
स्विटज़र्लैंड	१७७४	४०११	१२७
ऑस्ट्रेलिया	२१२	६४५	२०५
उच्च पूर्वी द्वीप	८८	४०७	३६३
जोड़—	१२०६६	२२६४४	८७

लांसवर्गने इन आंकड़ोंका जोड़ नहीं लगाया। इसी लिये यह अजीब बात है कि वह यह नहीं समझ सका कि अगर यह आंकड़े कुछ

भी साबित करते हैं तो सिर्फ़ उसीके ख़िलाफ़ जाते हैं। क्योंकि, बंक-पूंजीके मामलेमें स्वतन्त्र देशोंके मुक़ाबिलेमें, बंक-पूंजीकी दृष्टिसे अधीन देशोंके लिये निर्यात ज़्यादा तेज़ीसे बढ़ा है। चाहे थोड़ासा ही सही। हमने अगर पर ज़ोर इसलिये दिया है कि लांसवर्गके अंक बिल्कुल अधूरे हैं।

निर्यात व्यापार (exports trade) और दिये हुये कर्ज़ोंके सम्बन्धमें पता लगाते हुये लान्सवर्गने लिखा है:—

"१८९०–९१ में रूमानियाका एक क़र्ज़ जर्मनीके बैंकोंके द्वारा इकट्ठा किया गया था। ये बैंक इस क़र्ज़के आधार पर पिछले सालोंमें ही पेशगी दे चुके थे। इस क़र्ज़से मुख्य रूपसे जर्मनीसे रेलोंका सामान ख़रीदा गया। १८९१ में रूमानियाके लिये जर्मनीका निर्यात ५५० लाख मार्कका हुआ। अगले साल निर्यातमें कमी हुई और सिर्फ ३९४ लाख मार्कका ही हुआ। बादके सालोंमें चढ़ाव-उतार होता रहा और १९०० में निर्यात २५४ लाखका हुआ। चन्द नये कर्ज़ोंकी बदौलत सिर्फ़ इधर कुछ पिछले वर्षोंमें रूमानियाके लिये जर्मनीका निर्यात १८९१ के के बराबर हो पाया है।

१८८८–१८८९ में जर्मनीने पोर्च्युगालको क़र्ज़ा दिया। इसीके साथ साथ पोर्च्युगालके लिये जर्मनीका निर्यात भी बढ़ा और २११ लाख मार्क (१८९०) तक पहुँच गया। अगले दो वर्षमें यह निर्यात गिरा और १६२ लाख मार्क और ७४ लाख मार्क रह गया। सिर्फ़ १९०३ में पुरानी तादाद पर पहुँच सका।"

"जर्मनीका आर्जेंटिनाके साथ व्यापार और भी विशेषता रखता है। १८८८ और १८९० में आर्जेंटिनाके लिये क़र्ज़ा इकट्ठा किया गया जिसकी वजहसे आर्जेंटिनाके लिये जर्मनीका निर्यात १८८९ में ६०७ लाख मार्क तक पहुँच गया। दो साल बाद यह निर्यात सिर्फ़ १८६ लाख

मार्कका ही रह गया, तिहाईसे भी कम हो गया। इसके बाद कई साल-तक निर्यात नहीं बढ़ा। १९०१ में आर्जेण्टिनाकी सरकार और म्यूनि-स्पैलिटियोंको पॉवर स्टेशन और दूसरे कामोंके लिये क़र्ज़ दिये गये और तब कहीं जाकर निर्यात बढ़ा और इस साल १८८९ से ज़्यादा हो गया।"

"१८९२ में जर्मनीका, चाइलके लिये, निर्यात बढ़कर, ५५२ लाख मार्कका हो गया। यह १८८९ के क़र्ज़ेका फल था। दूसरे सालमें निर्यात घटकर आधेसे भी कम हुआ, सिर्फ़ २२५ लाख मार्कका रहगया। १९०६ में जर्मन बैंकोंने चाइलके लिये एक नया क़र्ज़ा इकट्ठा किया जिसके फलस्वरूप १९०७ में निर्यात ८४७ लाख मार्कका हुआ। लेकिन १९०८ में फिर घटा और ५२४ लाख मार्कका ही रह गया।"

लान्सवर्ग इन घटनाओंसे बड़ा ही मज़ेदार टुटपुँजिया नतीजा निकालता है। वह कहता है कि निर्यात व्यापार क़र्ज़ोंके साथ बँधे रहनेकी वजहसे कितना अस्थिर और अनियमित है। घरेलू उद्योगोंकी स्वाभाविक और नियमित उन्नति करनेके बजाय विदेशोंमें पूँजी लगाना कितना बुरा है; क्रूप कम्पनीको विदेशी क़र्ज़े इकट्ठे करनेमें कमीशन वगैरामें कितनी फ़िज़ूल खर्ची करनी पड़ती है। लेकिन वाक़यात बिल्कुल साफ़ हैं। निर्यातकी बढ़तीका बंक-पूँजीकी तिकड़मोंसे गहरा सम्बन्ध है। बंक-पूँजी, पूँजीजीवी आचारनीतिसे कोई सरोकार नहीं रखती और वह तो अपनी शिकारका सिर्फ़ दो बार चमड़ा उतारना जानती है। एक बार तो क़र्ज़ेसे खूब मुनाफ़ा लिया जाता है और दूसरी बार फिर फ़ायदा उठाया जाता है जब कि उसी क़र्ज़से क़र्ज़लेनेवाला देश क्रूप कम्पनी या स्टील सिण्डिकेटसे सामान ख़रीदता है।

हम दुबारा याद दिला देना चाहते हैं कि लान्सवर्गके आँकड़े किसी भी तरह पूरे नहीं हैं। लेकिन फिर भी उनको इसलिये देना पड़ा कि लान्सवर्गने उन्हें कांटस्की और स्पेक्टेटरके आंकड़ोंसे अधिक वैज्ञानिक ढंग

पर लिया है और वह मसलेको सही तरीक़ेसे समझनेकी कोशिश करता है। सामानके निर्यात वग़ैरहके मामलेसे बंक-पूँजीका क्या महत्व रहता है, इस बातकी विवेचना करनेके लिये यह बता देना ज़रूरी होगा कि सामानके निर्यातका, बंक-पूँजी-व्यवस्थापकोंकी चालबाज़ियों—यानी, कार्टेलों, सिण्डिकेटों वग़ैरहके मालकी बिक्री—के साथ कैसा ख़ासा तआल्लुक़ रहता है, सिर्फ साधारण उपनिवेशोंका अर्ध-उपनिवेशोंसे, एक साम्राज्यवादका दूसरे साम्राज्यवादसे, और एक उपनिवेश या अर्ध-उपनिवेशका सब दूसरे देशोंसे, मुक़ाबला करना तो इस सवालके असली मतलबसे कतराना और उसपर परदा डालना है।

इसलिये कॉट्स्कीने जो साम्राज्यवादकी सिद्धान्तिक मीमांसा की है, उसका मार्क्सवादसे कोई सम्बन्ध नहीं है, और वह सुधारवादियोंके साथ समझौतेका प्रचार करनेकी सिर्फ भूमिका है। क्योंकि यह मीमांसा साम्राज्यवादकी गहरीसे गहरी और बुनियादी ख़ासियतोंसे भागती ही नहीं बल्कि उनपर परदा भी डालती है। यानी वह, एकाधिकार और मुक्त प्रतियोगिताकी असंगति; बंक-पूँजीके लम्बे चौड़े 'हेरफेर' और खुले बाज़ार 'ईमानदारीके' व्यापारकी असंगति; संघ व ट्रस्टों और असंयुत (non-combined) कारबारोंकी असंगति वग़ैरा असंगतियोंको, बिल्कुल ही दबा जाती है।

हम यह पहले देख चुके हैं कि कॉट्स्कीके दिमाग़की उपज, 'परम साम्राज्यवाद'का वह बेहूदा सिद्धान्त भी इतना ही प्रतिगामी है। कॉट्स्कीकी 'परम-साम्राज्यवाद'के समर्थनमें १९१५ में दी हुई दलीलोंका, हाब्सनकी १९०२ की दलीलोंसे मुक़ाबला कीजिये।

कॉट्स्की लिखता है:—"क्या यह सम्भव है कि मौजूदा साम्राज्यवादका स्थान 'परम-साम्राज्यवाद' की नयी नीतिको दिया जा सके, जिससे कि विभिन्न देशोंकी बंक-पूँजीकी परस्पर प्रतियोगिताका अन्त हो सके

और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर संयुक्त बंक-पूँजीके ज़रिये दुनियाको संयुक्त रूपसे लूटा जा सके ? यह हर हालतमें समझमें आता है कि पूँजीवादकी इस तरहकी नयी अवस्था सम्भव है। लेकिन सवाल तो यह है कि क्या यह अवस्था लायी भी जा सकती है ? पर अबतक हमारे पास इतने काफ़ी प्रमाण नहीं हैं कि इस सवालका जवाब दिया जा सके।"

और हॉब्सनने १९०२ में ही यह लिखा था:—

"बहुतसे लोगोंका ख़याल है है कि मौजूदा प्रवृत्तियोंका यह बिल्कुल उचित ही फल हुआ है कि ईसाई-राज्यका विस्तार हो गया है और चन्द विशाल संघ-साम्राज्य (federal empires) बन गये हैं। वे लोग यह भी समझते हैं कि इस प्रकारसे बड़ी भारी आशा है कि अन्तमें साम्राज्यवाद (inter-imperialism)* के मज़बूत आधार पर स्थायी शान्ति क़ायम की जा सकेगी।

कॉट्स्कीने जिस चीज़का नाम 'परम-साम्राज्यवाद' रखा है उसीको हॉब्सनने 'अन्तर्साम्राज्यवाद' कहा है। 'अन्तर' की बजाय 'परम' जोड़ कर एक बढ़ियासा नया शब्द गढ़ देनेके अलावा अगर कॉट्स्कीने 'वैज्ञानिक' विचार पद्धतिमें कुछ भी तरक्की है तो सिर्फ़ इतनी ही कि जिस चीज़को हॉब्सनने अंग्रेज़ पादरी-पुरोहितोंके शब्द जालमें रखा था उसपर कॉट्स्कीने मार्क्सवादका मार्का लगा दिया है। ब्रिटिश पादरी-पुरोहितोंकी बात दूसरी थी। बोअर युद्धके बाद उनको ब्रिटिश टुटपुँजियों और मज़दूरोंको तसल्ली देनेका प्रयत्न करना पड़ा था, जिनके बहुतसे सम्बन्धी ऐफ्रिकाके मैदानमें काम आये थे, और जिनको

* विभिन्न साम्राज्योंका, आपसमें सम्बन्ध होकर, एक अन्तर्साम्राज्य स्थापित होगा और उनकी साम्राज्यवादी नीतियां अलग अलग न होकर एक हो जायँगी वही नीति अन्तर्साम्राज्यवादकी नीति होगी।

कि इस युद्धके कारण ढेरों कर देना पड़ रहा था। पादरी-पुरोहितोंके लिये यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि यह युद्ध इन्हीं लोगोंके अरबोंके मुनाफ़ेको सुरक्षित करनेके लिये ही रचा गया था। यह कहा जाता था कि साम्राज्यवाद कोई बुरी चीज़ नहीं। वह अन्तर् (या परम) साम्राज्यवादसे कोई विशेष भिन्न नहीं है और वह निश्चय ही स्थायी शान्ति स्थापित कर सकता है। तसल्ली देनेका इससे अच्छा तरीक़ा और क्या हो सकता था? ख़ैर, ब्रिटिश पादरियों और कॉट्स्कीके नेक इरादोंकी बात जाने दीजिये। हमें तो यह कहना है कि कॉट्स्कीके सिद्धान्तका उद्देश्य यानी उसका वास्तविक सामाजिक महत्व सिर्फ़ एक ही होसकता है। और वह यह कि पूँजीवादके अन्दर स्थायी शान्तिकी आशायें दिला दिलाकर, मौजूदा ज़मानेके गहरे विद्वेषों व बड़ी बड़ी समस्याओंपर परदा डालकर और परम-साम्राज्यवादकी मृगतृष्णाका लोभ दिखाकर जनताको तसल्ली देना और प्रतिगामी बनानेका प्रयत्न करना। कॉट्स्कीके 'मार्क्सवादी' सिद्धान्तमें जनताको धोखा देने और बहकानेके सिवा कुछ भी नहीं है।

कॉट्स्की जिन आशाओंको जर्मन मज़दूरोंके सामने रखता है उनके खोखलेपनको अच्छी तरहसे समझनेके लिये, कुछ ख़ास ख़ास प्रसिद्ध और निर्विवाद घटनाओंको ठीक तरीक़ेसे जान लेना काफ़ी होगा। हिन्दुस्तान, इण्डोचायना और चीनको ले लीजिये। यह प्रसिद्ध बात है कि इन तीनों देशोंको, जिनमें ६० या ७० करोड़ मनुष्य रहते हैं, कई साम्राज्यवादी शक्तियोंने लूटका क्षेत्र बना रखा है। इन देशों पर ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रांस, जापान और संयुक्तराष्ट्रकी बंक-पूँजीका आधिपत्य जमा हुआ है। मान लीजिये कि इन देशोंमें अपना अपना क़ब्ज़ा, अपने अपने स्वार्थ व 'प्रभाव-क्षेत्रों'के विस्तार और रक्षाके ख़यालसे, ये साम्राज्यवादी शक्तियाँ आपसमें एक दूसरेके ख़िलाफ़ 'दोस्तियाँ' करती हैं। और यही इनकी 'अन्तर्-साम्राज्यवादी' या 'परम-साम्राज्यवादी' 'दोस्तियाँ'

होंगी। मान लीजिये कि ये शक्तियाँ, इन एशियाई देशोंके आर्थिक बटवारेके लिये आपसमें समझौता करती हैं जोकि बंक-पूँजीको अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर संयुक्त कर देगा।' हमें २०वीं शताब्दीके इतिहासमें इस प्रकार की दोस्तियों और समझौतोंके सच्चे उदाहरण मिलते ही हैं। मिसालके लिये चीनके सिलसिलेमें इसी प्रकारकी दोस्तियाँ हुई हैं। हमारा सवाल यह है कि, यह मानते हुये कि पूँजीवाद ज्योंका त्यों बना रहेगा (जैसा कि कॉटस्कीने भी माना है) क्या यह सम्भव है कि ये 'दोस्तियाँ' स्थायी हो सकेंगी और हर तरहके झगड़े, विद्वेष और संघर्षको हमेशाके लिये खत्म कर सकेंगी?

इस सवालको स्पष्ट कर देना बिल्कुल आवश्यक है जिससे कि यह साफ़ ज़ाहिर हो जाय कि उसका जवाब नहींके अलावा और कुछ हो ही नहीं सकता। हम जानते हैं कि पूँजीवादके अन्दर 'स्वार्थ-क्षेत्रों' या 'प्रभाव-क्षेत्रों' यानी उपनिवेशोंके बटवारेके लिये, शिरकत करनेवाले राज्यों की—सामान्य आर्थिक, बंक-पूजीकी और फौजी—शक्तिके हिसाबके अतिरिक्त दूसरा कोई आधार नहीं हो सकता। हम यह भी जानते हैं कि इन शरीकोंकी शक्तिमें एकसा परिवर्तन नहीं हो रहा है, हर एककी शक्ति एक दूसरेके मुक़ाबलेमें बराबर कम या ज़्यादा घट बढ़ रही हैं। क्योंकि पूँजीवादके अंदर विभिन्न कारबारों, ट्रस्टों, उद्योगों और देशोंका एकसा विकास कभी नहीं होता। पचास साल पहले, जर्मनीकी भी ब्रिटेनके मुकाबलेमें, जहाँ तक उसकी पूंजीवादी शक्तिका सम्बन्ध था, कोई गिनती नहीं थी। रूसके मुक़ाबलेमें जापानकी भी यही हालत थी। ऐसी सूरत में क्या यह समझमें आसकता है कि दस या बीस सालमें साम्राज्यवादी राज्योंकी शक्ति एक दूसरेके मुक़ाबले इसी अनुपातमें बने रहेगी। यह बिल्कुल असम्भव बात है—कभी स्वप्नमें समझमें नहीं आ सकती।

इसलिये अंग्रेज़ पादरियों या 'मार्क्सवादी' कॉट्स्की टुच्ची हवाइयोंमें

कुछ भी सम्भव क्यों न हो लेकिन पूँजीवादीकी वस्तुस्थितिकी रात बिल्कुल अलग है। पूँजीवादके अन्दर 'अन्तर्साम्राज्यवादी' या 'परम-साम्राज्यवादी दोस्तियाँ, अनिवार्यरूपसे, युद्धोंके बीचमें सिर्फ़ दम लेने भरके लिये हो सकती है, फिर चाहे वे किसी तरह पर भी कुछ साम्राज्योंके वर्त्मान दूसरे साम्राज्योंके ख़िलाफ़ की जायँ, या सभी शक्तियोंकी सम्मिलितरूपसे। शान्तिपूर्ण दोस्तियाँ युद्धोंके लिये परिस्थिति तैयार किया करती और खुद भी युद्धोंसे ही पैदा होती हैं। इस प्रकारसे दोस्तियां और युद्ध, एक दूसरेका कारण हैं। इन्हींकी वजहसे साम्राज्यवादी सम्बन्धों और दुनियाँकी अर्थ व्यवस्था व राजनीतिके परस्पर-सम्बन्धोंके एक ही आधार पर, शान्तिपूर्ण और अशान्तिपूर्ण संघर्षोंका बारीबारीसे जन्म होता रहता है।

अमेरिकन लेखक हिल (Hill) अपनी पुस्तक, हिस्टरी ऑव डिप्लोमैसी इन दी इण्टरनेशनल डिवलप्मेंट ऑव योरप, (History of Diplomacy in the Internatonal Development of Europe—योरपके अन्तर्राष्ट्रीय विकासकी कूटनीतिका इतिहास) की प्रस्तावनामें कहता है कि अर्वाचीन कूटनीतिके इतिहासको तीन कालों में बाटा जा सकता है : (१) क्रान्तिकारी काल (२) वैध आन्दोलन का काल (३) 'व्यवसायिक साम्राज्यवादका' वर्त्तमान काल।

शील्डरने भी ग्रेट ब्रिटेन 'की वैदेशिक नीति' के १८७० के बादके इतिहासको चार कालोंमें बांटा है : (१) एशियाई काल, रूसको मध्य एशियामें हिन्दुतानकी तरफ़ न बढ़ने देनेके लिये उसका मुक़ाबला करना; (२) अफ्रिकाका काल; (१८८५–१९०२) अफ्रिकाके बटवारेके सम्बन्ध में फ्रांससे मुख़ालिफ़त (१८९८ का फ़ैशोडाका मामला और युद्धका बाल बाल बचना); (३) द्वितीय एशियाई काल, रूसके ख़िलाफ़ जापानसे सन्धि; (४) योरोपीय काल, ख़ास तौरसे जर्मनीसे मुख़ालिफ़त।

रेसेरने १९०५ में बताया था कि फ्रांसकी बंक-पूँजी इटलीमें अपने

कार्यक्रम द्वारा दोनों देशोंके दर्म्यान दोस्तीका रास्ता तैयार कर रही थी; और किस तरह पर्शियाके लिये जर्मनी व इंगलैंडके दर्म्यान और, चायना के क़र्ज़ोंके सम्बन्धमें योरोपीय पूँजीवादी देशोंमें कैसी कशमकश मची हुई थी। इस सिलसिलेमें उसने लिखा था कि "राजनीतिक लड़ाईयोंके स्थानमें बंक-पूँजीके क्षेत्रमें धावे बोले जा रहे"। बस देख लीजिये, शान्ति पूर्ण 'अन्तर् साम्राज्यवादी' दोस्तियोंकी यही जीती जागती असलियत है; साधारण साम्राज्यवादी झगड़ोंके साथ वे इतनी बंधी हुई है कि कभी अलग ही नहीं हो सकतीं।

कॉटस्कीने साम्राज्यवादकी गहरीसे गहरी असंगतियों पर अच्छी तरह लीपा पोती करके उसपर ख़ूब बढ़िया रंग चढ़ाया है जिसका असर रीसेरकी, साम्राज्यवादके राजनीतिक पहलूकी मीमांसा पर भी हुआ है। साम्राज्यवाद बंक-पूँजी और एकाधिकारोंका एक ख़ास युग है। एकाधिकार आधिपत्य जमानेकी प्रवृत्तिको पैदा करते हैं न कि आज़ादीकी। किसी भी राजनीतिक व्यवस्थाके अन्दर, इस प्रवृत्तिका नतीजा शुरूसे आख़िर तक प्रतिगामी होता है और उसके कारण राजनीतिक विद्वेष भी अत्यन्त ज़ोर पकड़ते रहते हैं। देशों पर अत्याचार ख़ूब तेज़ीसे होने लगता है और उनको अधीन करनेकी धुन बुरी तरह चल पड़ती है। देशोंको अधीन करना उनकी स्वतन्त्रताको नष्ट करना है क्योंकि अधीन करनेका अर्थ उस देशके आत्म-निर्णयके अधिकारको अपहरण करनेके अलावा दूसरा नहीं होता। हिल्फ़र्डिंगने साम्राज्यवाद और, देशों परके अत्याचारकी तेज़ीके तआल्लुक़ पर ठीक ही ज़ोर दिया है। वह कहता है :—

"जब नये देशोंमें पूँजी आती है तो उसकी वजहसे विद्वेष ख़ूब ज़ोर पकड़ता है। वहाँकी जनतामें विदेशी दस्तन्दाज़ोंके ख़िलाफ़ राष्ट्रीय चेतना (national consciousness) तो रहती ही है। साथ ही विदेशी पूँजीके कारण उनके बढ़ते हुए विरोधको बराबर उतेजना मिलने लगती

है। इस विरोधको, विदेशी पूंजीका मुक़ाबला करनेके लिये ख़तरनाक़ शक्लोंमें आसानीसे तबदील किया जा सकता है। पुराने सामाजिक सम्बन्धोंमें बिल्कुल क्रान्ति कर दी जाती है। देशोंकी खेतीकी पेड़ियाँ, जिन्होंने उनको जकड़कर अबतक इतिहासकी धारासे अलग रखा था, टूट जाती हैं और वे पूँजीवादी बवंडरमें घसीट लिये जाते हैं। पूँजीवाद स्वयं ऐसे अधीन देशोंके लिये मुक्तिके साधन धीरे धीरे जुटा देता है। वे उसी उद्देश्यको हासिल करनेका प्रयत्न करने लगते हैं जो किसी समय योरोपीय देशोंके लिये सबसे ऊँचा उद्देश्य था। आर्थिक और सांसकृतिक स्वतन्त्रताके लिये एक राष्ट्रीय संयुक्त राष्ट्रका निर्माण उनका अपना अपना उद्देश्य होजाता है। इस प्रकारके स्वतन्त्रताके आन्दोलन योरोपीय पूँजीके लिये उनकी लूटके बढ़िया बढ़िया क्षेत्रोंमें ही ख़तरा खड़ा कर रहे हैं। योरोपीय पूँजी-अपना आधिपत्य, अपनी फ़ौजें बराबर बढ़ा बढ़ाकर ही क़ायम रख सकती है।"

इसके साथ यह भी जोड़ देना आवश्यक है कि यह बात नये देशोंकी ही नही है बल्कि पुराने देशोंमें भी साम्राज्यवाद अपने क़ब्ज़ेका विस्तार कर रहा है जिसकी वजहसे जनतापर अत्याचार बढ़ता जाता है। और उसका विरोध भी ज़ोर पकड़ रहा है। जिसवक्त कॉट्स्की इस बातपर एतराज़ करता है कि साम्राज्यवादकी वजहसे राजनीतिक प्रतिक्रिया प्रबल होरही है उसवक्त वह एक बहुत ज़रूरी सवालको अन्धेरेमें ही छोड़ देता है; साम्राज्यवादके युगमें समयसाधकोंसे समझौता होना असम्भव है--इसको वह छूता ही नहीं। देशोंको अधीन करनेकी नीति पर आपत्ति करते समय वह अपने एतराज़ोंको इस ढंगसे रखता है कि वे बड़े अच्छे बन जाते हैं और समयसाधकोंको ज़रा भी बुरे नहीं लगते। इसी तरह जब वह सीधे जर्मन लोगोंके सामने अपनी बातें रखता तो भी इस बातके एक बहुत ही ज़रूरी सवालको दबा जाता है। उदाहरणके लिये जर्मनीका

ऐल्सेस लोरेनको अधीन करना।[९] अगर एक जापानी अमेरिकाके फ़िलिपाइन द्वीपों[१०] को अधीन करनेके कार्यकी निन्दा करे तो शायद ही कोई उसकी सचाईका विश्वास करेगा। शायद ही कोई यह माननेके लिये तैयार होगा कि वह अमेरिकाकी निन्दा इसलिए करता है कि वह इस तरहके सभी कार्योंके ख़िलाफ़ है और न कि इसलिए कि वह फ़िलिपाइन पर जापानका क़ब्ज़ा चाहता है। हमको यह मानना ही पड़ेगा कि जापानियोंकी औपनिवेशिक नीतिके ख़िलाफ़ लड़ाई, राजनीतिक दृष्टिसे तभी इमान्दारी कही जा सकती है जब कि वे लोग कोरियाकी अधीनताके मामलेमें, जापानके ख़िलाफ़ युद्ध करना शुरू करें।

इसलिये हम देखते हैं कॉट्स्कीका साम्राज्यवादका विश्लेषण और उसकी आर्थिक न राजनीतिक मीमांसा सभी नीचेसे ऊपर तक ऐसे भावसे भरी हुई है जिसका मार्क्सवादसे मेल होना नितान्त असम्भव है। यह भाव साम्राज्यवादकी सबसे ज़्यादा बुनियादी असंगतियों पर लीपा पोती करता है, और हर तरीक़ेसे योरोपीय मज़दूर आन्दोलनसे सम्बन्ध रखनेवाले समय साधक लोगोंसे मेल बनाये रखनेका प्रयत्न करता है।

दसवाँ अध्याय

इतिहासमें साम्राज्यवादका स्थान

हम देख चुके हैं कि साम्राज्यवाद अपने आर्थिक तत्वकी दृष्टिसे एकाधिकारी पूँजीवाद है। बस इसी बातसे इतिहासमें उसका स्थान निश्चित हो जाता है। क्योंकि हम जानते हैं कि एकाधिकारका जन्म मुक्त प्रतियोगिताके आधारपर उसीमेंसे हो हुआ है और वह पूँजीवादी व्यवस्थाकी उन्नतिके रास्तेकी एक मंज़िल है। हमको एकाधिकारोंके या एकाधिकारी पूँजीवादके चार मुख्य पहलुओंको विशेषरूपसे ध्यानमें रखना होगा क्योंकि यही इस युगकी ख़ास चीज़ें हैं :—

(१) एकाधिकारकी पैदायश, उत्पादनके केन्द्रीकरणसे उस समय हुई जब कि केन्द्रीकरण तरक्की की एक बहुत ऊँची मंज़िलपर पहुँच चुका था। एकाधिकारी पूँजीवादी संघ, कार्टेल, सिण्डिकेट, ट्रस्ट वग़ैरा इस बातको स्पष्ट कर देते हैं। हम देख चुके हैं कि आर्थिक जीवनमें उनका कैसा गहरा हाथ रहता है। इन संघोंने २०वीं शताब्दीके आरम्भके आते आते, उन्नत देशोंमें अपना प्रभुत्व जमा लिया। यद्यपि अमेरिका जर्मनी आदि देशोंमें, जहाँ संरक्षणके लिये ऊँचे करोंकी व्यवस्था थी, संघ बनाना पहले शुरू हुआ था लेकिन इंगलैंड भी इस दौड़में ज़्यादा पीछे नहीं रहा, और वहाँ भी मुक्त व्यापारके रहते हुये ही उत्पादनके केन्द्रीकरणसे एकाधिकार पैदा हो गये।

(२) एकाधिकारोंने कच्चे मालके सबसे ख़ास ज़रियोंपर क़ब्ज़ा करनेकी

रफ़्तारको खूब बढ़ा दिया है। यह बात लोहे और कोयलेके उद्योगमें ख़ास तौरसे हुई है। ये उद्योग पूँजीवादी समाजके मूल उद्योग हैं और इनके संघ वग़ैरा भी सबसे ऊँचे दर्जेपर बन चुके हैं। कच्चे मालके सबसे आला ज़रियोंपर एकाधिकारियोंका क़ब्ज़ा हो जानेकी वजहसे पूँजीकी शक्ति बेतहाशा बढ़ गई है और साथ ही संयुक्त उद्योगों और असंयुक्त उद्योगोंके दर्म्यान शत्रुता ज़्यादा गहरी हो गई है।

(३) बैंकोंमे भी एकाधिकार पैदा होगया है। बैंकोंने अपनी बीचके दलालकी हैसियनको ख़त्म कर दिया है और बंक-पूँजीके एकाधिकारी बन गये हैं। किसी भी बढ़े-चढ़े पूँजीवादी देशमें तीन या पांच सबसे बड़े बैंकोंने औद्योगिक पूँजी और बैंकोंकी पूँजीके दर्म्यान 'निजी सम्बन्ध' क़ायम कर रखा है और देशभरकी अरबोंकी अरबों पूँजी और सरकारी आयको अपनी मुट्ठीमें केन्द्रित कर लिया है। एकाधिकारका सबसे मार्केका पहलू यह है कि बंक-पूँजीके गुटतन्त्रने मौजूदा पूँजीजीवी समाजकी सभी आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओंमें 'गुलामी' और 'बन्धनोंका एक घना जाल बिछा रखा है।

(४) औपनिवेशिक नीतिमें भी एकाधिकार क़ायम हो गया है। औप-निवेशिक नीतिके पुराने उद्देश्य पहलेसे मौजूद थे ही। बंक-पूँजीने दूसरे नये-नये उद्देश्योंको भी उनके साथ मिला दिया है। अब कच्चे मालके ज़रियोंके लिये, पूँजी निर्यातके लिये, 'प्रभावक्षेत्रों'-यानी अच्छे व्यापार, रियायतें और एकाधिकारी मुनाफ़ेके क्षेत्रोंके-लिये, संक्षेपमें, सब तरहके आर्थिक भूभागोंके लिये कशमश चला करती है। उसवक्त जब कि ऐफ्रिकाके सिर्फ़ $\frac{1}{10}$ भाग पर योरोपीय शक्तियोंका कब्ज़ा था, (जैसा कि १८१६ तक था), औपनिवेशिक नीतिने अपने विस्तारको एकाधिकारके तरीक़े पर नहीं किया बल्कि 'स्वच्छन्द लुटेरों'की तरह ज़मीनपर कब्ज़ा जमाया था। लेकिन जब (१९००) ऐफ्रिकाके $\frac{9}{10}$ भागपर आधिपत्य होगया और दुनियाँका बटवारा

भी पूरा होगया तब वह ज़माना आया जब कि उपनिवेशों पर भी एकाधिकारी क़ब्ज़े क़ायम होगये और इसका नतीजा यह हुआ कि दुनियांके 'बटवारे' या दुबारा बटवारेके लिये संघर्ष जोर पकड़ने लगा।

लोग यह आम तौरसे जानते हैं एकाधिकारी पूँजीने पूँजीवादकी असंगतियोंको खूब बढ़ा दिया है। इतना ही कह देना काफ़ी है कि रहन-सहनका ख़र्च बहुत बढ़ गया है और कार्टेलोंका बड़ा भारी प्रभाव है। इतिहासमें यह काल परिवर्त्तनकाल है, यह तब शुरू हुआ जब कि बंक-पूँजी दुनियांकी अन्तिम विजय कर चुकी थी। असंगतियोंका ज़ोर इस परिवर्तनमें सबसे तेज़ीसे काम कर रहा है।

एकाधिकार, गुट-तन्त्र, स्वतन्त्रताके प्रयत्नके स्थान पर आधिपत्य जमानेका प्रयत्न, सबसे धनी और सबसे शक्तिशाली ४,५ देशों द्वारा, ज़्यादा ज़्यादा तादादमें छोटे छोटे देशोंकी लूट—इन्हीं सबने पूँजीवादकी वह ख़ासियतें पैदा करदी हैं जिनकी वजहसे हमें साम्राज्यवादको रक्तशोषक या मरता-गिरता पूँजीवाद कहना पड़ता है। उधर साम्राज्यवादकी एक धारा यह चल रही है कि 'निठल्ले महाजनों' या 'सूदख़ोरों' के राज्य बनते जारहे हैं। और इन राज्योंके पूँजीजीवी लोग पूँजी निर्यात और 'पुर्जे काटने' का पेशा उठाते जारहे हैं। यह मान लेना ग़लत होगा कि ह्रासकी इस प्रवृत्तिके कारण पूँजीवादकी तरक़्क़ीमें रुकावट पड़नी चाहिये। इससे कोई रुकावट नहीं पड़ती। साम्राज्यवादके युगमें, ह्रासकी प्रवृत्तियाँ, एक न एक, कमो वेश मात्रामें, समय-समयपर, कभी इस उद्योगमें कभी उस उद्योगमें, कभी पूँजीजीवी लोगों एक या दूसरे वर्गमें, किसी न किसी देशमें, दिखायी देती रहती हैं। लेकिन सम्पूर्ण पूँजीवाद कहीं ज़्यादा तेज़ीसे तरक़्क़ी करता जा रहा है। इतना अवश्य है कि पूंजीवादकी तरक़्क़ी ज़्यादा-ज़्यादा न बराबर हो रही है और साथ ही यह असमानता (इङ्गलैण्ड जैसे) धनीसे धनी देशमें ह्रासके रूपमें दिखाई दे रही है।

जर्मनीके आर्थिक विकासकी तेज़ीके सम्बन्धमें रीसेर कहता है :—

"पिछले काल १८४८–१८७० की तरक़्क़ीकी रफ़्तार धीमी नहीं थी। लेकिन १८७०–१८९४ के कालमें जर्मनीकी संपूर्ण अर्थव्यवस्था और बैंकोंकी तरक़्क़ीकी रफ़्तार बहुत तेज़ रही है। पिछले कालकी रफ़्तारका इस कालकी रफ़्तारके साथ वही अनुपात है जोकि 'पवित्र रोमन साम्राज्य'के कालमें जर्मनीकी किसी डाक-घोड़ागाड़ीकी रफ़्तारका आजकलके मोटरकारकी रफ़्तारसे अनुपात हो। यह भी ख़याल रखना चाहिये कि ये मोटर अक्सर इतने तेज़ भागते हैं कि चलनेवालों और उनकी सवारियोंके लिये ख़तरा होजाता है।"

बंक पूँजी इतना विस्तार करनेपर भी अपने विस्तारको बढ़ाना ही चाहती है। वह उन उपनिवेशों पर 'शान्तिपूर्ण' (आर्थिक) अधिकार करना चाहती है जिनको दूसरे राज्योंसे (अशान्ति तरीक़ोंसे भी) छीना जा सके। संयुक्तराष्ट्रमें आर्थिक तरक़्क़ी जर्मनीसे भी ज़्यादा तेज़ीसे हुई है। और यही कारण है मौजूदा अमेरिकन पूँजीवादकी रक्तशोषक प्रवृत्ति इतनी साफ़ साफ़ दिखाई पड़ती है। दूसरी तरफ़ अगर हम प्रजातन्त्र अमेरिकाके पूँजीजीवीवर्गका, राजतन्त्र (monorchy) जर्मनीके पूँजीजीवीवर्गसे मुक़ाबला करें तो देखेंगे कि साम्राज्यवादके कालमें बड़े से बड़े राजनीतिक अन्तर कम हो जाते हैं। लेकिन इसकी वजह यह नहीं है कि ये राजनीतिक अन्तर अपना कोई महत्व ही नहीं रखते बल्कि यह है कि सभी जगहके पूँजीजीवी एक ही तरहकी रक्तशोषक प्रवृत्तियाँ रखते हैं।

बीसों उद्योगों या देशोंमेंसे किसी एकके पूँजीपति एकधिकारके तरीक़ोंसे ढेरों मुनाफ़ा उठाते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि उन पूँजीपतियोंके हाथमें रिशवत देनेके आर्थिक साधन आ जाते हैं। और वे मज़दूरोंके किसी किसी समूहको, रिशवत देकर किसी ख़ास उद्योगके या किसी ख़ास देशके पूँजीजीवियोंके पक्षमें कर लेते हैं। इस तरह उनको

बाक़ी सब पूँजीजीवियोंका मुख़ालिफ़ बना देते हैं। इस प्रवृत्तिकी रफ़्तारमें तेज़ी तब आती है जब कि साम्राज्यवादी राज्योंके दर्म्यान, दुनियाँके बटवारेके सिलसिलेमें, विद्वेष ज़ोर पकड़ने लगता है। और इसीलिये साम्राज्यवाद और समयसाधकतामें सम्बन्ध हो जाता है। यह सम्बन्ध इंगलैंडमें सबसे पहले ही बिल्कुल साफ़ साफ़ देखा गया था क्योंकि वहाँ साम्राज्यवादी विकासके कई अंग दूसरे देशोंसे पहले ही तैयार हो गये थे।

एल्० मारटव (L. Martov) की तरहके कुछ लेखक, मज़दूर आन्दोलनके अन्दरके, साम्राज्यवाद और समय साधकताके सम्बन्धको स्वीकार नहीं करना चाहते हालांकि यह वाक़या इस वक़्तपर ख़ास तौरसे ध्यान देने लायक़ है। वे पूँजीजीवी आशावादी दलीलें दिया करते हैं और कहते हैं कि अगर उन्नत पूंजीवादने ही समयसाधकताको पाला-पोसा होता या अगर सबसे अच्छे कार्य-कर्त्ताओंको तनख़्वाहे दी जाती और वे समयसाधक बना गये होते, तब तो पूँजीवादके विरोधियोंका पक्ष कमज़ोर होना चाहिये था। हमें इस प्रकारकी आशावादिताके सम्बन्धमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि वह समयसाधकताका ख़याल करती है और उसपर परदा डालनेकी कोशिश करती है। सच्ची बात यह है कि समयसाधकताकी चाहे जितनी भी तरक़्क़ी हो जाय और उसका विरोध कितना भी बढ़ जाय, फिर भी वह किसी तरहसे भी हमेशाके लिये सफल नहीं हो सकती। उसकी हालत तो वैसी है जैसी कि स्वस्थ शरीरमें एक फ़ोड़ेकी होती है। वह बढ़ता है, पकता है फूटता है और बह जाता है। इस मामलेमें सबसे ख़तरनाक वह लोग है जो यह समझना नहीं चाहते कि साम्राज्यवादके ख़िलाफ़ कोई भी युद्ध तब तक ढोंग और धोख़ेबाज़ी है जब तक कि वह समयसाधकताकी विरोधी शक्तियों के साथ अविच्छिन्न रूपसे न मिल जाय।

साम्राज्यवादके आर्थिक तत्वके विषयमें अब तक जो कुछ कहा गया

है उससे यही नतीजा निकलता है कि साम्राज्यवादको परिवर्त्तन-काल या संक्रमण-कालका पूँजीवाद कहना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें साम्राज्यवाद को मरणासन्न पूँजीवाद कहा जा सकता है। इस सम्बन्धमें इस बातका उल्लेख करना बहुत उपयोगी है कि पूँजी जीवी अर्थशास्त्री इस समयके पूँजीवादका वर्णन करते समय, धड़ल्लेके साथ, 'पारस्परिक-संग्रथन' और 'एकान्तताका अभाव' आदि शब्दोंका प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं कि "बैंक अब अपने वर्त्तमान कार्यों और विकासक्रमके कारण शुद्ध वैयक्तिक कारबार नहीं रहे हैं; वैयक्तिक व्यापारके दायरेसे वे दिनोदिन निकलते जा रहे हैं"। यह शब्द रीसेरके हैं। वही फिर बड़ी गम्भीरताके साथ इस बातकी घोषणा करता है कि "मार्क्सवादियोंकी 'समाजीकरण' की भविष्य-वाणी पूरी नहीं हो पाई।"

तो फिर इस छोटेसे शब्द 'पारस्परिक सग्रंथन' का क्या अर्थ होता है? वह तो उसी रफ़्तारके सबसे मार्केके पहलूको ज़ाहिर करता है, जो कि हमारे सामने बराबर चल रही है। इससे तो यही सिद्ध होता है कि रीसेर असली मतलबको नहीं समझ सका। वह वृक्षोंमें घिर जानेके कारण जंगलको देखनेकी शक्ति खो बैठा है। यह तो आँख मूंदकर उन्हीं पुरानी ऊपरी, संयोगिक और भ्रमपूर्ण बातोंको दुहराना है। सामग्रीकी अधिकताके कारण उसकी बुद्धि चक्कर खाने लगी है और वह प्रश्नके अर्थको नहीं समझ सका है। हम मानते हैं कि स्टॉकोंकी मिल्कियत और वैयक्तिक सम्पत्तिकी मिल्कियत 'संयोगवश परस्पर संग्रथित हो जाती हैं'। लेकिन इस आपसके 'संग्रथन' का आधार तो उत्पादनके वे सामाजिक सम्बन्ध हैं जो बराबर बदलते रहते हैं। जब कोई कारबार बहुत विशाल हो जाता है और विस्तृत आंकड़ोंके आधारपर ठीक ठीक हिसाब लगाकर इतने ज़्यादा कच्चे मालको ले लेनेकी व्यवस्था कर लेता है जो कि करोड़ों आदमियों-की कच्चे मालकी जितनी आवश्यकता हो सकती है उसकी दो तिहाई

या तीन चौथाईकी पूर्त्ति कर सकता है; जब कि यह कच्चा माल; उत्पादनके लिये लाखों मील एक दूसरेसे दूर दूरके उपयुक्त स्थानोंमें संगठित रूपसे भेजा जाता है; जब कि एकही केन्द्र कच्चे मालको उपयोगी बनानेकी भिन्न भिन्न क्रियाओंसे लेकर बीसों तरहके तैयार शुदा सामानको बनानेकी सभी अवस्थाओंका नियन्त्रण करता है; और फिर जब कि इस तैयार किये हुए सामानका करोड़ों इस्तेमाल करनेवालोंमें एकही व्यवस्थाके अनुसार वितरण किया जाता है; (अमेरिकन-आयल-ट्रस्टके द्वारा अमेरिका और जर्मनीमें तेलको बाजारोंमे भेजनेकी व्यवस्था) तब यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादनके समाजीकरणकी रफ़्तार हमारी आँखोंके सामने चल रही है; यह क्रम 'पारस्परिक संग्रथन' मात्र नहीं रह जाता। सच्ची बात तो यह है कि अब वैयक्तिक व्यापार और वैयक्तिक सम्पत्तिके सम्बन्ध एक ऐसा जीर्ण ढाँचा बन गये हैं जिसके अन्दर नवीन उन्नत अवस्थाओंका रहना असम्भव हो गया है। अब वह समय आ गया है जब कि इस ढाँचेका अन्त हो जाना चाहिये; और अगर कृत्रिम साधनोंसे उसको बनाये रखनेका प्रयत्न किया भी गया तो भी वह नष्ट होकर ही रहेगा। यह हो सकता है कि इस ढाँचेको मरती गिरती अवस्थामें काफ़ी दिनोंतक (खास तौरसे जब कि समय साधकताके फोड़ेके इलाजमें देर की जायगी) क़ायम रखा जासके, लेकिन फिर भी वह ख़त्म होगा ही।

अब जर्मन साम्राज्यवादके जोशीले समर्थक गायफ़नीट्सकी बहकको भी देख लीजिये। वह कहता है:—

"अगर जर्मन बैंकोंका उच्च प्रबन्ध सिर्फ़ एक दर्जन लोगोंके हाथमें है तो हमको यह मानना पड़ेगा कि उनका कार्य सार्वजनिक हितके लिये राज्यके बहुतसे मंत्रियोंके कामसे भी कहीं अधिक उपयोगी और आवश्यक है। (यहाँ पर बैंक संचालकों, उद्योग पतियों, और 'निठल्ले महाजनों'के 'पारस्परिक 'संग्रथन' को बड़ी ख़ूबीके साथ छोड़ दिया गया है)। हम यह

माने लेते हैं कि विकासकी जिन प्रवृत्तियोंका हमने ज़िक्र किया है अपनी चरमसीमाको पहुँच चुकी हैं, यानी देश भरकी पूँजी बैंकोंमें केन्द्रित हो चुकी है, बैंकोंका भी एकीकरण हो गया है व उनके कार्टेल बन चुके हैं और देश भरकी कारबारमें लगायी जानेवाली सबकी सब पूँजी सिक्यूरिटियोंमें लगायी जा चुकी है। बस तब तो सेण्ट साइमनकी (Saint Simon)की बढ़िया भविष्यवाणी पूरी हो गई: 'चूँकि आर्थिक सम्बन्ध समान नियमके अनुसार नहीं चल रहे हैं और जिसकी वजहसे मौजूदा उत्पादनके क्षेत्रमें अव्यवस्था फैली हुई है इसलिये संगठित उत्पादनके लिये रास्तासाफ़ कर देना होगा। अब छिटफुट फैले हुए उद्योगपति अलग अलग स्वतंत्ररूपसे मानवसमाजकी आर्थिक आवश्यकताओंको बिना जाने हुये ही उत्पादनको न चला सकेंगे। अब तो उत्पादन एक विशेष सामाजिक संस्था द्वाराही किया जा सकेगा। अब केन्द्रीय प्रबन्ध समिति चूँकि वह सामाजिक अर्थव्यवस्थाके विस्तृत क्षेत्रको एक ऊँचे दृष्टिकोणसे विचारकर सकेगी इसलिये वह उसका समस्त समाजके हितके लिये संचालन करेगी। सबसे बड़ी-बाततो केन्द्रीय प्रबन्ध समिति यह करेगी कि उत्पत्ति और उपभोगका (consumption) सामंजस्य बराबर बनाये रखेगी। कुछ संस्थाओं यानी बैंकोंने आर्थिक-श्रमका संगठन किसी हद तक अपने हाथमें ले भी रखा है'। सेण्ट साइमनकी यह भविष्यवाणी पूर्तिसे अभी बहुत दूर है लेकिन इतना अवश्य है कि हम उस मार्गपर जा रहे हैं। यह मार्क्सवाद, मार्क्सके विचारोंसे भिन्न है लेकिन अन्तर सिर्फ़ रूपका ही है।"

निस्सन्देह यह मार्क्सका बढ़िया खण्डन रहा! लेकिन यह तो मार्क्सके पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषणोंसे हटकर सेण्ट साइनके काल्पनिक अनुमानकी ओर एक क़दम पीछे चला जाना है। हम यह मानते हैं कि यह अनुमान एक प्रतिभावान् व्यक्तिका है लेकिन फिर भी वह अनुमान ही अनुमान है।

परिशिष्ट

१—यह भूमिका लिखेजानेके एक वर्ष बाद पहलेपहल १९३१ में "कम्यूनिष्ट इंटरनेशनलमें" पूँजीवाद और साम्राज्यवाद शीर्षक से छपी थी।

२—ब्रेस्ट-लिटोव्स्क-सन्धि, सोवियट सर्कारने जर्मनी ऑस्ट्रिया-हंगेरी, बल्गेरिया और टर्की के साथ की थी। सोवियट प्रतिनिधियोंने इस सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर ब्रेस्टलिटोव्स्क शहर में १–३ मार्च, १९१८ ई० के सन्धि-सम्मेलनमें किये, और १५ मार्चको चतुर्थ विशेष सोवियट कांग्रेसने उसकी स्वीकृति दी। इस सन्धिके अनुसार सोवियटने लैट्विया, एस्थोनिया और श्वेत रूसका एक भाग दे दिया; पोलैण्डका एक भाग और लिथ्वानियां, जिनपर जर्मनीने युद्धकालमें क़ब्ज़ा कर लिया था उसीके पास रहे; और सोवियट सर्कारने न केवल लैट्विया और एस्थोनियासे, बल्कि युक्रेन और फ़िनलैण्डसे भी हट जाना स्वीकार किया। १९१८ ई० में जर्मनीकी क्रान्तिके सिलसिलेमें सोवियट सर्कारने इस सन्धिको रद्द कर दिया।

३—वर्साय-सन्धि (जिसका नाम फ्रांस देशके पेरिस नगरके समीप स्थित वर्साय नगरके नाम पर पड़ा है) १९१४–१९१८ के साम्राज्यवादी महायुद्धके परिणाम स्वरूप मित्र राष्ट्र (ग्रेट ब्रिट्रेन, फ्रांस संयुक्तराष्ट्र, इटली, जापान) और जर्मनी व इसके दोस्तोंके बीचमें २८ जून १९१९ को हुई थी। इस संधिके द्वारा ऑस्ट्रिया और जर्मनी

का यूरपका बहुत सा प्रदेश छीन लिया गया। जर्मनीके सभी उपनिवेश छीनकर मित्र राष्ट्रोंमें बाँट दिये गये। जर्मनीको लगभग पूरी तरह निरस्त्र कर दिया गया और उसकी सभी सेना संबंधी सामग्री विजिता राष्ट्र उठा ले गये। जर्मनी के ऊपर हर्जानेकी एक बहुत ही बड़ी रक़म लाद दी गयी, जो कि अब तक नहीं चुका जा सकी है। इस कठोर अदायगीका सारा भार जर्मनीकी ग़रीब जनता पर ही पड़ता है, क्योंकि जैसा सदासे होता आया है। पूँजीजीवी अपनी जेबसे कोई अदायगी नहीं करते। वे राज्यके द्वारा अपना सब भार गरीबोंके ऊपर डाल देते है।

४—जर्मनीकी इंडिप्डेंट सोशलडेमाक्रेटिक पार्टी अप्रैल १८१७ में बनायी गयी थी। हासे और कॉट्स्की आदि इसके नेता थे।

५—स्पार्टैकस लीग महायुद्धसे कुछ दिनों पहले स्थापितकी हुई एक अवैध संस्था थी। इसके संस्थापक कार्ल लीबनीख़, रोज़ा लक्ज़ेम्बर्ग क्लारा ज़ेरकिन आदि थे। इस संस्थाका उद्देश्य युद्धका और सोशल डिमाक्रेटिक पार्टीके तत्कालीन नेताओंकी नीतिका विरोध करना था जो कि संपत्तिजीवियोंके सुरमें सुर मिलाकर लड़ाई चलानेका उपदेश करते थे। अपने उद्देश्यके प्रचारके इरादेसे इस संस्थाकी ओरसे स्पार्टैकसके नामसे बहुतसे परचे निकाले गये थे। इसी कारण इस संस्थाका नाम स्पार्टैकस लीग पड़ गया था।

६—स्पेनिश-अमेरिकन युद्ध संयुक्त राष्ट्र अमेरिका द्वारा १८९८ में स्पेनको फ़िलिपाइन तथा क्यूबा आदि द्वीपोंसे हटानेके लिये छेड़ा गया था। ऊपरसे तो अमेरिकाका कहना था कि वह इन द्वीपोंको स्पेनकी अधीनतासे छुड़ानेके लिये युद्ध कर रहा है, पर भीतर ही भीतर उसकी मंशा स्वयं इन द्वीपोंपर अधिकार जमा लेने की थी। जब पेरिसकी संधि (१० दिसंबर १८९८) के अनुसारके द्वीप 'स्वतन्त्र' क़रार दे दिये गये और स्पेन वहाँसे हट गया तो अमेरिकाने धीरे धीरे अपनी कूटनीति द्वारा इन द्वीपोंके

अधिकांश भागको अपना उपनिवेश बना लिया। इन द्वीप पुंजोंपर अधिकार कर लेनेसे संयुक्त राष्ट्रको मध्य अमेरिका और दक्षिणी अमेरिकाके उत्तरी भागपर बहुत अंशोंमें प्रभुत्व और नियंत्रण प्राप्त करनेका आधार मिल गया। इसके अतिरिक्त उसे पैनामा की उस नहर पर अधिकार करनेकी कुंजी मिल गई, जो कि पैसिफ़िक और अटलांटिक महासागरोंको जोड़ती है। फिलिपाइन द्वीप समूहके द्वारा एक सा आधार मिल गया जिससे होकर वह चीनमें घुस सकता और पूर्वी एशियामें जानेवाले यूरोपीय जहाजों पर नियन्त्रण रख सकता है।

७—ऐंग्लो-बोअर युद्ध (१८९९-१९०२) इंग्लैण्ड द्वारा दक्षिण अफ्रीकाके ट्रांसवाल और आरेंज नामक दो बोअर प्रजातंत्रोंके विरुद्ध छेड़ा गया था। बोअर एक किसान जाति थी जो कि हालैंडसे आकर दक्षिण अफ्रीकामें बस गयी थी। अँगरेज़ पूँजीपतियोंकी शनिदृष्टि इस प्रजातंत्रके अधीन जवाहिरातके खानों पर पड़ी और उन्होंने अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए बोअर प्रजातंत्रपर आक्रमण कर दिया। युद्धके परिणामस्वरूप ग्रेटब्रिटेनने इन राष्ट्रोंको अपने उपनिवेशोंमें मिला लिया। इस युद्धमें अंगरेज़ पूँजीजीवियोंको लगभग एक अरब जलर खर्च करना पड़ा।

८—संस्थापकोंका मुनाफ़ा:—आम तौरसे यह मुनाफ़ा संस्थापकोंको किसी ज्वाइंट स्टॉक कम्पनीके संगठन या पुनर्संगठनके समय मिलता है। यह इस प्रकार लिया जाता है। मान लीजिये स्टॉकोंके दस दस रुपयोंके एक लाख हिस्से जारी किये गये। संस्थापक लोग दस लाख रुपये लगाकर सबके सब हिस्से खरीद लेते हैं। अगर औसत मुनाफ़ा दस फ़ी सैकड़ेका हो तो एक हिस्सेका दाम ग्यारह रुपया हो जायगा और संस्थापकोंकी दस लाखकी पूंजीकी क़ीमत ग्यारह लाखकी हो जायगी। अगर बाज़ारकी हालत अच्छी होतो संस्थापक लोग और ज़्यादा मुनाफ़ा लेकर अपने हिस्सोंको बेंचकर जो अतिरिक्त मुनाफ़ा लेंगे उसको संस्थापकोंका

मुनाफ़ा कहा जायगा। बाजारकी हालत गिरने पर ख़रीदारोंको खूब फल भोगना पड़ता है। अक्सर नये कारबार संस्थापकोंके मुनाफ़ेके लिये ही खड़े किये जाते है।

९—प्रोड्यूगाल—रूसके एक सिंडिकेटका नाम है जो कि रूसके डानेट्ज़ प्रदेशकी खानों (Donets Basin) में पाये जानेवाले कोयले आदिका व्यापार करनेके लिए बनाया गया था। इस कारोबारमें १८ बड़ी बड़ी कोयलेकी कंपनियाँ शामिल थीं, जो कि प्रायः सभी फ्रेंच पूंजी-पर आश्रित थीं। इस सिंडिकेटने कोयलेकी कीमतें चढ़ाकर खूब पैसा पैदा किया। महायुद्धके पूर्व क़ीमतकी दर चढ़ानेके उद्देश्यसे सिंडिकेटने कोयलेका उत्पादन ही रोक दिया था और इस प्रकार रूसमें कोयलेकी तंगी पैदाकर दी थी।

१०—प्रोडामेट—रूसके एक सिंडिकेटका नाम है जो कि १९०१ में लोहे आदि खनिज धातुओंकी बिक्रीके उद्देश्यसे बनाया गया था। इसमें जो कंपनियाँ शामिल थीं उनमें प्रमुख भाग उन कंपनियोंका था जिनमें फ्रेंच पूंजी लगी हुई थी। इस सिंडिकेटका उद्देश्य भी नियमित रूपसे कीमतें बढ़ाकर मुनाफ़ा कमानेका था।

११—पूँजीका 'सींचना'—इसमें वास्तविक पूँजीका मूल्य बहुत अधिक बढ़ाकर बताया जाता है (उदाहरणार्थ, कंपनीकी पूँजी ५० लाख रुपये हो तो ५० करोड़ रुपये बतलायी जाती है) और इस बढ़ी हुई पूँजीका ही विज्ञापन करके हिस्से बेचे जाते हैं। इस तरक़ीबसे कारबारोंके मैनेजरों के हाथ बहुत सा रुपया आ जाता है। आरंभमें तो वे हिस्सेदारोंको उचित सूद देते हैं, किन्तु बादमें दिवाला निकाल देते हैं। इस प्रकार डाइरेक्टर लोग तो इन तरीक़ोंसे अपनी मुट्ठी गर्मकर लेते हैं, पर हिस्सा लेनेवालोंका दल बे मौत मारा जाता है।

१२—फ्रेंच पनामासे अर्थ पैसिफ़िक और अटलांटिक महासागरोंको

जोड़नेके उद्देश्यसे खोदी जानेवाली उस नहरसे है जो कि उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकाको जोड़नेवाले पनामाके जलडमरूमध्यसे होकर पहलीबार सन् १८८२ में एक फ्रेंच कंपनी द्वारा खुदवानी शुरू की गई थी। शीघ्र ही फ्रेंच कंपनी दिवालिया होगयी। जाँच करनेपर पता चला कि कंपनीकी सारी रक़म घूस और ग़बन आदिके द्वारा हड़प ली गयी थी और इस कार्यमें केवल कंपनीके ही मुख्य कर्मचारी नहीं बल्कि कई ऊँचे राज्य कर्मचारी भी शामिल हैं।

१३—बग़दाद-टाइग्रिस नदीके किनारे अरब देशमें एक शहर है। महायुद्धके पूर्व जर्मनीने बर्लिनसे लेकर बग़दाद तक एक भारी रेलवे लाइन बनानेका निश्चय किया था। इस रेलवे लाइनके बनानेका उद्देश्य एशिया माइनर और अरब प्रायद्वीप पर जर्मन प्रभुत्व क़ायम करना और हिन्दुस्तान और इजिप्ट पर आर्थिक प्रभाव फैलानेके लिए रास्ता खोलना था। इस रेलवे लाइनके मुक़ाबले में अंगरेज़ोंने भी केप (दक्षिणी अफ्रिका) से लेकर कलकत्ता तक एक बृहत् रेलवे लाइन बनाने की योजना तैयार की थी।

१४—फ्रांस और रूसके बीच व्यापारिक संधि २३ सितम्बर १९०५ को हुई थी। यह संधि ऐसे समय हुई थी जब कि रूसके अन्दर क्रान्ति मची हुई थी और क्रान्तिको दबानेके लिये रूसी सरकारको फ्रांससे एक भारी क़र्ज़ लेना पड़ा था। स्थितिसे लाभ उठाकर फ्रेंच व्यापारियोंने रूसके साथ इस ढंगकी संधि कर ली जिसके द्वारा वह आसानीके साथ रूससे अपने देशमें कच्चा माल मँगा सकते थे और अपने देशसे रूस में तैयार माल भेज सकते थे। इस संधिका लाभ फ्रांसको १९११ तक मिलता रहा।

१५—फ्रांस और जापानके बीच १ सितम्बर १९११ को जो संधि हुई थी, उससे फ्रांस अधिक मुनाफ़े में था। क्योंकि (१) फ्रांस के माल पर जापानके सभी उपनिवेशोंमें चुंगी नहीं लगती थी। परन्तु जापानके

मालपर केवल एक ही फ्रेंच उपनिवेश अर्थात् (अलजीरिया) में ऐसी सुविधा प्राप्त थी। और वहाँ भी जापानसे भेजा हुआ रेशम बहुत थोड़ी मात्रा में खपता था। (२) फ्रांसको इस संधि द्वारा जापानमें बिना चुंगी के शराब, साबुन, मोटर, मशीनरी वग़ैरा बहुत सी वस्तुयें भेजनेका अधिकार मिल गया था और बदलेमें जापानको केवल कच्चा रेशम ही बिना चुंगीके भेजनेका अधिकार मिला था।

१६—ज़कातकी लड़ाई दो या अधिक देशोंके बीच कट्टर आर्थिक लड़ाई है। इस प्रकारकी लड़ाई इस तरह आरंभ होती है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रसे अपने देशमें आनेवाली वस्तुओं पर भारी चुंगी बैठा देता है; बदले में दूसरा राष्ट्र पहले राष्ट्रसे अपने देशमें आनेवाली वस्तुओं पर और भी भारी चुंगी बैठाता है। इस प्रकारकी आर्थिक लड़ाई बढ़ते बढ़ते अन्तमें यह रूप धारणकर सकती है कि दोनों राष्ट्र व्यापार करना ही बन्द कर दें।

१७—"प्राचीन रोमक साम्राज्यवाद" को वर्त्तमान साम्राज्यवादका ही रूपान्तर समझ बैठना भूल होगी। दोनों नीतियोंकी आधार भूत उत्पादन प्रणालियोंमें बहुत अन्तर है। उस समयकी उत्पादन प्रणाली छोटे छोटे किसानों, कारीगरों और व्यवसायियोंकी थी; आजकल यन्त्र-उत्पादन और एकाधिकारी पूँजी का युग है। रोम केवल अपने शस्त्रोंकी ताक़त द्वारा दूसरे देशों पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपने अधीन करता था। आजकल के साम्राज्यवादी राष्ट्रोंकी भांति दूसरे देशों पर आर्थिक प्रभुत्व स्थापित करके शोषण करना उसकी नीति न थी।

१८—लेनिनने अंग्रेजोंके लिए, जर्मनीसे मूर्चा लेनेके लिए बग़दादका महत्व बताया है। लेनिनका मतलब उस समयके ब्रिटिश साम्राज्यवादके युद्धसे है जब कि जर्मनी एशिया माइनर, ईरान प्रायद्वीप, हिन्दुस्तान

और मिश्रमें प्रवेश करनेके मनसूबे बाँध रहा था। इस उद्देश्यसे उसने बर्लिन-बग़दाद रेलवेकी योजना बनाई थी।

१९—ऐलसेस और लारेन ये दो प्रान्त हैं जो कि १८७१ के फ्रैंको-प्रूशियन युद्धके पूर्व फ्रांसके क़ब्ज़ेमें थे। इस युद्धके फलस्वरूप वे जर्मनीमें मिला लिए गये और महायुद्धके बाद फिर फ्रांसने उन्हें जर्मनीसे वापस ले लिया। जर्मनी और फ्रांसके साम्राज्यवादियोंके बीच अलसेस-लारेनका प्रश्न युद्धका एक प्रधान विषय रहा है।

२०—फ़िलिपाइन द्वीप सैनिक शक्तिके ज़ोरसे संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के राज्यमें मिलाये गये थे। आरंभमें संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाने स्पेनकी अधीनतासे छुटकारा पानेमें फिलिपाइनकी सहायताकी पर उसके स्वतन्त्र होने का अवसर आया तो सेना लेकर युद्धके द्वारा उसपर अधिकार कर लिया। संयुक्त राष्ट्रके साथ जो युद्ध हुआ उसमें अमेरिकन लेखकोंके ही अनुसार लगभग ६ लाख फिलिपाइन निवासी मारे गये थे।

मिलने का पता—

ज्ञानमण्डल पुस्तक भण्डार, काशी.

श्रीभगवती सिंह शास्त्री चकलाबाग़, बनारस कैण्ट.

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L.B.S. National Academy of Administration, Library
मसूरी
MUSSOORIE
यह पुस्तक निम्नाँकित तारीख तक वापिस करनी है ।
This book is to be returned on the date last stamped

दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.

LEN

123660
LBSNAA

H 325.32
लेनिन

जेएसटीए
3610

अवाप्ति सं.
ACC No........

पुस्तक सं.
Book No ....

वर्ग सं.
Class No..................

लेखक लेनिन
Author.............

शीर्षक साम्राज्यवाद ।

325.32 3610
लेनिन

LIBRARY
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

Accession No. 123660

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving